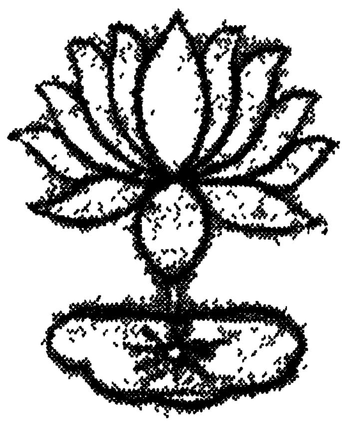
आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण स्वामी विरचित

कमल बत्तीसी

(अध्यात्म कमल-टीका)

टीकाकार

स्वामी ज्ञानानन्द



संपादक

ब्र. बसन्त

❖

प्रकाशक

स्व. श्री ठकुरसीलाल विनयकुमार जैन

धर्मार्थ ट्रस्ट, होशंगाबाद (म.प्र.)

श्री कमल बत्तीसी जी ग्रंथ

(अध्यात्म कमल - टीका)

टीकाकार - पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज

दशलक्षण महापर्व - सितंबर १९९९

प्रथम संस्करण - ४५००

* प्रकाशक संक्षेप - (नि:शुल्क ज्ञानदान प्रभावना हेतु) *

स्व. श्री ठाकुरसीलाल विनयकुमार जैन धर्मार्थ ट्रस्ट, होशंगाबाद-	१००० प्रति
श्री भैयालाल जी, शिखरचंद, मदनमस्त जैन सिलवानी-	१००० प्रति
श्री मती सूरजदेवी जैन, गांधी चौक, गंजबासौदा-	५०० प्रति

* सशुल्क प्रचार प्रभावना हेतु *

ब्रह्मानन्द आश्रम, पिपरिया (होशंगाबाद) म. प्र. -	१००० प्रति
ब्र. सुशीला बहिनजी ता.त. जैन धार्मिक ट्रस्ट बीना -	१००० प्रति

मूल्य - आत्म चिंतन

प्राप्ति स्थल -

१- पं. विजय मोही (पत्रकार)
मंत्री -ब्रह्मानन्द आश्रम, संत तारण तरण मार्ग,
पिपरिया, जिला - होशंगाबाद (म.प्र.) ४६१ ७७५

२- प्रवीण जैन (मंत्री)
श्री तारण तरण अध्यात्म प्रचार योजना केन्द्र
६१, मंगलवारा, भोपाल (म.प्र.) ४६२ ००१

३- दिगम्बर पुस्तक भंडार
मेन रोड, होशंगाबाद (म.प्र.)
फोन: ५३८४८

४- दिगम्बर पुस्तक वाला
मेन रोड, इटारसी (म.प्र.)
फोन: ३४५२२

अक्षर संयोजन एवं अभिकल्पन :- एडवांस्ड लाईन, मानक अपार्टमेंट, कस्तूरबा नगर, भोपाल. फोन· २७४२८६
मुद्रक - एम.के ऑफसेट, ए-१२१, कस्तूरबा नगर, भोपाल. फोन: ५८८५७९, ९८२७०५८८५७

प्रकाशकीय

साहित्य समाज का दर्पण होता है, मनुष्य जैसा साहित्य पढ़ता है, वैसे ही उसके मन में विचार बनते हैं, उन विचारों के अनुरूप धारणा और धारणा के अनुरूप कर्म तथा कर्म के अनुसार सुगति और दुर्गति का मार्ग बनता है इसलिये साहित्य जीवन की आधारशिला है। हमारे तारण समाज में गुरूवाणी साहित्य की वर्षों से कमी महसूस की जाती रही है, फिर भी इस क्षेत्र में आदरणीय स्व. ब्र. श्री शीतल प्रसाद जी, ध.दि.स्व.पू.ब्र. श्री गुलाबचंद जी महाराज, समाज रत्न पूज्य ब्र. जयसागर जी महाराज, कविभूषण स्व. अमृतलाल जी चंचल एवं स्व. पं. श्री चम्पालाल जी सोहागपुर ने गुरूदेव तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज के ग्रंथों की टीकायें कर साहित्य की कमीं को पूर्ण करने का श्रेष्ठ प्रयास किया है और अब साहित्य के क्षेत्र में हमें पूज्य श्री ज्ञानानन्द जी महाराज द्वारा की गई टीकायें उपलब्ध हो रही हैं।

पूज्य श्री महाराज जी ने श्री गुरू तारण स्वामी कृत श्री मालारोहण, पंडित पूजा, कमलबत्तीसी, श्रावकाचार, उपदेश शुद्धसार और त्रिभंगीसार ग्रंथ की सहज सरल भाषा में टीकायें लिखी हैं। इनमें से श्री मालारोहण, पंडितपूजा और कमलबत्तीसी जी का प्रकाशन हो चुका है।

तारण समाज में साहित्य की इस कमी को अब पूज्य श्री ज्ञानानन्द जी महाराज एवं श्री संघ द्वारा पूर्ण किया जा रहा है। यह हमारा सौभाग्य है कि इतनी सहज, सरल, सुबोध भाषा में गुरूवाणी का स्वाध्याय करने, समझने का हमें सुअवसर प्राप्त हो रहा है। पूज्य श्री महाराज जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन धर्म साधना आराधना में लगाया है। उनके आशीर्वाद से आज तारण समाज में धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक जागरण हो रहा है यह समाज की विशेष उपलब्धि है। पूज्य ब्र. श्री बसंत जी महाराज ने सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर गुरूवाणी का प्रचार-प्रसार कर अपनी आम्नाय की पहिचान को उजागर किया है। आज सारे देश में लोग सद्गुरू तारण स्वामी की वाणी को जानकर उनके ग्रंथों के स्वाध्याय का क्रम बना रहे हैं। साथ ही ब्र. श्री स्वरूपानंद जी, बा. ब्र. श्री आत्मानंद जी, ब्र. श्री सहजानंद जी (बाबाजी), बा. ब्र. श्री शांतानंद जी तथा बाल ब्र. श्री सरला जी, बा. ब्र. ऊषा जी, बा. ब्र. नंदश्री, ब्र. विमलश्री, ब्र. किरण जी आदि बहिनें ने सम्पूर्ण समाज में भ्रमण और जन जागरण अभियानों के द्वारा अध्यात्म की धारा प्रवाहित की है।

पूज्य श्री के उपकार सदा अविस्मरणीय हैं। श्री गुरु तारण स्वामी जी महाराज द्वारा लिखित चौदह ग्रंथों में अनेकों आध्यात्मिक अनुभूतियां, अंतर्निहित हैं, जिन्हें पूज्य श्री महाराज जी ने आत्मसात् कर स्वयं ज्ञानमार्ग, अध्यात्म के मार्ग में अग्रसर हुए और इन ग्रंथों की टीकायें लिखीं।

श्री गुरु तारण स्वामी कृत इस कमलबत्तीसी ग्रंथ में सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन किया गया है। पूज्य श्री महाराज जी ने इस ग्रंथ की "अध्यात्म कमल" टीका की है, जिसमें सम्यक्चारित्र के स्वरूप को आगम और अध्यात्म की शैली से सप्रमाण बताया गया है, समझाया गया है।

हमारे परिवार का महान पुण्य का उदय आया है कि इस टीका ग्रंथ के प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्षों की यह भावना आज साकार होते हुए देखकर मुझे और मेरे परिवार के सभी लोगों को अपार प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। हमारी पूज्या माताजी श्रीमति शांतिबाई जी का आशीर्वाद एवं परिवार का सहयोग इस शुभ कार्य में हमें आत्म बल की वृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ है। अध्यात्म रत्न बाल ब्र. पू. श्री बसंत जी महाराज ने इस ग्रंथ का संपादन कर सभी के लिये स्वाध्याय हेतु सुलभ बनाया है हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं। इस ग्रंथ के प्रकाशन में पं. श्री राजेन्द्रकुमार जी अमरपाटन, पं. श्री वीरेन्द्रकुमार जी भुसावल, ब्रम्हानंद आश्रम के अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी हितैषी, मंत्री श्री विजय मोही, मेरे अनुज श्री प्रकाश जी, श्री प्रभात जी एवं स्व. बड़े भैया चित्रसेन जी के चिरंजीव नितिन, नीतेश का विशेष सहयोग रहा एतदर्थ सभी सहयोगियों के हम हृदय से आभारी हैं।

धर्म प्रभावना के शुभ कार्यों में पूज्य श्री ज्ञानानंद जी महाराज, पू. श्री बसंत जी महाराज एवं श्री संघ की प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त होता रहे, यही भावना है।

होशंगाबाद | सुभाष दिगम्बर
२९ मार्च १९९९ (महावीर जयंती)

जो अनन्त सिद्ध परमात्मा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं [illegible]
[illegible]
[illegible]
प्राप्त करेंगे यह श्री जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

सम्पादकीय

भारतीय वसुन्धरा संतभूमि है, यहाँ समय-समय पर ज्ञानी, योगी संत महापुरुषों का अवतरण होता रहा है। वर्तमान चौबीसी में हुए प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव से भगवान महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर, अतीत की चौबीसी, भविष्य में होने वाली चौबीसी तथा समय-समय पर हुए ज्ञानी आचार्य, सद्‌गुरू संत पुरुष इस बात के प्रमाण हैं। संत ही संसार के जीवों को सत्य का स्वरूप, सन्मार्ग, सत्य धर्म का मार्ग, आत्म कल्याण का उपाय बताते हैं। कहा भी है -

आग लगी आकाश में, झर-झर गिरे अंगार।
संत न होते जगत में, जल जाता संसार ॥

संतों की महिमा अपूर्व है, संत ही धर्म और संस्कृति के आधार हैं। मात्र जैन परम्परा में ही नहीं, अपितु संसार के अनेक सम्प्रदायों में आध्यात्मिक चेतनाओं के रूप में संतों ने जन्म लिया और जगत के जन-मानस को अध्यात्म और धर्म का स्वरूप बताया। सोलहवीं शताब्दी में श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज जिन परम्परा में हुए शुद्धात्मवादी आध्यात्मिक क्रान्तिकारी वीतरागी संत थे। वि. सं. १५०५ में मिति अगहन सुदी सप्तमी को पुष्पावती नगरी में उनका जन्म हुआ था। पूज्य पिता श्री गढाशाह जी, माता वीर श्री देवी के आनन्द का पार नहीं था। अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा, प्रज्ञा के धनी थे - गुरू तारण तरण।

ग्यारह वर्ष की बाल्यावस्था में सम्यक्‌दर्शन, इक्कीस वर्ष की किशोर अवस्था में बाल ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा, तीस वर्ष की युवावस्था में ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण करना और साठ वर्ष की आयु में निर्ग्रन्थ, दिगम्बर साधु होना, यह सब उनका जीवन यह सिद्ध कर रहा है कि वे संसार से विरक्त, विरागी, वीतरागी, निस्पृह, आकिंचन्य मोक्षमार्गी संत थे। संसार और संसार के प्रपंच में पडना तो दूर, इसकी तरफ वे देखना भी नहीं चाहते थे, इसी कारण उनका ज्ञान, ध्यान, साधना और वीतरागता दिनों-दिन वृद्धिगत होती गई।

साधु पद धारण करने के पश्चात् श्री गुरू १५१ मण्डलों के आचार्य होने से ''मण्डलाचार्य'' पद से अलंकृत हुए। उनके श्री संघ में ७ निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज (साधु) और ३६ आर्यिकायें अपनी आत्म साधना में रत थीं, जिनके नाम इस प्रकार हैं।

तारण तरण श्री संघ के ७ साधु -

१. श्री हेमनन्दि जी महाराज	२. श्री चंद्रगुप्त जी महाराज
३. श्री समंतभद्र जी महाराज	४. श्री चित्रगुप्त जी महाराज

५. श्री समाधि गुप्त जी महाराज ६. श्री जयकीर्ति जी महाराज

७. श्री भुवनन्द जी महाराज

३६ आर्यिका माताजी के नाम –

१. कमल श्री	२. चरन श्री	३. करन श्री	४. हंस श्री
५. सुवन श्री	६. औकास श्री	७. दिप्ति श्री	८. स्वयं दिप्ति श्री
९. अभय श्री	१०. स्वर्क श्री	११. सर्वार्थ श्री	१२. विक्त श्री
१३. आनन्द श्री	१४. समय श्री	१५. हिय उत्पन्न श्री	१६. हिय रमन श्री
१७. अलष श्री	१८. अगम श्री	१९. सहयार श्री	२०. उवन श्री
२१. रमन श्री	२२. उत्पन्न श्री	२३. षिपन श्री	२४. ममल श्री
२५. विन्द श्री	२६. समय श्री	२७. सुन्न सुनन्द श्री	२८. हिययार श्री
२९. जान श्री	३०. श्रेणि श्री	३१. जैन श्री	३२. लवन श्री
३३. लीन श्री	३४. भद्र श्री	३५. उवन श्री	३६. पय उवन श्री

इस प्रकार श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज के श्री संघ में ७ साधु, ३६ आर्यिका माताजी के साथ–साथ २३१ ब्रह्मचारिणी (सुवनी) बहिने तथा ६० ब्रह्मचारी व्रती श्रावक एवं १८ क्रियाओं का पालन करने वाले सद्ग्रहस्थ श्रावक लाखों की संख्या में थे। उनके शिष्यों की कुल संख्या ४३४५३३१ थी। यह सपूर्ण विवरण श्री नाममाला ग्रथ में उपलब्ध है।

इससे यह प्रमाणित हो गया है कि आचार्य श्री जिन तारण स्वामी सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र के साधक थे। उनके संघ के सभी जीव सत्श्रद्धान, ज्ञानपूर्वक चारित्राराधना मे रत रहते थे। श्री गुरूदेव तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने अपनी आत्म साधना के तहत चौदह ग्रंथों की रचना की, जिनमें विचार मत के अन्तर्गत – सम्यक्दर्शन का प्रतिपादक – श्री मालारोहण जी ग्रंथ, सम्यक्ज्ञान का प्रतिपादक – श्री पडित पूजा जी ग्रथ और सम्यक्चारित्र का प्रतिपादक यह श्री कमल बत्तीसी जी ग्रंथ है। सम्यक्दर्शन जहाँ धर्म का मूल है, मोक्षमहल की प्रथम सीढी है वही सम्यक्चारित्र मोक्ष महल का द्वार है। सम्यक्चारित्र के बिना कोई भी जीव मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। तीर्थंकर भगवान, जिनकी मुक्ति होना निश्चित रहता है, उन्हे भी चारित्र धारण करने पर ही मोक्ष प्राप्ति होती है।

इस कमल बत्तीसी जी ग्रंथ में सम्यक्चारित्र का सांगोपाग विवेचन किया गया है। श्री गुरु तारण स्वामी जी महाराज की गाथाओं के रहस्यपूर्ण हार्द को पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानंद जी महाराज ने अपनी साधना की अनुभूतियों सहित निश्चय–व्यवहार से समन्वित सम्यक्चारित्र के आधारभूत सिद्धान्त और साधना को स्पष्ट कर स्वयं का मार्ग तो बनाया ही है, साथ–साथ हम सभी जिज्ञासु आत्मार्थी भव्यात्माओं को धर्म के सत्स्वरूप का बोध कराकर महान

उपकार किया है।

सम्यक्दर्शन के बिना ज्ञान, सम्यक्ज्ञान नहीं होता और सम्यक्दर्शन ज्ञान के बिना चारित्र, सम्यक्चारित्र नहीं होता इसीलिए सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता को ही आचार्यों ने मोक्षमार्ग कहा है। सम्यक्चारित्र की विशेषता और उसमें रत रहने की प्रेरणा देते हुए पूज्य तारण तरण गुरूदेव कहते हैं –

अप्पा परू पिच्छन्तो, पर पर्जाव सल्य मुक्तानं।
न्यान सहावं सुद्धं, सुद्धं चरनस्य अन्मोय संजुत्तं ॥

अर्थात् आत्मा और पर को भिन्न-भिन्न पहिचानने से पर पर्याय शल्य छूट जाती हैं। अपना ज्ञान स्वभाव शुद्ध है, इसी ज्ञान स्वभाव में लीन रहो यही शुद्ध सम्यक्चारित्र है।

जिन धर्म प्रभावक, महान संत आचार्य कुन्द कुन्द देव ने भी इसी प्रकार सम्यक्चारित्र का स्वरूप प्रतिपादित किया है –

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोह विहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो ॥
(प्रवचनसार गा. ७)

तत्वत: चारित्र ही धर्म है, यही धर्म साम्य स्वरूप है। मोह तथा क्षोभ (राग-द्वेष) रहित आत्म परिणति ही जीव का सच्चा धर्म है।

चारित्र ही धर्म है यह बात सूक्ष्म है, सामान्य रूप से संसार समझता है क्रियाकांड अर्थात् चारित्र। चारित्र शब्द सुनते ही जग के जीवों को ''क्रिया करना'' ऐसा अहसास होने लगता है किन्तु ज्ञानी विवेकवान जीव, चारित्र के वास्तविक अभिप्राय को जानते हैं। ज्ञानियों के ज्ञान में चारित्र या वस्तु स्वरूप के बारे में भ्रम नहीं रहता। यदि ज्ञानी स्वरूप में रमणता को निश्चय चारित्र जानते हैं तो पाप, विषय-कषायों से निवृत्ति को व्यवहार चारित्र जानते हैं और जैसा जानते हैं, मानते हैं वैसा ही आचरते हैं। ज्ञानी स्वतंत्र होता है, स्वच्छंद नहीं होता। ज्ञानी, तत्व ज्ञान की आड में विषय पोषण और मनमानी करने के अभिप्राय से पूर्णत: रहित है। उसका प्रयोजन वीतरागी होना है वह संसार के दु:खों से भयभीत, संवेगी, आत्मार्थी है।

जो जीव तत्व निर्णय की आड में विषयों का, पापों का पोषण करते है उनने सत्य को समझा ही नहीं है। कोई व्यक्ति किसी की वस्तु बिना पूछे उठा लेवे और बाद में उस व्यक्ति पर चोरी करने का आरोप लगे और वह कहे कि ''मैंने चोरी नहीं की'' यह तो उस वस्तु का क्षेत्र से क्षेत्रान्तर हुआ है, ऐसा मानने वाला जीव महा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है।

कोई जीव रूचिपूर्वक पाप करे, जुआं आदि व्यसनों का सेवन करे, अन्याय

अनीतिपूर्ण जीवन जिये और कहे कि "वह तो जो होना है वह सब तत्समय की योग्यतानुसार हो रहा है, सब क्रमबद्ध परिणमन है।" ऐसे जीवों की बुद्धि पर ज्ञानी संत भगवन्तों को तरस आता है कि हे जीव! तुझे अभी लोक व्यवहार, लोकाचार का ही ख्याल नहीं है तो निश्चय धर्म, वस्तु स्वरूप, सत्य तुझे कैसे उपलब्ध होगा ?

वस्तुत: तत्वनिर्णय स्वच्छंदी होने के लिए नहीं, वीतरागी होने के लिए है। अज्ञानी तत्व निर्णय की आड में स्वच्छंद वर्तन कर अपनी ही दुर्गति का मार्ग बनाता है और धर्म मार्ग को कलंकित करता है। जो ज्ञान, विषय और पापों की ओर ले जाये वह सारा ज्ञान, कुज्ञान, अज्ञान है। सच्चा ज्ञान वही है जो जीव को पाप विषय कषायों से निर्वृत्त कर संयम और चारित्र में स्थित कर देता है। जिस भव्य जीव के अंतरंग में सम्यक्ज्ञान की कला जागे और फिर वह संसार के विपरीत मार्ग में चले यह संभव ही नहीं है - नाटक समयसार से यह कथन प्रमाणित है जैसा कि कहा गया है -

जिनके ज्ञान कला घट जागी, ते जग मांहि सहज वैरागी।
ज्ञानी मगन विषय सुख माहीं, यह विपरीत संभवै नाहीं॥

ज्ञानी का जीवन तो निश्चय-व्यवहार से समन्वित होता है वह जानता है कि -

"मुक्ति श्रियं पथं सुद्धं, विवहार निस्चय सास्वतं"

इसीलिए ज्ञानी की अन्तरंग भावना होती है कि -

अध्यात्म ही संसार के, क्लेशोदधि का तीर है।
चलता रहूं इस मार्ग पर, मिट जायेगी भव पीर है॥
ज्ञानी बनूं ध्यानी बनूं अरू, शुद्ध संयम तप धरूं।
व्यवहार निश्चय से समन्वित, मुक्ति पथ पर आचरूं॥

(ब्र. बसंत - अध्यात्म आराधना)

सम्यक्चारित्र प्रत्यक्ष मुक्ति का द्वार है। सम्यक्चारित्र क्या है, उसके भेद कौन से हैं और किस प्रकार उनका जीवन में प्रयोग आचरण होता है ? इस रहस्य को श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने स्वयं स्पष्ट किया है -

न्यानं दंसन सम्मं, सम भावना हवदि चारित्तं।
चरनं पि सुद्ध चरनं, दुविहि चरनं मुनेयव्वा॥
सम्मत्त चरन पढमं, संजम चरनंपि होइ दुतियं च।
सम्मत्त चरन सुद्धं, पच्छादो संजमं चरनं॥

(ज्ञानसमुच्चयसार गा. २६२-२६३)

सम्यक्दर्शन ज्ञान सहित जो सम भावना, वीतराग भावना होती है वही चारित्र है। अपने शुद्ध स्वभाव में आचरण करना ही चारित्र है। चारित्र के दो भेद जानो - पहला सम्यक्त्वाचरण चारित्र और दूसरा संयमाचरण चारित्र है। पहले सम्यक्त्वाचरण से शुद्ध होना, पश्चात् संयमाचरण चारित्र होगा।

सम्यक्त्व का उदय होते ही दृष्टि परिवर्तन लक्षित होने लगता है। जो दृष्टि पहले क्षणिक की ओर थी, इन्द्रिय सुखों की ओर थी वह अब नित्य शाश्वत एवं स्थायी सुख स्वरूप आत्मा के सन्मुख हो जाती है। ग्रहीत मिथ्यात्व छूटते ही सच्चे देव, गुरू, शास्त्र की श्रद्धा प्रगट हो जाती है, दृष्टि आत्मा के सन्मुख हो जाती है। चूंकि बुद्धिपूर्वक उसने विपरीत श्रद्धान को ग्रहण कर रखा था, इसीलिये बुद्धिपूर्वक शुद्धात्म स्वरूप का निर्णय कर उस ओर झुक जाता है। क्षणिकता की ओर से उसकी रूचि हटकर आत्मा के ध्रुव गुणों में रूचि बढ जाती है। वास्तव में शुद्धात्मा की ओर झुकने, बढने रूप जो उपयोग होता है इसी को स्वरूपाचरण या सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं। असंयतादि गुणस्थानों में सम्यक्त्व के कारण परिणामों में जो निर्मलता एवं आंशिक स्थिरता होती है, उसको आगम में सम्यक्त्वाचरण रूप चारित्र कहा गया है। मोक्षमार्ग में इसका प्रधान स्थान है। इसकी पूर्णता बारहवें गुणस्थान में होती है।

सम्यक्दर्शन ज्ञान पूर्वक पापादि से निर्वृत्ति रूप जो आचरण, संयम का पालन, इंन्द्रियों का निग्रह, कषायों पर विजय पूर्वक अपने स्वरूप की सुरत रखना संयमाचरण चारित्र है, यह सम्यक्दर्शन पूर्वक ही होता है। अणुव्रत, महाव्रत रूप आचरण इसकी विशेषताएं हैं।

ऐसे आनंदमयी मोक्षमार्ग के आधारभूत सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने इस ग्रंथ में किया है और इस ग्रंथ का नाम दिया है- ''कमल बत्तीसी''। कमल स्वभाव की साधना - आराधना, चारित्र संयम आचरण का विधि विधान ३२ गाथाओं मे होने के कारण इस ग्रंथ का कमल बत्तीसी नाम ''यथा नाम तथा गुण'' को प्रसिद्ध कर रहा है। कमल बत्तीसी नाम होने के पीछे एक विशेष कारण यह भी है कि श्री गुरू तारण तरण देव की जन्मस्थली का नाम पुष्पावती है। यह प्राचीनकाल से ऐतिहासिक नगरी रही है। पुष्पावती के ''पंच पकार'' आज भी प्रसिद्ध हैं - पान, पन्हैया, पानी, पत्थर और पुष्प। इनमें से पुष्प की जहां तक बात है, उस नगरी में आज भी कमल पुष्प वहाँ के तालाबों में खिलते हैं। पूर्व के शासक राजा-महाराजाओं ने वहाँ जो मंदिर बावडी आदि के निर्माण करवाये उनमें कमल पुष्पों की रचना महत्वपूर्ण है और आज भी पत्थर-पत्थर पर उत्कीर्ण पुष्प मिलते हैं। कमल पुष्प की बडी विशेषता है, वह यह कि कमल, पानी और

कीचड में रहता हुआ भी सबसे अलिप्त न्यारा रहता है। इसी प्रकार आत्म तत्व चैतन्य कमल भी द्रव्यकर्म, भाव कर्म, नोकर्म आदि के संयोगों में रहता हुआ भी सदैव निर्लिप्त न्यारा ज्ञानमय ज्ञायक चैतन्य स्वरूप ही रहता है। श्री गुरूदेव तारण स्वामी जी ने ऐसा अपने कमल स्वभाव का अनुभवन किया और उसी की महिमा को व्यक्त करने हेतु यह कमल बत्तीसी जी ग्रंथ लिखा।

जैसे - कमल, पानी कीचड में रहता हुआ भी खिला रहता है। इसी प्रकार मोक्षमार्गी ज्ञानी साधक सब संयोगों में रहता हुआ भी कमल की तरह प्रफुल्लित रहता है यही धर्म और चारित्र की सच्ची आराधना है। कहा भी है -

स्वसत्ता पर के स्वरूप का, जिसको सम्यक् ज्ञान जगा।
मिथ्याभाव शल्य आदि का, भ्रम भय सब अज्ञान भगा॥
सारे कर्म विला जाते हैं, धरता आतम ध्यान है।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है॥

(पू. श्री ज्ञानानंद जी महाराज, कमल बत्तीसी जयमाल)

यह एक सुखद शुभ योग है कि इस कमल बत्तीसी ग्रथ की पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानंद जी महाराज ने ''अध्यात्म कमल'' नामक टीका की है। सर्वत्र कमल स्वरूप शुद्धात्म देव की ही महिमा है। गुरूदेव तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने इस ग्रंथ की ३२ गाथाओं में जो रहस्य स्पष्ट किया है। पू. श्री महाराज जी ने अपनी भाषा में वे सभी आध्यात्मिक साधना परक रहस्य स्पष्ट किये है, जो ग्रंथ की गाथाओं में निहित हैं। अनुभव प्रकाश हेतु कतिपय रत्न प्रस्तुत हैं-

कर्म बंधनों से सर्वथा मुक्त होना हो तो एक ही उद्देश्य हो-तत्व ज्ञान की प्राप्ति करना और इसके लिये सांसारिक संग्रह में, भोग बुद्धि, सुख बुद्धि और रस बुद्धि नहीं होना तथा निषिद्ध आचरण पाप, अन्याय, झूठ, कपट आदि का हृदय से त्याग कर देना तभी अपने स्वरूप में तन्मयता होती है, जिससे समस्त कर्म बंध क्षय होते हैं।

(गाथांश - ६)

शरीर इन्द्रियां, मन बुद्धि के द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियायें पृथक भिन्न, ज्ञेय ही हैं तथा जीवात्मा स्वयं इनसे सर्वथा निर्लिप्त असम्बद्ध और पृथक ही है।

(गाथांश - ७)

सद्गुरू तारण स्वामी कहते हैं कि मन को शान्त नहीं करना, स्वयं शान्त होना है, भाव विभावो को नहीं बदलना है, स्वयं निज स्वभाव में रहना है। यह मन आदि तो स्वयं ही नाशवान हैं। जैसे - आकाश में बादल दिखाई देते हैं लेकिन थोडे समय में सब अपने आप विला जाते हैं, ऐसे ही यह मन संसारी

भाव भी सब नाशवान विला जाने वाले हैं। तुम इन्हें मत देखो, भेदज्ञान तत्व निर्णय के बल से अपने शुद्ध स्वभाव, ममल स्वभाव में लीन रहो, यही मुक्ति मार्ग है।

(गाथांश - ७)

कर्म के फल के प्रति उदासीन ज्ञानी के कर्माश्रव नहीं होता, पूर्वबद्ध कर्मों को उदय में आने से वह रोक नहीं सकता अतः उसकी इच्छा के बिना भी वे उदय में आते हैं तथापि उस उदय स्थिति में ज्ञानी कर्म के परवश नहीं होता किन्तु अपने ममल स्वभाव की श्रद्धानुसार अपने ज्ञान स्वभाव में लीन रहता है। अपना उपयोग अन्यत्र न जावे,अपने में रहे यही उसका पुरूषार्थ है।

(गाथांश - ८)

सम्यक्दर्शन होने पर सम्यक्ज्ञान द्वारा वस्तु स्वरूप को जाना जाता है। तब राग-द्वेष और पांचों इन्द्रियों के विषयों से विरक्ति हो जाती है फिर राग-द्वेष विषयादि स्वयं छूटने लगते हैं यही सम्यक्चारित्र का प्रगटपना है। सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सहित सम्यक्चारित्र की एक मुहूर्त की स्थिति में सारे घातिया कर्मों का क्षय होकर अनन्त चतुष्टय स्वरूप अरिहन्त पद प्रगट हो जाता है।

(गाथांश - ८)

कर्मोदय परिणामों में, रागादि भावों में भ्रमना, चकराना, उन्हें अच्छे बुरे मानना, यही अज्ञान बंध का कारण है इसलिए भेदज्ञान पूर्वक तत्व निर्णय करके अपने ममल स्वभाव में रहो। अपने शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वभावी शुद्धात्मा को देखो, उसी की साधना अभ्यास करो तो फिर यह कुछ होगा ही नहीं, ज्ञानी होने के बाद सम्यक्चारित्र का यही पुरूषार्थ है ।

(गाथांश - १५)

आत्मा ही आनंद का धाम है उसमे अन्तर्मुख होने से ही सुख है। ऐसे अपने आत्म स्वभाव का जो विरोध करते हैं और संसारी व्यवहार जीवों के दया, दान परोपकार आदि राग भाव को धर्म मानते हैं, वे संसार परिभ्रमण के दुःख का बीज बोते हैं।

(गाथांश - २३)

चतुर्गति के दुःख से छूटने और मुक्त होने का एक ही उपाय है कि सहज ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त गुण समृद्धि से परिपूर्ण जो निज शुद्धात्म तत्व ममल स्वभाव है, उसे अपूर्ण विकारी और पूर्ण पर्याय की अपेक्षा बिना लक्ष्य में लेना, अपने ध्रुव स्वभाव का लक्ष्य करना वह द्रव्य दृष्टि है, शुद्ध दृष्टि है। यथार्थ ज्ञान करके अपने ममल स्वभाव में एकाग्र होना तब ही परमात्म रूप

समयसार अनुभूत होता है। आत्मा का अपूर्व और अनुपम अतीन्द्रिय आनन्द अनुभव में आता है, आनन्द अमृत के झरने, झरते हैं। इससे संसार से दृष्टि हट जाती है, व्यवहार छूट जाता है, वीतरागता प्रगट होती है यही सम्यक्‌चारित्र मुक्ति मार्ग है।

(गाथांश - २४)

इस प्रकार के अनेको रहस्य पूज्य श्री ने इस टीका ग्रंथ में स्पष्ट किये हैं। प्रश्नोत्तर, विशेषार्थ, शब्दार्थ आदि के द्वारा विषय वस्तु बहुत स्पष्ट हुई है। एक गाथा से दूसरी गाथा के बीच जो सम्बन्ध है उसे बनाने और विषयवस्तु के स्पष्टीकरण हेतु प्रत्येक गाथा से पूर्व प्रश्न रखकर संपूर्ण ग्रंथ को पूज्य श्री ने अखण्डता प्रदान कर दी है।

इस प्रकार की टीकायें अपने आप में विशेष महत्वपूर्ण हैं, साथ ही भव्य जीवो को, स्वाध्यायी मुमुक्षु भव्यात्माओं को विशेष उपलब्धि है। इस प्रकाशन के पूर्व श्री मालारोहण और पंडित पूजा की टीकाओं का प्रकाशन हुआ, जिससे समाज मे स्वाध्याय के रूप मे नवीन क्रम बन रहा है। वस्तुत: इन ग्रंथो का सदुपयोग तभी है जब सामूहिक रूप से इनका स्वाध्याय मनन हो और अपनी दृष्टि आत्मोन्मुखी हो यही इन टीकाओ का यथार्थ उपयोग है।

पूज्य श्री द्वारा की गई यह टीकायें आत्मार्थी जीवो के लिए विशेष देन है और महान उपकार है कि सभी भव्य जीवो के लिये सत्य धर्म, वस्तु स्वरूप समझने और आत्म कल्याण करने का मार्ग प्रशस्त किया।

सभी भव्य जीव इन टीका ग्रथों के स्वाध्याय, चिंतन-मनन से रत्नत्रय मयी आत्म स्वरूप को स्वानुभव में प्रगट करें और अनादिकालीन मोह-माया के बंधन से मुक्त होकर अविनाशी शाश्वत परम पद को प्राप्त करने का मंगलमय पथ प्रशस्त कर इस अनमोल मानव जीवन को सफल बनायें, यही पवित्र भावना है।

ब्रह्मानंद आश्रम, पिपरिया

दिनाक - १५ मार्च १९९९ **ब्र. बसंत**

चैतन्य स्वभाव का अनुभवी ज्ञानी, जाति और कुल को नहीं देखता बल्कि शुद्ध सम्यक्त्व सहित आत्मानुभव रूप सम्यग्दर्शन को पाहिचानता है। शुद्ध ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना में रत रहता हुआ अज्ञान सल्य और मिथ्यात्व को छोड देता है।

अध्यात्म कमल

जिनवयनं सद्दहनं, कमलसिरि कमल भाव उववन्नं ।
अर्जिक भाव सउत्तं, ईर्ज सभाव मुक्ति गमनं च ।।

श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य महाराज से उनकी प्रमुख शिष्या कमल श्री ने प्रश्न किया कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान के बाद मुक्ति मार्ग पर चलने के लिए सम्यग्चारित्र की कैसी साधना करें ?

श्री गुरू महाराज ने कहा कि तुम्हें भेदज्ञान तत्व निर्णय पूर्वक वस्तु स्वरूप का निर्णय हो गया है तो अब जिनेन्द्र के वचनों का श्रद्धान करो-मैं ध्रुवतत्व शुद्धात्मा हूँ यह एक-एक समय की चलने वाली पर्याय और जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यही सर्वज्ञ की सर्वज्ञता की स्वीकारता है तथा कमलभाव (ज्ञायकपना) प्रगट करो, अर्जिक भाव (साधुता के भाव) से संयुक्त रहो - अर्जिका साधु पद धारण करो, यह सरल स्वभाव में रहना ही मोक्षमार्ग है। इन चार बोलों में श्री गुरू ने निश्चय व्यवहार से समन्वित मुक्ति का यथार्थ मार्ग बताया है।

आज धर्म के नाम पर या तो निश्चय की चर्चा होती है या बाह्य आचरण व्यवहार को धर्म मुक्ति मार्ग मान लेते हैं ; जबकि जैन धर्म मुक्ति मार्ग निश्चय व्यवहार से समन्वित शाश्वत है। मोक्ष की सिद्धि के लिये चारित्र की अतिशय आवश्यकता है। बिना आत्मानुभव के अभ्यास के वीतरागता की वृद्धि नही हो सकती और बिना वीतरागता के कर्मों का नाश नहीं हो सकता। ज्ञायक, ज्ञान स्वभाव मे रहना ही सम्यक्चारित्र है। वर्तमान जीवन कर्म सापेक्ष कर्म संयोगी है - शरीरादि संयोग है, इसका भेदज्ञान पूर्वक निर्णय करना कि इस शरीरादि से भिन्न मै एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा हूँ, यह शरीरादि (शरीर - सयोग - भाव) मैं नहीं और यह मेरे नही हैं। यह अनुभव प्रमाण बोध होना ही सम्यक्दर्शन है।

स्व-पर का यथार्थ निर्णय होना सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान पूर्वक हर दशा में हर समय ज्ञायक ज्ञानानंद में रहना अध्यात्म कमल सम्यग्चारित्र है और इसका परिणाम कि कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई बनता वह भगवान है। इसका विशद् विवेचन प्रश्नोत्तर के माध्यम से इस कमलबत्तीसी जी ग्रन्थ में किया है। इसकी टीका सहज सरल सुबोध भाषा में पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानंद जी ने की है जो सभी भव्य जीवों के लिये कल्याणकारी है। हम सभी धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझ कर मुक्ति मार्ग-''सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग :।।'' के पथिक बनें तभी इस मानव जीवन की सार्थकता है।

इसके स्वाध्याय चिन्तन मनन से सबके जीवन में अध्यात्म कमल खिलें ज्ञायक दशा प्रगट हो, यही पवित्र भावना है।

सिलवानी **ब्र. किरण**

दिनांक १४.३.९९

सम्यक्चारित्र

सम्यक्दर्शन धर्म का मूल है और सम्यक्चारित्र मुक्ति को प्राप्त करने का द्वार है। सम्यक्चारित्र के बिना कोई भी जीव मुक्त नहीं हो सकता। सम्यक्दर्शन, ज्ञान सहित जो व्रतादि रूप आचरण होता है वही सम्यक्चारित्र कहलाता है।

''पाप क्रिया निर्वृत्तिः चारित्रम्'' पाप क्रिया से निवृत्ति को चारित्र कहते हैं। इसके दो भेद हैं -

१. व्यवहार चारित्र २. निश्चय चारित्र

पाप, विषय-कषाय आदि अशुभाचरण से निर्वृत्त होकर व्रतादि रूप शुभाचरण में प्रवृत्ति होना व्यवहार चारित्र है और जो पर द्रव्यात्मक भावों से रहित स्वरूप वाला वर्तता हुआ निज स्वभाव भूत दर्शन ज्ञान रूप भेद को आत्मा से अभेद रूप आचरता है वह स्व चारित्र या निश्चय चारित्र है।

निश्चयनय के अभिप्राय के अनुसार आत्मा का आत्मा में, आत्मा के लिये तन्मय होना ही निश्चय चारित्र है। ऐसे चारित्र शील योगी को ही निर्वाण की प्राप्ति होती है।

श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने ऐसे महिमामयी सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन इस कमलबत्तीसी जी ग्रंथ में किया है। ज्ञानी, निश्चय-व्यवहार से समन्वित मोक्षमार्ग पर चलता है,वह एकान्तवादी नहीं होता। विवेकपूर्वक आचरण में संलग्न रहता हुआ अंतरंग में अपनी संभाल रखता है, यही साधक की विशेषता होती है।

इस अध्यात्म कमल टीका में पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानंद जी महाराज ने अपनी साधना की अनेक अनुभूतियों सहित ग्रंथ की गाथाओं का विशेष-विशेष अभिप्राय स्पष्ट कर आत्मार्थी साधकों पर महान उपकार किया है। सभी साधकों और श्रावकों के लिये यह टीका आत्म कल्याण का पथ प्रशस्त करेगी। मैंने भी पूज्य श्री के आशीर्वाद से इस मार्ग मे आत्म कल्याण हेतु आगे बढने का संकल्प किया है।

इस अध्यात्म कमल टीका के स्वाध्याय मनन से सभी भव्यात्माओं का हृदय कमल अध्यात्म मय खिले और सभी जीव अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें यही शुभ भावना है।

शिवराजपुर (सतना) ब्र. शांतानंद

दिनांक २५.३.१९९९

सम्यक्चारित्र सूत्र

* * *

१. चारित्र शून्य पुरूष का विपुल शास्त्राध्यन भी व्यर्थ ही है, जैसे- अंधे आदमी के सामने लाखों करोडों दीपक जलाना व्यर्थ है। चारित्र संपन्न का अल्पतम ज्ञान भी बहुत है।

२. सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान के साथ जो मूल और उत्तर गुणों का पालन करता है, वही चारित्र है, अन्य नही तथा यही चारित्र मोक्ष का कारण है।

३. असंयत, देश संयत सम्यक्दृष्टि को कषायों की प्रवृत्ति तो है परन्तु उसकी श्रद्धा में कोई भी कषाय करने का अभिप्राय नहीं रहता, पर्याय में कषाय होती है पर उसे वह हेय मानता है। द्रव्यलिंगी को तो शुभ कषाय करने का अभिप्राय रहता है और उसे श्रद्धा में भला भी समझता है।

४. जीव, जिस समय शुभ अथवा अशुभ रूप परिणमन करता है उस समय शुभाशुभ रूप हो जाता है और जिस समय शुद्ध रूप परिणमन करता है उस समय शुभाशुभ से रहित हो जाता है।

५. शुद्धोपयोग से जीव निर्वाण, अनंत अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त होता है। शुभोपयोग से स्वर्ग और अशुभोपयोग से निरंतर नरक, तिर्यच आदि दुर्गतियों दुष्ट मानव आदि भव को प्राप्त कर संसार में परिभ्रमण करता है।

६. जिसने पदार्थो और उनके श्रुत को भली-भांति जान लिया है, जो संयम और तप सहित है, जिसका राग नष्ट हो चुका है और जो सुख-दु:ख में समता परिणाम रखता है ऐसा श्रमण शुद्धोपयोग धारी कहा गया है।

७. आत्मा उपयोग स्वरूप है, दर्शन और ज्ञान उपयोग कहे गये हैं और आत्मा का वह उपयोग शुभ तथा अशुभ होता है। शुभोपयोग का लक्षण - धर्मादि कार्यों में समर्पण भावना तथा जीवों पर दया भाव होना जो पुण्य का कारण है।

अशुभोपयोग का लक्षण - इन्द्रियों के विषय कषाय में लीन होना,

जीवों के प्रति क्रूरता होना जो पाप का कारण है। दोनों के अभाव में शुद्धोपयोग होता है जो कर्मबंध के आधीन नहीं है, जिससे कर्म बंध नहीं होता है। शुभोपयोग और अशुभोपयोग से मुक्त होकर जीव को ज्ञान स्वरूपी तथा पर वस्तुओं से अत्यत भिन्न अपने आत्म स्वरूप का ध्यान करना चाहिये, यही आत्म कल्याण का मार्ग है।

८. यदि मुक्ति प्राप्त करना है तो आगम ज्ञान सहित सम्यक्दर्शन एवं सम्यक्चारित्र (आत्म संयम) आवश्यक है। साधु को पांच समितियों सहित तीन गुप्तियों से युक्त, इन्द्रिय विजयी, कषायो को जीतने वाला तथा सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं अनुशासन पूर्ण (संयत) होना चाहिए।

९. सम्यक्दर्शन द्वारा दर्शनमोह को नाशकर तथा सम्यक्ज्ञान द्वारा तत्वार्थ को जानकर सदाकाल अकम्प सम्यक्चारित्र का अवलंबन करना चाहिए। *अज्ञान सहित चारित्र का सेवन सम्यक्चारित्र नाम नहीं पाता* अत: सम्यक्ज्ञान के बाद ही सम्यक्चारित्र की आराधना कही गई है।

१०. सम्यक्चारित्र, प्रत्यक्ष मोक्ष का द्वार है।

सिलवानी — ब्र. नंदश्री (रचना)

२९ मार्च १९९९ (महावीर जयंती)

मुक्ति का द्वार : सम्यक्चारित्र

प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि आज से सदियों पूर्व इस भारत भूमि पर आचार्य कुन्द कुन्द देव ने, आचार्य श्रीमद् जिन तारण स्वामी ने अध्यात्म धर्म की ध्वज पताका फहराई थी। वर्तमान समय में वैसा ही कार्य इस भौतिकवादी युग में पूज्य श्री ज्ञानानद जी महाराज कर रहे हैं।

जैसा कि वर्तमान समय में इस बात की महती आवश्यकता प्रतीत हो रही थी कि श्री गुरू महाराज के चौदह ग्रथों की टीका सरल सुबोध भाषा में हो, जो जन-जन के लिये हृदयगम हो सके, यह कार्य पूज्य श्री ज्ञानानंद जी महाराज ने अपनी आत्म साधना में रत रहकर किया, हम उनके इस उपकार के लिये कृतज्ञ हैं। पूज्य महाराज जी आत्मनिष्ठ साधक होने के साथ-साथ महान लेखक और कवि भी हैं। आपने चौदह ग्रंथ जयमाल, अनेको भजन आदि कई रचनायें लिखी हैं। आज भौतिकता चरम सीमा पर है, मनुष्य उसमें इतना लिप्त है कि उसको हित-अहित का बोध नहीं है, वह दिग्भ्रमित हो रहा है, उसके आदर्शो का ह्रास हो चुका है। ऐसी विषम परिस्थितियों में सत्साहित्य ही मार्गदर्शक है। जीवन में चारित्र को संवारने के लिये यह ३२ गाथाओं में निबद्ध, सम्यक्चारित्र का प्रतिपादक श्री कमल बत्तीसी जी अध्यात्म कमल टीका है। स्वभाव में लीनता ही सम्यक्चारित्र है। व्यवहार में व्रत, समिति, गुप्ति आदि का आचरण सम्यक्चारित्र कहलाता है। सम्यक्चारित्र मुक्ति का द्वार है।

पूज्य महाराज जी ने इन ग्रथों की टीका में अत्यत सरल भाषा का प्रयोग किया है। शैली सुगम किन्तु पैनी है जो सहसा पाठकों के मन पर अमिट छाप छोड देती है। इन ग्रथों की टीकाओं से समाज में नयी चेतना जाग्रत हो रही है। इन ग्रंथों के नियमित स्वाध्याय से जीवन मे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का सही आंकलन होगा जिससे मानव मात्र अपनी जीवन धारा को सही दिशा देकर अध्यात्म के मार्ग पर चलकर जीवन को सार्थक करेगे।

इन टीका ग्रंथो को इतना सुदर और व्यवस्थित रूप देकर जन-जन में गुरूवाणी की धूम मचाने वाले है- अध्यात्म रत्न बाल ब्र. पूज्य श्री बसंत जी महाराज, जो आध्यात्मिक शुभ्र दर्पण ज्ञान ध्यान मे तल्लीन एवं अनुशासन के सजग प्रहरी, समता साधना और सरलता की प्रतिमूर्ति, महान आध्यात्मिक चिंतक, प्रखर विवेक के धनी हमारे समाज की धरोहर हैं। जिन्होंने आचार्य श्रीमद् जिन तारण स्वामी की देशना को जन-जन तक पहुचाने का लक्ष्य ही बना लिया है। उनकी वाणी के प्रभाव से लोगों में नियम धर्म का पालन, धर्म और मजहब के नाम पर घृणा फैलाने वालों का हृदय परिवर्तन, रूढियां, कुरीतियां और थोथी मान्यताओं का उन्मूलन हो रहा है। आत्मा से परमात्मा कैसे बनें, पूजा कैसे करें, पूज्य कैसे बनें, धार्मिक एकता, आध्यात्मिक व चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, वात्सल्य का पाठ पढाकर मानवीय गुणों पर चलने का संदेश, गुरूवाणी का जन-जन मे प्रचार आदि आपके द्वारा किये जा रहे अनवरत अथक प्रयास अभिनंदनीय हैं। हम सभी भव्य आत्मायें इन आदर्शों को अपनी जीवन चर्या में उतारें तो अपनी आत्मा का भी कल्याण अवश्य होगा, यही मंगल भावना है।

भोपाल **विनीत**

दिनांक : २८.७.९९ (गुरू पूर्णिमा) **मदनमस्त जैन**

साहित्य सृजन : एक सार्थक पहल

अध्यात्मवाद सत्य धर्म की अलख जगाने वाले श्री गुरूदेव तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज परम वीतरागी शुद्धात्मवादी संत थे। उनके द्वारा रचित चौदह ग्रंथ युगों - युगों तक जनमानस के लिये मार्गदर्शन करते रहेंगे। श्री गुरू तारण स्वामी की पावन वाणी जगत के लिये कल्याणकारी है, यह बात अभी तक समझ से परे थी; किन्तु जिज्ञासा की तृप्ति हेतु दशमी प्रतिमाधारी आत्मनिष्ठ साधक पूज्य श्री ज्ञानानंद जी महाराज ने गुरूदेव तारण स्वामी द्वारा रचित तीन बत्तीसी, श्रावकाचार, उपदेश शुद्धसार, त्रिभंगीसार जी ग्रंथों की टीकायें लिखीं। इनमें से तीन बत्तीसी (श्री मालारोहण, पंडित पूजा, कमल बत्तीसी जी) का प्रकाशन पूर्ण हो गया है।

भोपाल तारण समाज को गुरूवाणी प्रचार-प्रसार करने का सौभाग्य मिला और यहा श्री तारण तरण अध्यात्म प्रचार योजना केन्द्र की स्थापना ३१ मार्च १९९९ को हुई और अल्प समय में ही ज्ञान दान साहित्य प्रचार में गतिशीलता आई। इस कार्य से पूरे देश में महती प्रभावना हो रही है। पूज्य श्री ज्ञानानंद जी महाराज ने इन टीकाओं में गुरूवाणी के यथार्थ भावों को अपनी भाषा में प्रगट कर हमें आत्म हित का मार्ग बताकर महान उपकार किया है। अध्यात्म रत्न बाल ब्र. श्री बसत जी महाराज ने बडी लगन और भक्तिपूर्वक अथक परिश्रम करके इन टीकाओं का संपादन किया है जो अनुकरणीय और अभिनदनीय है, हम उनके आभारी हैं।

साहित्य प्रकाशन के इस कार्य को आगे बढाने में भोपाल एवं अन्य स्थानों के अनेक समाज बंधुओं ने अपना अमूल्य सहयोग देकर इस दुर्लभ साहित्य को देश के कोने-कोने मे पहुंचाने में योगदान दिया है, जो ज्ञानदान का महानें कार्य है एतदर्थ, हम सभी का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।

प्रस्तुत श्री कमल बत्तीसी जी अध्यात्म कमल टीका की एक-एक हजार प्रतियों का प्रकाशन क्रमश: श्री सुभाषचंद जी, प्रभात जी दिगम्बर परिवार होशंगाबाद एवं ब्र श्री किरण बहिन जी एवं उनके परिवार सिलवानी तथा पांच सौ प्रतियों का प्रकाशन श्रीमती सूरजदेवी जैन, गंजबासौदा द्वारा नि:शुल्क ज्ञानदान की प्रभावना हेतु कराया गया है। उदारमना तीनों दानदाताओं के हम आभारी हैं। ब्रह्मानन्द आश्रम पिपरिया एवं ब्र. सुशीला बहिन जी ता.त. जैन धार्मिक ट्रस्ट बीना की ओर से एक-एक हजार प्रतियों का प्रकाशन सशुल्क प्रचार-प्रसार प्रभावना हेतु कराया गया है। प्रसन्नता है कि अध्यात्म प्रचार योजना केन्द्र की गतिविधियों में भोपाल नगर स्थित तीनों चैत्यालयों के पदाधिकारी तारण तरण जागृति मण्डल एवं युवा परिषद् का विशेष सहयोग रहता है।

वर्तमान समय की अनिवार्य आवश्यकता थी साहित्य सृजन की, इस दिशा में यह एक सार्थक पहल हुई है, जो सभी को प्रसन्नता और गौरव का विषय है।

आत्म निष्ठ साधक पूज्य श्री ज्ञानानंद जी महाराज, अध्यात्म रत्न बाल ब्र. पू. श्री बसंत जी महाराज एवं श्री संघ के प्रति कृतज्ञता अर्पित करते हुए आशा करते हैं कि गुरूवाणी और सत्य धर्म की प्रभावना हेतु पूज्यजनों का मंगलमय मार्गदर्शन और आशीर्वाद मिलता रहेगा, यही पवित्र भावना है।

छोटेलाल जैन एवं समस्त पदाधिकारीगण

दिनांक १.७.९९ — श्री तारण तरण अध्यात्म प्रचार योजना केन्द्र भोपाल (म.प्र.)

अपनी बात

सद्गुरू की वाणी अमृत तुल्य साधक संजीवनी है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, परम सौभाग्य, होनहार उत्कृष्ट होने से छह माह की सहज मौन साधना करने का शुभ योग मिला, इसमें क्या मिला ? क्या हुआ ? यह तो अवक्तव्य है, बस इतना ही कहा जा सकता है कि सद्गुरू की कृपा से बड़ा आनंद आया, पूर्ण निराकुलता से अच्छा ज्ञानोपयोग हुआ, वस्तु स्वरूप समझ मे आया, शेष अपनी पात्रता पुरूषार्थ की बात है।

"स्वान्तः सुखाय आत्मीय गाथा" अनुसार सहज में अपना काम बन गया, स्वाध्याय करने में इतना उपयोग न लगने से लिखने की प्रेरणा ब्र. श्री नेमी जी ने दी, उसी क्रम में श्री मालारोहण जी, श्री पंडितपूजा जी, श्री कमलबत्तीसी जी इन तीन ग्रंथो का रहस्य समझने का प्रयास किया।

आज आत्म विश्वास सहित बड़े गौरव से यह बात कह रहा हूं कि सद्गुरू तारण स्वामी की वाणी-उनके ग्रंथ अद्भुत गंभीर रहस्य से भरे हैं। यह अनुभव के आधार पर आगम प्रमाण लिखे ग्रंथ हैं। इनका स्वाध्याय, मनन, आत्मानुभूति कराने में समर्थ है।

जो टीका लिखी है उसमें मेरा कुछ नहीं है। सद्गुरू की वाणी आगम से प्रमाणित करने का प्रयास किया है। बुद्धि का क्षयोपशम न होने से सामान्य ही लिख सका हूं। विशेष ज्ञानी विद्वान लिखें ऐसी अपेक्षा है। इसमें जो अज्ञान प्रमाद वश भूल हुई हो, गलत लिखा गया हो। वह सद्गुरू क्षमा करें, ज्ञानी विद्वत्‌जन सुधार कर सही कर लें।

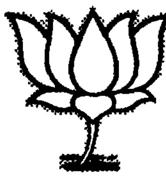
अंत में, जो आचार्यो ने छह माह की साधना करने का आदेश दिया है। उसकी प्रामाणिकता को अपनी साधना से प्रमाण करता हूँ कि उनका कथन सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है।

बरेली — ज्ञानानन्द

दिनांक २७.५.९१

卐 *वन्दे श्री गुरू तारणम्* 卐

श्री कमलबत्तीसी जी ग्रंथ



परमदेव परमात्म तत्व का, निज में दर्शन करता है ।
पंचज्ञान परमेष्ठी पद की, जो श्रद्धा उर धरता है ।।
सरल शान्त निर्विकल्प हो गया, वह ज्ञानी गुणवान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ।।

तारण स्वामी
का
शुभ संदेश–
तू स्वयं
भगवान है ।

जो बोले सो
अभय–
शुद्धात्म देव
की जय ।

उपदेश,
दृष्टि प्रवेश
मुक्ति विलास

* तत्व मंगल *

देव को नमस्कार

तत्वं च नंद आनंद मउ, चेयननंद सहाउ ।
परम तत्व पद विंद पउ, नमियो सिद्ध सुभाउ ।।

गुरू को नमस्कार

गुरू उवएसिउ गुपित रूइ, गुपित न्यान सहकार ।
तारण तरण समर्थ मुनि, गुरू संसार निवार ।।

धर्म को नमस्कार

धम्मु जु उत्तउ जिनवरहि, अर्थति अर्थह जोउ ।
भय विनास भवु जु मुनहु, ममल न्यान परलोउ ।।
देव को, गुरू को, धर्म को नमस्कार हो ।

* मंगलाचरण *

मैं ध्रुवतत्व शुद्धातम हूँ, मैं ध्रुवतत्व शुद्धातम हूँ ।।

मैं अशरीरी अविकारी हूँ, मैं अनन्त चतुष्टयधारी हूँ ।
मैं सहजानंद बिहारी हूँ, मैं शिवसत्ता अधिकारी हूँ ।।
मैं परम ब्रह्म परमातम हूँ, मैं ध्रुवतत्व शुद्धातम हूँ ...

मैं ज्ञेय मात्र से भिन्न सदा, मैं ज्ञायक ज्ञान स्वभावी हूँ ।
मैं अलख निरंजन परम तत्व, मैं ममलह ममल स्वभावी हूँ ।।
मैं परम तत्व परमातम हूँ, मैं ध्रुवतत्व शुद्धातम हूँ....

मैं निरावरण चैतन्य ज्योति, मैं शाश्वत सिद्ध स्वरूपी हूँ ।
मैं एक अखंड अभेद शुद्ध, मैं केवलज्ञान अरूपी हूँ ।।
मैं ज्ञानानंद सिद्धातम हूँ, मैं ध्रुवतत्व शुद्धातम हूँ....

श्री कमलबत्तीसी जी

जयमाल

१. परमदेव परमात्म तत्व का, निज में दर्शन करता है ।
पंचज्ञान परमेष्ठी पद की, जो श्रद्धा उर धरता है ।।
सरल शान्त निर्विकल्प हो गया, वह ज्ञानी गुणवान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ।।

२. सभी जीव परमात्म तत्व हैं, अनन्त चतुष्टय धारी हैं ।
जड शरीर कर्मादि पुद्गल, इनकी सत्ता न्यारी है ।।
निमित्त नैमित्तिक सबंध पर्यायी, इसका जिसको ज्ञान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ।।

३. कर्मो का नश्वर स्वभाव है, अपने आप सब झडते हैं ।
जीव शुभाशुभ भाव के द्वारा, पुण्य-पाप से बंधते है ।।
शुद्ध स्वभाव मे लीन जीव के, कर्मो का श्मशान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ।।

४. स्व सत्ता पर के स्वरूप का, जिसको सम्यग्ज्ञान जगा ।
मिथ्यात्व शल्य आदि का, भ्रम-भय सब अज्ञान भगा ।।
सारे कर्म विला जाते हैं, धरता आतम ध्यान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ।।

५. मन मनुष्य की जाग्रत शक्ति, बंध मोक्ष का कारण है ।
इसके भेद को जानने वाला, कहलाता गुरू तारण है ।।
आतम शक्ति जाग्रत होती, मन होता अवसान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ।।

६. जनरंजन मनरंजन गारव, कलरंजन भी दोष है ।
आतम के यह महाशत्रु हैं, यही तो राग और रोष हैं ।।

ज्ञान विराग के बल से इनका, मिटता नाम निशान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ॥

७. नन्द आनंदह चिदानंद जिन, परमानंद स्वभावी हूं ।
पर पर्याय से भिन्न सदा मैं, ममलह ममल स्वभावी हूं ॥
ममल स्वभाव में लीन रहे जो, वह नर श्रेष्ठ महान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ॥

८. रत्नत्रय की शुद्धि करके, पंच महाव्रत धारी है ।
पंचज्ञान पंचार्थ पचपद, पंचाचार बिहारी है ॥
ज्ञान-ध्यान में लीन सदा जो, साधु सिद्ध समान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ॥

९. ज्ञानानद निजानद रहता, सब प्रपंच से दूर है ।
वस्तु स्वरूप सामने दिखता, ब्रह्मानंद भरपूर है ॥
आर्त-रौद्र ध्यानों का त्यागी, धर्म शुक्ल ही ध्यान है ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ॥

१०. जिनवर कथित सप्त-तत्वो का, जो निश्चय श्रद्धानी है ।
सब ससार चक्र छोडकर, शरण गही जिनवाणी है ॥
केवलज्ञान प्रगट करके वह, पाता पद निर्वाण हे ।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ॥

दोहा

सम्यग्चारित्र आत्मा, निज स्वभाव में लीन ।
अन्तर रत्नत्रय धरें, बाह्य-चारित्र दश तीन ॥

कमल बत्तीसी प्रगटकर, बनता खुद भगवान ।
साधु पद से सिद्ध पद, पाता पद निर्वाण ॥

❀ जागरण गीत ❀

जागो हे भगवान आत्मा, जागो हे भगवान ॥

मोह नींद में क्यों सो रहे हो ।
अपनी सत्ता क्यों खो रहे हो ॥
तुम हो सिद्ध समान आत्मा, जागो हे भगवान ॥१॥

नर भव में यह मौका मिला है ।
सब शुभ योग सौभाग्य खिला है ॥
क्यों हो रहे हैरान आत्मा, जागो हे भगवान ॥२॥

इस शरीर से तुम हो न्यारे ।
चेतन अनन्त चतुष्टय धारे ॥
तोडो मोह अज्ञान आत्मा, जागो हे भगवान ॥३॥

पर के पीछे तुम मर रहे हो ।
पाप परिग्रह सब कर रहे हो ॥
भुगतो नरक निदान आत्मा, जागो हे भगवान ॥४॥

तुम हो शुद्ध बुद्ध अविनाशी ।
चेतन अमल सहज सुखराशी ॥
कर लो भेद विज्ञान आत्मा, जागो हे भगवान ॥५॥

आयु तक का सब नाता है ।
मोह यह तुमको भरमाता है ।
देख लो सब जग छान आत्मा, जागो हे भगवान ॥६॥

कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा ।
करो धरम पुण्य दान आत्मा, जागो हे भगवान ॥७॥

तारण तरण हैं तुम्हे जगा रहे ।
मुक्ति मार्ग पर तुम्हें लगा रहे ॥
पाओ पद निर्वाण आत्मा, जागो हे भगवान ॥८॥

भूमिका

मुक्ति सब जीव चाहते हैं, कोई भी जीव बंधन रूप दु:ख में नहीं रहना चाहता। संसार में जन्म-मरण का दु:ख, चार गति चौरासी लाख योनियों का चक्कर, नाना प्रकार के कर्मोदय जन्म-मरण, अनुकूल-प्रतिकूल संयोग, शल्य, विकल्प, चिन्ता, भय, दु:ख-अनादि से जीव भोग रहा है। इन सबसे छूटना चाहता है पर इस अज्ञान, अंधकार से छूटने, मुक्त होने का उपाय मार्ग क्या है, इसका सम्यक् बोध न होने से अज्ञानी गुरूओं के जाल में फंसकर चक्कर लगा रहा है।

सद्गुरूओं का सत्समागम मिले, अपने भीतर संसार से छूटने की छटपटाहट हो, सही भावना और जिज्ञासा से मुक्त होने का मार्ग खोजा जाये तो मिलता है। सत्य कहो, धर्म कहो, वस्तु स्वरूप कहो, परमतत्व कहो , यह तो अनाद्यनिधन है, यह कहीं खोया नहीं है। सत्य को जानने समझने की खोज करने की भावना ही खो गई। जिन जीवों में यह जिज्ञासा जागती है उन्हें उसकी उपलब्धि होती है। संसार में सभी प्रकार के जीव हैं तथा ज्ञानी सद्गुरू भी समय-समय पर होते रहते हैं।

सोलहवीं शताब्दी भारतीय इतिहास में संतयुग है। जिसमें आध्यात्मिक संत हुये हैं, वर्तमान में कलिकाल-पंचम काल होने से परमात्मा तो होते नहीं हैं, हैं नहीं। ज्ञानी संत महात्मा सद्गुरू ही वर्तमान में मुक्त होने, परमात्मा बनने का मार्ग बताते हैं, स्वयं भी उसी मार्ग के पथिक होते हैं।

इसी क्रम में विक्रम संवत् १५०५ मिति अगहन सुदी ७ को पुष्पावती नगरी में जन्मे जैन दर्शन के मर्मज्ञ, भगवान महावीर के अनुयायी वीतरागी संत श्री जिन तारण स्वामी हुए, जिन्होंने स्वयं संसार चक्र से छूटने के लिए सत्य धर्म का मार्ग अपनाया, स्वयं उस मार्ग पर चले और उसी सच्चे धर्म मार्ग, शुद्ध अध्यात्म की देशना, समस्त भव्य जीवों को दी।

आपके साथी अनुयायी लाखों लोग सभी सम्प्रदाय के जीव हुए। उनमें

प्रमुख-रूइया रमन, कमलावती, विरउ ब्रह्मचारी, दयालप्रसाद आदि रहे हैं।

एक दिन तत्व चर्चा में श्री कमलावती जी ने यह प्रश्न उठाया कि गुरूदेव ! मुक्ति का मार्ग क्या है ? क्योंकि संसार में धर्म के नाम पर भी नाना प्रकार के क्रिया कर्म होते हैं। ऐसे में जीव को मुक्ति का यथार्थ मार्ग क्या है ? जैन दर्शन में सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग: कहा है पर वह है क्या, उसका वास्तविक स्वरूप क्या है, आपने श्री मालारोहण में सम्यक् दर्शन का स्वरूप, पंडित पूजा में सम्यक्ज्ञानी की साधना पद्धति बताई, वह भी समझ में आई, अब सम्यक्चारित्र क्या है, इसका सही स्वरूप बताने की कृपा करें, क्योंकि चारित्र के संबंध में बडे विवाद हैं और उसमें ही उलझकर जीव सत्य वस्तु स्वरूप से भटक जाते हैं। यह नाना प्रकार के रूप, भेष, क्रिया-कांड, खान-पान आदि बाह्य आचरण में ही सारा जीवन लगा देते हैं इसके लिए आप सम्यक् मार्ग बतायें ?

मुक्ति का मार्ग सम्यक् चारित्र के स्वरूप को बताने के लिए सद्‌गुरू श्री जिन तारण स्वामी ने यह श्री कमलबत्तीसी का निरूपण किया है। जिसे समझकर मुमुक्षु जीव सही धर्म मार्ग पर चलकर अपना आत्म कल्याण मुक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं।

हे मोक्ष के अभिलाषी ! मोक्ष मार्ग तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र स्वरूप है, यह सम्यग्दर्शन आदि शुद्ध भाव रूप मोक्ष मार्ग अन्तर्मुख प्रयत्न द्वारा सधता है, ऐसा भगवान का उपदेश है, भगवान ने स्वयं प्रयत्न द्वारा मोक्ष मार्ग साधा है और उपदेश में भी यही कहा है कि मोक्ष का मार्ग प्रयत्न साध्य है, इसलिए तू सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भावों को ही मोक्ष का पथ जानकर सर्व उद्यम द्वारा उसको ही अंगीकार कर।

ॐ नमः सिद्ध

श्री कमलबत्तीसी जी

❁ मंगलाचरण ❁

परमतत्व परमात्मा, निज शुद्धात्म स्वरूप ।
वंदन बारम्बार है, ध्रुव तत्व चिद्रूप ।।

ममल स्वभाव की लीनता,सम्यग्चारित्र होय ।
पाप विषय-कषाय अरू, सब कर्मों को खोय ।।

निज स्वभाव अनुभूति युत, सम्यक्ज्ञान महान ।
ज्ञायक ज्ञान स्वभाव से, बनता वह भगवान ।।

महावीर की देशना, सत्य वस्तु का सार ।
जिनवाणी अनुसार ही, दरसाया गुरू तार ।।

ज्ञानानंद स्वभाव का, करो नित्य पुरूषार्थ ।
पाओगे शिव सम्पदा, यही एक परमार्थ ।।

अब गुरूदेव प्रथम गाथा मंगलाचरण में वस्तु स्वरूप बताते हैं -

गाथा-१

तत्वं च परम तत्वं, परमप्पा परम भाव दरसीये ।
परम जिनं परमिस्टी, नमामिहं परम देव देवस्या ।।

शब्दार्थ - (तत्वं) सार वस्तु, शुद्ध मूल वस्तु, जीव तत्व, आत्मा (च) और (परम तत्वं) जो अत्यन्त गुप्त, सूक्ष्म, रहस्य मय (परमप्पा) परमात्मा (परम भाव) परम पारिणामिक भाव (दरसीये) दिखाता है, दर्शित होता है (परम जिनं) परम जिनेन्द्र परमात्मा, सिद्ध स्वरूप (परमिस्टी) परम इष्ट श्रेष्ठ, पंच परम पदधारी, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी (नमामिहं) मैं नमस्कार करता हूँ (परम देव देवस्या) देवों के देव-इन्द्रों द्वारा पूज्य परमदेव परमात्मा ।

विशेषार्थ-तत्व और परम तत्व परमात्मा है, जो परम भाव में दिखता है, ऐसे परम जिन परमेष्ठी स्वरूप, देवों के परम देव, परमात्मा को मैं नमस्कार

करता हूँ।

तत्व शुद्ध वस्तु जीव तत्व आत्मा है और परम तत्व परमात्मा है। यह तत्व और परम तत्व परमात्मा कौन है, कहाँ है ? यह तत्व और परम तत्व आत्मा और परमात्मा कहीं बाहर नहीं है, अपना ही शुद्ध चैतन्य स्वरूप जो परम पारिणामिक भाव रूप स्वानुभूति में दिखता दर्शित होता है। यह अन्य चार भाव औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक भावों से परे परम पारिणामिक भाव रूप है, जो स्वयं की अनुभूति गम्य है, यही परम शुद्ध दशा रूप परमात्मा है। मैं आत्मा शुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ, बद्ध हूँ, मुक्त हूँ, नित्य हूँ, अनित्य हूँ, एक हूँ, अनेक हूँ इत्यादि प्रकार से जिसने श्रुतज्ञान के द्वारा प्रथम अपने ज्ञान स्वभावी आत्मा का निर्णय किया है, ऐसे जीव को तत्व विचार के राग की जो वृत्ति उत्पन्न होती है, वह भी दु:खदायक है, आकुलता मय है। उक्त अनेक प्रकार के श्रुतज्ञान के भावों को मर्यादा में लेते हुये, मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ, ऐसे विचार को पुरूषार्थ द्वारा रोक कर पर की ओर झुकते उपयोग को अपनी ओर आकृष्ट कर नय पक्ष के आलम्बन से हो रहे राग के विकल्प को जो आत्म स्वभाव रस के भान द्वारा टालता हुआ, श्रुत ज्ञान को भी आत्म सन्मुख करता है, वह उस समय अत्यन्त विकल्प रहित होकर तत्काल निज रस के प्रगट होने वाले आदि, मध्य, अन्त आत्मा के परमानन्द स्वरूप परमात्मा का परम पारिणामिक भाव में वेदन दर्शन करता है।

अशरीरी, अविकारी, निरजन, शुद्धात्मा- जैसे सिद्ध भगवन्त, किसी के आलम्बन बिना स्वयमेव पूर्ण अतीन्द्रिय, ज्ञानानन्द स्वरूप से परिणमन करने वाले दिव्य सामर्थ वान देव हैं। वैसे ही सभी आत्माओं का स्वभाव है। ऐसा ही निरालम्बी ज्ञान और सुख स्वभाव रूप मैं हूँ ऐसा लक्ष्य में लेने पर ही जीव का उपयोग अतीन्द्रिय होकर उसकी पर्याय में ज्ञान और आनन्द खिल जाता है। पूर्व में कभी अनुभव में नहीं आई हुई चैतन्य शांति वेदन में आती है, इस तरह आनन्द का अगाध सागर उसके प्रतीति में, ज्ञान में और अनुभूति में आ जाता है। स्वयं का परम इष्ट परमात्म स्वरूप अनुभव में आता है।

जिनेन्द्र परमात्माओं द्वारा कथित सर्व तत्वज्ञान का सिरमौर जो शुद्ध द्रव्य सामान्य परम पारिणामिक भाव वह स्वानुभूति का आधार है, सम्यक्दर्शन का आश्रय है, मोक्षमार्ग का आलम्बन है। सर्व शुद्ध भावों का नाथ है। अनादि अनंत ऐसा जो एक निज शुद्ध चैतन्य स्वरूप है उसके स्व सन्मुख होकर आराधन करना, वही परमात्मा परमजिन, परमेष्ठी परम देवों का देव परमात्मा

है उसे मैं नमस्कार करता हूं।

जो जीव ऐसे अपने परम पारिणामिक भाव का आश्रय लेता है वही तत्व और परमतत्व, परमात्मा के स्वरूप को जानता है, और वही परम जिन परमेष्ठी होता है।

ज्ञान स्वरूपी और अतीन्द्रिय आनंद स्वरूपी परमात्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनंद स्वरूपी होने से वह ज्ञान गुण द्वारा ही अनुभूत होने योग्य है। ज्ञान गुण के अतिरिक्त राग की क्रिया आदि अन्य कारणों द्वारा भगवान आत्मा नहीं जाना जाता ।

प्रश्न– सभी जीव भगवान आत्मा हैं– इसका क्या अर्थ है ?

समाधान– प्रत्येक जीव अपने भाग्य का विधाता स्वयं भगवान है, इसीलिए तारण स्वामी का शुभ संदेश–तू स्वयं भगवान है।

श्रुतज्ञान के बल से प्रथम ज्ञान स्वभावी आत्मा का यथार्थ निर्णय करके मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के व्यापार को आत्म सन्मुख किया, वह व्यवहार है । सहज शुद्ध पारिणामिक भाव तो परिपूर्ण एक रूप है, वही परम तत्व परमात्मा है । पर्याय में अपूर्णता है, विकार है इसलिए प्रयास करने को रहता है । पर्याय दृष्टि की अपेक्षा साध्य–साधक के भेद पडते हैं। पर्याय दृष्टि से विकार और अपूर्णता है, उसे तत्वदृष्टि के बल से टालकर साधक जीव क्रमश: पूर्ण निर्मलता प्रगट करता है । आत्मा का भान करके स्वभाव में एकाग्रता होती है तब ही परमात्म रूप समयसार अनुभूत होता है, यही परम जिन परमेष्ठी मयी परमात्मा है।

प्रश्न– तत्व रूप जीव आत्मा और परम तत्व परमात्मा में क्या अंतर है ?

समाधान– तत्व रूप जीवात्मा अभी कर्म संयोग से संसार में है, परमतत्व रूप परमात्मा सब कर्मादि संयोग से रहित पूर्ण शुद्ध मुक्त परमानंद मयी शाश्वत स्वरूप में रहते हैं। जो सशरीरी अरिहन्त और अशरीरी सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं; पर यह तत्व और परमतत्व रूप आत्मा परमात्मा अलग–अलग नहीं हैं। आत्मा का परिपूर्ण शुद्ध स्वरूप ही परमात्मा है। जिन जीवों ने तत्व स्वरूप का श्रद्धान किया, वही परम तत्व की साधना करके परमात्मा हो सकते हैं क्योंकि प्रत्येक जीव आत्मा स्वभाव से परमात्मा है।

प्रश्न– जब सब जीव आत्मा स्वभाव से परमात्मा हैं तो फिर यह पंच परमेष्ठी आदि अरिहन्त सिद्ध परमात्मा की वंदना, स्तुति करने का क्या

प्रयोजन है ?

समाधान– जैसे कोई पथिक मार्ग भूलकर घोर जंगल में भटक रहा हो, उसे कोई सच्चा मार्ग बता देता है, तो वह उसका आभार मानता है, नमस्कार करता है, अपने स्थान पर पहुंच कर उसकी महिमा गाता है। इसी प्रकार यह जीव अनादि से अपने सत्स्वरूप को भूला संसार रूपी घोर वन में भटक रहा है, इसे साधु आचार्य सद्गुरू, अरिहन्त परमात्मा परम गुरू, तत्व का स्वरूप बताकर जीव को सचेत करते हैं और मुक्ति का सत्य मार्ग बताते है। सिद्ध परमात्मा का स्वरूप बताकर जीव को सचेत करते हैं। अपने सत्स्वरूप का बोध कराते हैं इसीलिये उनकी वन्दना भक्ति करते, महिमा गाते हैं लेकिन यह सच्चे देव, गुरू कुछ चाहते नहीं है, पूर्ण निस्पृह वीतरागी हैं, उस मार्ग पर चलते हुये, स्वयं आनन्द परमानन्द में होते हुये जीव को सच्चा सुखी आनन्द-परमानन्द में होने का उपाय सप्रमाण अपने जीवन के आचरण से बताते हैं। इनकी पूजा करने इनको भगवान परमात्मा मानकर इनसे अपना भला हो जायेगा या कोई संसारी कामना-वासना की पूर्ति हो जायेगी, ऐसा नही है। वह तो परिपूर्ण परमात्मा हो ही गये उन्हें तो कोई कामना वासना, किसी की कोई अपेक्षा है ही नही, करूणावश मार्ग बताया है, अब हम उनके बताये मार्ग पर चलकर उन जैसे बनें, यही उनकी सच्ची पूजा वदना भक्ति है।

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं, तस्स मोहो खलु जादि लयं ॥

इस प्रकार तत्व और परम तत्व निज आत्मा परमात्म स्वरूप है। जो चैतन्य मयी सदैव शुद्ध परम पारिणामिक भाव का धारी स्वानुभूति मे दिखता है, यही स्वयं का स्वभाव शुद्ध समयसार है, वीतरागी भावमयी अपना सिद्ध स्वरूप ही परम जिन और परमेष्ठी स्वरूप है, ऐसे देवों के परमदेव, निज शुद्धात्म देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

आत्मा की निर्विकारी शुद्ध दशा ही परमात्मा है। यह परमात्मा किसी अन्य देव, गुरू, शास्त्र के द्वारा बाहर से नहीं मिलता परन्तु निज शुद्ध ज्ञायक आत्मा, ध्रुव स्वभाव के ही आश्रय से प्रगट होता है। आत्मा ज्ञान और आनन्द आदि निर्मल गुणों का शाश्वत भंडार है। सत्समागम से श्रवण मनन द्वारा उसकी यथार्थ पहिचान करने पर आत्मा में से जो अतीन्द्रिय आनन्द युक्त पूर्ण शुद्ध दशा प्रगट होती है, वह परमात्मा है।

अनादि अनन्त एक रूप चैतन्य मूर्ति भगवान आत्मा वह अंशी है और

उसके आश्रय से जो निर्मलता प्रगट होती है वह अंश है। साधक जीव को अशी का आश्रय होता है, अंश का नहीं। उसे अपने शुद्ध अखंड एक परम पारिणामिक भाव स्वरूप निज कारण परमात्मा का ही निरन्तर अवलम्बन वर्तता है। निज ध्रुव तत्व शुद्धात्मा के आश्रय से धर्म कहो, शांति कहो, मुक्ति कहो, आत्मा–परमात्मा कहो, यह सब प्रगट होता है।

प्रश्न– इस परमात्म स्वरूप मोक्ष की उपलब्धि, साधना का मार्ग क्या है ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं–

गाथा –२

जिनवयनं सद्दहनं, कमलसिरि कमल भाव उववन्नं।
अर्जिक भाव सउत्तं, ईर्ज सभाव मुक्ति गमनं च ॥

शब्दार्थ – (जिन वयन) जिनेन्द्र के वचनों का, जिनवाणी का (सद्दहनं) श्रद्धान करो (कमलसिरि) कमलश्री (श्री कमलावतीजी) अथवा हे आत्मन् (कमल भाव) जल से अलिप्त कमल वत्, निर्विकारी न्यारा ज्ञायक भाव (उववन्न) प्रगट करो (अर्जिक भाव) आर्यिका के भाव अथवा सरल स्वभाव (सउत्त) से संयुक्त होकर लीन रहो (ईर्ज) सरल सहज (सभाव) स्वभाव (मुक्ति गमन) मुक्ति मार्ग, मोक्ष जाने का मार्ग (च)और।

विशेषार्थ– हे आत्मन् कमलश्री ! जिनेन्द्र के वचनों का श्रद्धान कर अपना कमलवत् निर्विकारी न्यारा ज्ञायक भाव प्रगट करो। आर्यिका साधु पद के भाव जगाकर सरल स्वभाव में रहो। सहज स्वभाव हो जाना ही मुक्ति मार्ग है।

सद्गुरू तारण स्वामी कहते हैं कि हे कमल श्री (आत्मा)! अब सब जान समझ लिया है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान हो गया है तो जिनेन्द्र परमात्मा के वचनों का श्रद्धान करो और स्वयं परमात्मा बनो। अपना कमल भाव प्रगट करो, सरल स्वभाव में लीन रहो। साधु पद आर्यिका के भाव करो, सहज स्वभाव मे रहो, यही मुक्ति का मार्ग है।

जीव अपनी लगन से ज्ञायक परिणति को प्राप्त करता है, मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभाव भाव से भिन्न हूँ, किसी भी पर्याय में अटकने वाला मैं नही हूँ। मैं अगाध गुणों से भरा हूँ, मैं ध्रुव हूँ, शुद्ध हूँ, परम पारिणामिक भाव हूँ। इस तरह से अनेक प्रकार के विचार सम्यक् प्रतीति की लगन वाले मुमुक्षु को आते हैं।

रूचि का पोषण और तत्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाये तो कार्य होता ही है। अनादि के अभ्यास से विभाव में ही परिणमन होता है उसे पलटकर आत्मा की ओर करना है। जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरंग रूचि को नहीं पलटता उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रूचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायेगा।

ध्रुव तत्व में एकाग्रता से ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है, विभाव का अभाव होता है। आत्मा को पहिचान कर स्वरूप रमणता का पुरूषार्थ करना ही मुक्ति मार्ग है और इसके लिए बाह्य विषयादि से निवृत्त होकर पापों से छूटकर ही स्वरूप रमणता होती है।

संयोगों के त्याग करने मात्र से कुछ नहीं होता। जब बाहर के हीनाधिक संयोगों का लक्ष्य छूट जाये, कषाय की मंदता तीव्रता का भी लक्ष्य छूट जाये और अपनी पर्याय चैतन्य वस्तु को लक्ष्य कर तद्‌रूप परिणमित हो यही यथार्थ त्याग है।

यह सहज सरल परिणति ज्ञायक कमल भाव साधु जीवन की प्रामाणिकता है। सर्वोत्कृष्ट महिमा का भंडार चैतन्य देव अनादि अनन्त परम पारिणामिक भाव में स्थित है इसलिये-द्रव्य दृष्टि करके अखंड एक ज्ञायक रूप वस्तु को लक्ष्य में लेकर उसका अवलम्बन करो, यही जिनेन्द्र परमात्मा की देशना है। आत्मा अनन्त गुणमय है परन्तु द्रव्य दृष्टि गुणों के भेदों का ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखंड त्रैकालिक ध्रुव स्वभाव को अभेद रूप से ग्रहण करती है। इसके आश्रय से ही सच्चा मुनिपना आता है। शांति और सुख परिणमित होता है, वीतरागता होती है, परमात्म पद और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

जीव ने अनन्त काल में अनन्तबार सब कुछ किया किन्तु आत्मा को नहीं पहिचाना। देव, गुरू क्या कहते हैं, वह बराबर जिज्ञासा से सुनकर विचार करके जो आत्म अस्तित्व उसे ख्याल मे लेकर निज स्वरूप में लीनता की जाये तो आत्मा पहिचानने में आये, परमात्मा की प्राप्ति हो।

पर से भिन्न ज्ञायक स्वभाव का निर्णय करके बारम्बार भेद ज्ञान का अभ्यास करते-करते मति श्रुत के विकल्प टूट जाते हैं। उपयोग गहराई में चला जाता है, वहाँ आत्मा के दर्शन होते हैं। ज्ञायक स्वभाव आत्मा का निर्णय करके मति, श्रुत ज्ञान का उपयोग जो बाह्य में जाता है उसे अन्तर में समेट लेना, बाहर जाते हुये उपयोग को ध्रुव तत्व के अवलम्बन द्वारा, बारम्बार अंतर में स्थिर करते रहना, यही सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग है।

चारित्र का मतलब स्थिर होना, तद्रूप रहना, पर कहाँ किसमें ? व्यवहारचारित्र, देह की क्रिया, वह तो जड है। पुण्य-पाप विकार हैं,शुद्ध चैतन्य स्वरूप की प्रतीति होने के बाद अन्तर में लीनता हो, स्वरूप में रमणता, आत्म स्थिरता वही सम्यक्चारित्र है और यह स्थिति होने पर उत्तम क्षमा मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य स्वयं प्रगट होते हैं, यही साधु पद से सिद्ध पद प्राप्त करने की विधि है।

बहुत से जीव विकल्प का अभाव करना चाहते हैं तथा स्थूल विकल्प अल्प हो जाने पर, विकल्प का अभाव मानते हैं परन्तु वास्तव में जिसका विकल्प का अभाव करने का लक्ष्य है उसका विकल्प का अभाव नहीं होता, वह अज्ञानी है। उसने वस्तु स्वरूप को नहीं जाना।

जिसमें विकल्प का ही अभाव है ऐसे शुद्ध चैतन्य ध्रुव स्वभाव को लक्ष्य में लेकर एकाग्र होने से विकल्प का अभाव हो जाता है, वहाँ विकल्प हैं ही नहीं।

पहले आत्म स्वभाव का श्रवण मनन कर उसे लक्ष्य में लिया है उसकी महिमा आई है तो उसमें अन्तर्मुख होने पर उसमें विकल्प हैं ही नहीं।

यदि आत्मा को शांति चाहिए तो वह शांति तो ऐसी होना चाहिये कि जो पूर्ण और सादि अनन्त काल तक रहे, उसे ही परम शांति कहते है और यह परम शांति पर्याय से दृष्टि हटाकर अपने ध्रुव स्वभाव में रहने पर ही होती है। इसमें केवलज्ञान की पर्याय का भी लक्ष्य नहीं है। पूर्व में जो पर्यायी परिणमन हुआ, वर्तमान में चल रहा है, भविष्य में चलेगा, वह कैसी शुद्धाशुद्ध पर्याय है, इसका भेद भी न देखना, द्रव्य और पर्याय का भी भेद न देखना, अखंड ध्रुव तत्व पर दृष्टि रहना और ज्ञान में वस्तु स्वरूप का निर्णय रहना ही परम शान्ति का मूल है।

अज्ञानी, स्वभाव सन्मुखता का प्रयत्न नहीं करता अपितु राग के ही साधन पकडता है अत: उसका भ्रम दूर नहीं होता। यदि स्वभाव के आश्रय पूर्वक निर्णय करे तो उसकी भ्रमना दूर हो जाये, परिणामों में विशुद्धता आवे।

जब तक पडा है भेद में तू, भ्रम न तेरा जायेगा।
भ्रम-भेद सब मिट जायेगा, तब शान्ति अक्षय पायेगा॥

जिनेन्द्र परमात्मा द्वारा कथित वस्तु के स्वरूप को समझना, जिनवाणी में सम्यक् रूप से अवगाहन करना, सांगोपांग समझना और उस अनुसार स्वयं के स्वरूप, शक्ति को जानना। ज्ञान के अभ्यास से भेदज्ञान होता है और

भेदज्ञान के अभ्यास से केवल ज्ञान होता है। जिसे तत्वज्ञान नहीं है उसका आचरण भी यथार्थ नहीं होता, इसलिये हे कमलश्री (आत्मा)! अपने आपको देखो, कमल भाव प्रगट करो और निश्चय-व्यवहार के अनुसार अपने परिणामों में साधुता (आर्यिकापना) लाओ, सरल-सहज स्वभाव मे रहना ही मुक्ति मार्ग है। इसी से जीवन में परम शान्ति, परमानन्द प्रगट होता है। जिसे मोक्ष प्रिय है, उसे मोक्ष के कारण भी प्रिय होना चाहिए।

सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ तत्वार्थ सूत्र

अनादि अनन्त ऐसा जो एक निज शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, उसके स्व सन्मुख होकर आराधना करना वही परमात्मा होने का सच्चा उपाय हैऔर इसके लिये अपने ममल ज्ञान स्वभाव में लीन रहो यही परम पुरूषार्थ है।

श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज इसी बात को आगे गाथा मे स्पष्ट करते हैं-

गाथा-३

अन्मोयं न्यान सहावं,रयनं रयन सरूव विमल न्यानस्य। ममलं ममल सहावं,न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्तं ॥

शब्दार्थ - (अन्मोय) लीन रहो (न्यान सहाव) ज्ञान स्वभाव मे (रयन) रत्न समान (रयन सरूव) रत्नत्रय स्वरूप (विमल) मल से रहित शुद्ध निर्मल (न्यानस्य) ज्ञान का सूर्य आत्मा (ममलं) मल से रहित, शुद्ध निर्मल जिसमे कभी मल लगा ही नहीं, अनाद्यनिधन शुद्ध (ममल सहाव) ममल स्वभाव है (न्यानं) ज्ञान मे (अन्मोय) लीन रहो (सिद्धि सपत्त) सिद्धि की सम्पत्ति, मुक्ति सिद्ध पद परमानन्द दशा।

विशेषार्थ - हे आत्मन्! अपने चैतन्य धाम शुद्ध ज्ञान स्वभाव मे लीन रहो, यह रत्न के समान उज्जवल दैदीप्यमान रत्नत्रयमयी स्वयं का विमल ज्ञान स्वरूप है। इसी निर्विकारी अविनाशी चैतन्य ममल स्वभाव की निर्विकल्प अनुभूति से मुक्ति की प्राप्ति होती है इसलिये अपने ममल ज्ञान स्वभाव में लीन होकर सिद्धि मुक्ति की परमानन्दमयी परम सम्पदा पाओ, यही परम पुरूषार्थ है।

शुद्ध स्वरूप आत्मा में मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये ऐसा दिखाई देता है परन्तु ऐसा है नहीं। "आद्यं अनादि शुद्धं" आत्मा अनादि से शुद्ध है, चैतन्य द्रव्य सदा ही शुद्ध निर्मल विमल ममल स्वरूपी है। भेदज्ञान प्रगट

करने पर रागादि विभाव भाव, ज्ञान रूपी चैतन्य दर्पण में प्रतिबिम्ब रूप हैं। ज्ञान वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति द्वारा यथार्थ दृष्टि प्रगट करना यही पुरूषार्थ है।

अनेक प्रकार के कर्म के उदय, सत्ता, अनुभाग तथा कर्मनिमित्तजन्य विकल्प आदि आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं। जैसे–स्वभाव से निर्मल स्फटिक रंगा नहीं गया है। वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध, मानादि दिखाई दे तथापि वास्तव में आत्म द्रव्य उनसे भिन्न है वस्तु स्वभाव मे मलिनता नही है। अनादि से जीव और पुद्गल का एक क्षेत्रावगाह निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध होने के बाद भी आत्मा का एक प्रदेश भी पुद्गल अचेतन रूप नहीं हुआ और पुद्गल का एक परमाणु चेतन रूप नहीं हुआ, यह द्रव्य की स्वतंत्र वस्तु व्यवस्था है।

जिसे यथार्थ द्रव्य दृष्टि प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला, शुद्ध चैतन्य ध्रुव तत्व ही भासता दिखाई देता है। शरीरादि कुछ भासित नहीं होता, भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। अखण्ड त्रिकाली ज्ञान स्वभाव को ज्ञेय बनाकर इस आश्रय में एकाग्र हुआ ज्ञान परिणाम विभाव अश से भिन्न रहता हुआ, विभाव को पर ज्ञेय की तरह जानता–देखता है, यही भेदज्ञान है। साधक को एक ही समय में एक ही परिणाम मे दोनों प्रकार का भिन्न अनुभव होता है।

जीवों को ज्ञान और क्रिया के स्वरूप की खबर नही है, स्वय ज्ञान और क्रिया दोनों करते हैं ऐसी भ्रमना, भ्रान्ति भरी हुई है। मुझे इतना आता है, मै ऐसी साधना क्रियायें करता हूँ, इस प्रकार मिथ्या अभिमान में रहते हैं।

निज शुद्धात्मानुभूति के बिना ज्ञान होता ही नहीं और आत्मा का स्वभाव रूप परिणमन ही उसकी क्रिया है। बाह्य जड पदार्थो का ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान, ज्ञान नहीं है और पौद्गलिक जड की क्रिया शरीरादि का परिणमन, यह आत्मा की क्रिया नहीं है। आत्मा से पर के जड के कार्य कभी नहीं होते, जो बाह्य ज्ञान और जड की क्रियाओं में अपना कर्तृत्व मानता है वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है।

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भंडार चैतन्य देव, अनादि अनन्त परम पारिणामिक भाव में स्थित है जो पूरा निर्मल है ममल है। जिसमें कभी कर्म मलादि विकार हुये ही नहीं, जो परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक परिपूर्ण सामर्थ्यमय है। जो परम सुख, परम शान्ति,

परमानन्द का भंडार रत्नत्रय स्वरूप अनन्त चतुष्टयमयी ज्ञान स्वभावी अभेद एक परम पारिणामिक भाव रूप है। उसी का आश्रय करने, उसी में लीन रहने से सम्यक्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशायें प्रगट होती हैं।

आत्मा में सहज भाव से विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिक भाव रूप हैं तथापि वे चैतन्य द्रव्य के एक-एक अंश रूप होने के कारण उनका भेद रूप से अवलम्बन लेने पर निर्मलता शुद्ध दशा प्रगट नहीं होती इसीलिए परम पारिणामिक भाव रूप ममलह ममल स्वरूप अभेद एक शुद्ध चैतन्य ज्ञान मात्र अखण्ड परमात्म तत्व का ही आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसी का ध्यान करना ही परमानन्द दशा मुक्ति सिद्धि की सम्पत्ति मिलना है।

प्रश्न - जीव को ऐसी स्वानुभूति के लिए क्या करना चाहिये ?

समाधान - प्रथम स्वानुभूति हेतु ज्ञान स्वभावी आत्मा का जिस तरह भी हो, स्वाध्याय, सत्संग द्वारा दृढ निर्णय करना चाहिए, इसमें सहकारी तत्व ज्ञान प्रमुख है। भेदज्ञान पूर्वक द्रव्यों की स्वयं सिद्धि, सत्यता और स्वतंत्रता, द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, नव तत्वों का सत्य स्वरूप जानना, जीव और शरीर की क्रियाओं का भिन्न-भिन्न ज्ञान करना, पुण्य और धर्म के लक्षण भेद जानना, निश्चय और व्यवहार का यथार्थ ज्ञान करना और इन सबका निरन्तर अभ्यास करते हुए अपने शुद्ध चैतन्य शुद्धात्म तत्व, ममल स्वभाव में लीन रहना, ज्ञान स्वभाव में रहना ही इष्ट प्रयोजनीय है।

पढना-लिखना, सीखने के लिए बाहर से धन खर्च करे, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि करे तो भी पढना, लिखना, सीखने में नहीं आता, अक्षर ज्ञान करके उसका अभ्यास करे तभी पढना-लिखना सीखने में आता है। इसी तरह आत्म ज्ञान और आत्मानुभूति बाहर के किसी क्रिया, कर्म से नहीं होती। दया, दान, व्रत से शांति व धर्म नहीं मिलता, वह तो इन शरीरादि से भिन्न मैं एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा हूं, यह शरीरादि मैं नहीं, ये मेरे नहीं हैं। ऐसा भेदज्ञान पूर्वक सम्यक् श्रद्धान ज्ञान करने पर ही होता है, इसी को धर्म कहते हैं। ऐसी प्रतीति के बिना शांति आनंद नहीं मिलता।

''पर पर्जय हो, दिष्टि न देई सो ममल सुभाए'' पर और पर्याय पर दृष्टि न देना ही ममल स्वभाव है, यह स्थिति बनना, स्थायी रहना ही केवलज्ञान मुक्त, सिद्ध दशा प्रगटाने वाली है।

प्रश्न- आप कहते हैं, ममल स्वभाव में लीन रहो, सहज-सरल स्वभाव रखो, जिनेन्द्र देव ने जैसा वस्तु स्वरूप बताया है, उसका श्रद्धान करो, यह तो सब बात समझ में आती है परन्तु अभी तो नाना प्रकार के मिथ्या भाव चलते हैं, अशुद्ध पर्याय चल रही है, कर्मोदय संयोग है, कर्म बंध सत्ता में पड़े हैं, इनका क्या करें, जब यह सब तूफान चलता है तो आत्मा की तो सुरत ही नहीं रहती, ऐसे में क्या करें ?

सद्गुरू श्रीमद् जिन तारण स्वामी इसके समाधान में आगे गाथा कहते हैं-

गाथा - ४

जिनयति मिथ्याभावं, अन्रित असत्य पर्जाव गलियं च ।
गलियं कुन्यान सुभावं, विलयं कंमान तिविह जोएना ॥

शब्दार्थ- (जिनय) जीतो, जीतते हैं (ति) तीन प्रकार के (मिथ्याभावं) मिथ्याभावों को (अन्रित) क्षणभंगुर (असत्य) झूठा, नाशवान (पर्जाव) पर्याय (गलियं) गल जाती है (च) और (गलियं) गल जाता है (कुन्यान सुभावं) कुज्ञान स्वभाव, झूठा विपरीत ज्ञान (विलयं) विला जाते हैं (कंमान) कर्मो के समूह (तिविह) तीन प्रकार के (जोएना) योग-मन, वचन, काय का एकाग्र शांत होना ।

विशेषार्थ- जो भव्य जीव, तीनों मिथ्यात्व भाव को जीतते हैं और क्षण भंगुर भावों में भ्रमित भयभीत नहीं होते, उनकी कर्मोदय जनित विभाव रूप समस्त अनृत, असत्य पर्यायें गल जाती हैं। चैतन्य स्वरूप से भिन्न, उदय जनित परिणाम और कुज्ञान भाव भी गल जाता है । ज्ञानी, तीनों योगों की एकाग्रता कर निज स्वभाव में लीन होते हैं, जिससे कर्मों के समूह के समूह विला जाते हैं।

यहां श्री जिन तारण स्वामी, कमलावती जी के प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि हे कमलावती ! इन तीन मिथ्याभावों को जीतो । तीन मिथ्याभावों का अभिप्राय-यह शरीर मैं हूँ, यह शरीरादि मेरे हैं और मै इनका सबका कर्ता हूं। यह भाव अज्ञान दशा में चलते हैं। जब भेदज्ञान पूर्वक निज शुद्धात्मानुभूति हो गई, अपने आत्म स्वरूप का श्रद्धान रूप सम्यक्दर्शन हो गया तो अब इन मिथ्या भावों से क्षणभंगुर नाशवान पर्याय से भ्रमित भयभीत होने की क्या बात है ? इन्हें जीतो ।

यहां प्रश्न आता है कि इन्हें कैसे जीतें ? उसका समाधान करते हैं कि ज्ञान मार्ग में अपना आत्मबल, ज्ञानबल ही सहकारी होता है, इन भावों को जीतने का उपाय है कि भेदज्ञान-तत्व निर्णय पूर्वक वस्तु स्वरूप का सत्श्रद्धान करो और इन किसी भी भाव पर्यायादि से भयभीत मत रहो, इन्हें महत्व मत दो, इनकी परवाह न करो, इन्हें अच्छा-बुरा मत मानो। अपने ज्ञान स्वभाव में स्थिर रहो, तो यह भाव पर्याय अपने आप गल जाते हैं, विला जाते हैं, इनका कोई अस्तित्व सत्ता नहीं है। हम अपनी अज्ञानता से इनको महत्व देते हैं, डरते हैं, सत्ता मानते हैं तो यह पेरते हैं, भयभीत करते हैं, इनको जीतने का उपाय अपने ज्ञान भाव में निर्भय स्थित रहना है और त्रियोग की साधनापूर्वक जहां अपने ज्ञान स्वभाव में लीन हुए वहां सब कर्मादि कुज्ञान भाव भी गल जाते हैं, विला जाते हैं, सब कर्मों का क्षय हो जाता है।

पर द्रव्य और पर्याय की वृत्ति अशुभ हो चाहे शुभ हो, पर वह आत्मा नहीं है। स्वरूप से अनुभव में आता हुआ ज्ञान ही आत्मा है। अपने ज्ञायक स्वभाव का विचार और बारम्बार अभ्यास से ज्ञान स्वभाव मे स्थिरता और दृढता आती है, इसी से यह कर्म, भाव-विभाव, पर्यायादि, गलते-विलाते, क्षय होते हैं। इनसे छूटने के लिए इन्हें जीतने के लिए पर भावों से भिन्न आत्मा को जानकर उसी का अभ्यास करना योग्य है। ज्ञान द्वारा अपने स्वरूप शक्ति को जानना, बार-बार चिन्तवन-मनन अभ्यास करने पर उसमें दृढता आती है।

शुद्धात्म तत्व की ओर ढलना अर्थात् उस रूप रहना ही विकल्प के अभाव होने की रीति है। उपयोग का झुकाव अंतर्मुख स्वभाव की ओर होने पर विकल्प छूट जाते हैं फिर यह कोई भी मिथ्याभाव, शल्य विकल्प होते ही नहीं हैं।

पहले आत्म स्वभाव का श्रवण मनन कर उसे लक्ष्य में लिया हो, अनुभूति युत श्रद्धान हो तो उसमें अन्तर्मुख होने से यह सारे भाव, विकल्प, पर्याय कर्मादि जीते जाते है, अर्थात् ज्ञान स्वभाव में रहने पर यह सब गल जाते, विला जाते, क्षय हो जाते हैं।

ज्ञातापने के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होने पर कर्तापना छूटता है, विभाव अपना स्वभाव नहीं है इसलिए आत्मा विभाव में एकमेक नहीं हो जाता, आत्मा तो शुद्ध रहता है, मात्र अनादि कालीन मान्यता के कारण, पर ऐसे शरीरादि जड की क्रिया मैं करता हूँ, मेरा स्वरूप रागादि है, मैं सचमुच विभाव का कर्ता हूँ, इस प्रकार की मिथ्या भ्रमना हो रही है । अपने आत्म स्वरूप का सम्यक् बोध होने पर कर्तापना छूटता है। कर्तापना, अपनत्व, एकत्व, छूटना ही सब

कर्मों को, भाव–पर्याय को जीतना है फिर कर्मोदय जन्य उनका जो परिणमन चलना हो, चलता रहे। ज्ञानी, ज्ञायक रहकर सब देखता है फिर उसमें कुछ अच्छा बुरा विकल्प आदि होते ही नहीं हैं।

अनादि काल से एकत्व परिणमन में सब एकमेक हो रहा है, उसमें से मैं मात्र ज्ञान स्वरूप, ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, इस प्रकार भिन्न होना है । जहां भिन्नता भाषित होती है वहां सब भाव, पर्याय, कर्मादि अपने आप विला जाते हैं, यही ज्ञान मार्ग में इनको जीतना कहलाता है।

जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ ले, वाद–विवाद करना जाने, प्रमाण, नय, निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञान का विशेष महत्व बताये, परन्तु जब तक ज्ञान स्वरूप आत्मा के अस्तित्व को न पकडे और तद्रूप परिणमित न हो, तब तक वह ज्ञेय निमग्न रहता है अर्थात् जो–जो बाहर का जाने, उसमें तल्लीन हो जाता है। ज्ञायक स्वभाव आत्मा का निर्णय करके मति, श्रुत ज्ञान का उपयोग जो बाह्य में जाता है उसे अंतर में समेट लेना, बाहर जाते हुए उपयोग को ध्रुव स्वभाव के अवलम्बन द्वारा बारम्बार अंतर में स्थित करते रहना, यही शिवपुरी पहुंचने का राजमार्ग है। मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, ऐसी प्रतीति कर उसमें स्थिर हो जाने पर उसमें जो अनंत चमत्कारिक शक्ति है वह प्रगट अनुभव में आती है फिर यह भाव, कर्मादि कोई बाधा नहीं डालते। इनका परिणमन अपने में चलता हुआ निर्जरित क्षय होता जाता है। आत्मा अपने ज्ञानानंद, निजानंद, सहजानंद स्वभाव में निमग्न रहता है, यही मुक्ति मार्ग है।

निज शुद्धात्म स्वरूप में मिथ्यात्व वर्णादि विभाव हैं ही नहीं, इसका यथार्थ ज्ञान, श्रद्धान होने तथा रूचि पूर्वक तन्मय होने पर मिथ्यात्वादि विभाव विला जाते हैं अन्य किसी उपाय अर्थात् पूजा, व्रतादि द्वारा यह मिथ्यात्वादि भाव नहीं हटता और न कर्म बंधन से मुक्ति होती है।

प्रश्न–इतना सब ज्ञान श्रद्धान भेदज्ञान अनुभव प्रमाण होने पर यह भ्रमना भयभीतपना क्यों होता है ?

समाधान– इसमें प्रमुख दो कारण हैं–

१. पर में चाह, लगाव, राग, रूचि होना ।

२. क्षायिक सम्यक्त्व का न होना।

१. सम्यक्दर्शन होने पर, पर से एकत्व टूटता है और सम्यक्ज्ञान होने

पर, पर से अपनत्व और कर्तृत्व छूटता है, ज्ञायक भाव प्रगट होता है । अब सम्यक्चारित्र होने पर, पर से चाह लगाव छूटेगा, जिसका सूक्ष्म रूप राग और रूचि है। इनके छूटने पर वीतरागता होने पर परमानंद दशा होती है। इसमें अपनी अपेक्षा पुरूषार्थ की कमी और निमित्त की अपेक्षा चारित्र मोहनीय कर्म का उदय उसकी सत्ता है।

२. क्षायिक सम्यक्दर्शन-पूर्ण अटल, दृढ श्रद्धान और पर पर्यायादि कर्मों के स्वरूप का दृढ अटल विश्वास होना ही क्षायिक सम्यक्दर्शन है । क्षायिक सम्यक्दर्शन होने पर कोई भ्रमना, भयभीतपना नहीं रहता, पर यह सम्यक्त्व कर्मों के क्षय होने पर होता है तथा जो तद्भव मोक्ष गामी है या एक दो भव में मोक्ष जायेगा उसे ही होता है, ऐसा कर्म और जीव का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। उपशम या वेदक सम्यक्त्व सहित सम्यक्ज्ञान सातवें गुणस्थान तक ले जाता है परन्तु वेदक सम्यक्त्व होने से श्रद्धान में चल, मल, अगाढपना होता है । अब इसमें अपने आप को देखो जानो और अपना पुरूषार्थ अपने स्वरूप साधना का करो, संयम तप का जोर लगाओ, परिस्थिति है उसमें समता शांति से ज्ञान भाव में ज्ञायक रहो।

जिसने शांति और अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद चख लिया हो, उसे राग नहीं रूचता, वह परिणति में विभाव से दूर भागता है, जैसे एक ओर शीतल शांत स्थान हो और एक ओर अग्नि का दावानल हो तो मनुष्य उस अग्नि के दावानल से दूर भागता है और शीतल शांत स्थान में विश्राम करता है, वैसे ही ज्ञानी को विभाव परिणति, रागादि भाव-कर्म, संयोग रूचते नहीं हैं क्योंकि जब तक जरा सा भी संयोग रहेगा, विकल्प होंगे ही ; इसलिए ज्ञानी साधक मुनिराज एकांत निर्जनवन में अपनी साधना करते, ध्यान समाधि लगाते हैं ।

मुनिराज तो निजात्मा, शुद्ध ममल स्वभाव में निवास करते हैं, उसमें विशेष-विशेष एकाग्र होते-होते वे वीतरागता को प्राप्त करते हैं। वीतरागता होने से उन्हें ज्ञान की अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है, जिसमें लोकालोक प्रकाशित होता है, ऐसे अचिन्त्य महिमावंत केवलज्ञान को वीतराग मुनिराज ही प्राप्त करतें हैं।

अपनी पात्रता पुरूषार्थ अनुसार इन मिथ्यात्वादि कर्मों को जीतो। इनसे अपनी दृष्टि हटा लेना, इन्हें कोई महत्व मान्यता नहीं देना, अपने ज्ञान स्वभाव में स्थित रहना ही इन्हें जीतना है, जिससे यह सब स्वयमेव गल जाते विला जाते हैं।

प्रश्न– इन कर्मादि पर्यायों के गलने विलाने क्षय होने का उपाय क्या है ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं–

गाथा – ५

नंद अनंदं रूवं, चेयन आनंद पर्जाव गलियं च।
न्यानेन न्यान अन्मोयं, अन्मोयं न्यान कम्म षिपनं च ॥

शब्दार्थ– (नंद) सुख स्वभाव (चार संख्या का बोधक), चार अनंत चतुष्टयमयी (अनदं) आनंद (रूवं) अपना सत्स्वरूप है (चेयन आनंद) चिदानद, ज्ञानानंद में (पर्जाव) पर्याय (गलियं) गल जाती है (च) और (न्यानेन) ज्ञानोपयोग (न्यान अन्मोयं) ज्ञान में लीन होना, चिंतन-मनन करना (अन्मोयं न्यान) ज्ञान स्वभाव में लीन रहने से (कम्म षिपनं) कर्म क्षय हो जाते हैं (च) और।

विशेषार्थ– अपना सत्स्वरूप, आत्मा सुख स्वभावी अनंत चतुष्टय धारी आनंदमयी है। हमेशा अपने में प्रसन्न, सुखी, आनंद, चिदानंद में रहने से पर्याय गल जाती है और दर्शन ज्ञानोपयोग के स्वभाव में लीन रहने से सारे कर्म क्षय हो जाते हैं।

अभी धर्म की महिमा, अपने सत्स्वरूप की सत्ता शक्ति को नहीं जाना, अपना स्वाभिमान, बहुमान नहीं आया, इसीलिए इन कर्मादि पर्यायों से इतना भयभीतपना रहता है। इनकी सत्ता मानते हो, इन्हें महत्व देते हो, अपनी सत्ता शक्ति को देखा जाना नहीं है। अपना आत्म स्वरूप सुख स्वभावी आनंदमयी ज्ञानानंद स्वभावी है। जो ज्ञानी साधक अपने सुख स्वभाव ज्ञानानन्द में प्रसन्न मस्त रहते हैं, उनकी समस्त पर्यायें गल जाती हैं, सामने दिखाई ही नहीं देतीं। पर्याय तो एक समय की ही होती है, उधर से दृष्टि हटी हो, अपने स्वभाव में डटी हो तो पर्याय का तो पता ही नहीं चलता और वह निर्जरित क्षय होती जाती है। पर्याय की कोई सत्ता अस्तित्व नहीं है, वह तो असत्, क्षण भंगुर, नाशवान है ही, उसकी सत्ता मानना, उसे महत्व देना ही अज्ञान है तथा ज्ञान स्वभाव में लीन रहने पर सारे पूर्व बद्ध कर्म क्षय हो जाते हैं।

कर्म पुद्गल जड़ अचेतन हैं, पर्याय एक समय की है। यह स्वयं के ज्ञान में जानने में आते हैं। अपना उपयोग इनकी तरफ होता है तभी यह देखने जानने में आते हैं और अपनी अज्ञानता मिथ्या मान्यता से इन्हें अच्छा बुरा

मानते हैं, सुख-दु:ख मानते हैं,यही बंधन है। इनको और अपने ज्ञान स्वभाव को लक्षण भेद से सर्वथा भिन्न करने पर ही अपना सत्स्वरूप शुद्धात्म तत्व लक्ष्य में आता है, जैसे जो आत्मा पूर्ण वीतरागी होता है, वही अरिहन्त, सर्वज्ञ परमात्मा होता है। वैसे ही सर्व प्रकार के कर्म और रागादि भावों से भिन्न मैं ज्ञायक स्वभावी आत्मा हूँ ऐसा जिसकी समझ में आता है, वही सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा को पहिचानता अनुभव करता है।

पाप भाव, पाप कर्म जैसे आत्मा से भिन्न हैं, वैसे ही पुण्य भाव, पुण्य कर्म भी आत्मा से भिन्न हैं। ज्ञायक स्वभावी आत्मा इन्हें देखता जानता है पर वह कुछ करता नहीं है। शुद्धात्म स्वरूप में इनका प्रवेश ही नहीं है तथा स्वानुभूति में इनका पता ही नहीं रहता, ऐसी अन्तर दृष्टि होना, वस्तु स्वरूप जानना ही, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान है। कर्मादि अशुद्ध पर्याय और ज्ञानी के ज्ञान में ज्ञेय, ज्ञायक सम्बन्ध है, कर्तापना नहीं है। ज्ञान में रागादि के प्रति तीव्र अनादर भाव जागता है, यही ज्ञान और राग के मध्य भेदज्ञान होने का लक्षण है। जितने भी पर्यायी विकल्प उठते हैं, सब दु:ख ही दु:ख रूप हैं ऐसा ज्ञान जानता है।

यहाँ सद्गुरू ने विशेष सूत्र दिये हैं -

(१) अपने चैतन्य स्वभाव के आनन्द में रहने से पर्याय गल जाती है।

(२) अपने ज्ञान स्वभाव में लीन होने पर सब कर्म क्षय हो जाते हैं।

स्व-पर प्रकाश का पुंज ज्ञान स्वभावी भगवान आत्मा तो शुद्ध ही है पर जो रागादि भावों से भिन्न होकर उसकी उपासना करे, उसी के लिये वह शुद्ध है। जिसने समस्त कर्मादि संयोग व एक समय की पर्याय से भी भिन्न अपने को जाना है तथा स्व में एकाग्रता करते हैं, उनके शुद्धता प्रगट होती है। जीव और कर्म पुद्गलादि अनादि से एक साथ रहते, एकमेक जैसे हो रहे हैं परन्तु दोनों कभी भी न तो एक रूप हुये और न ही हो सकते, दोनो भिन्न ही हैं। ऐसा जानकर अपने में आनन्दित प्रसन्न रहने पर पर्याय गलती है और कर्म क्षय होते हैं।

निज स्वभाव ज्ञान मात्र है। आत्मा में ज्ञान अवस्थित है परन्तु ज्ञेय ज्ञान के भेदज्ञान से शून्य होने के कारण स्वयं को ज्ञेय रूप जानता हुआ, अज्ञान रूप परिणमित होता हुआ, अज्ञानी उनका कर्ता बनता है। विकार और स्वभाव को एक मान रहा है अत: यथार्थ विचार नहीं कर पाता। दया-दानादि से धर्म होने की मान्यता, व्यवहारिक क्रिया कांड, कषाय को मंद करे तो धर्म हो,

ऐसी विपरीत श्रद्धा स्वभाव व विभाव को पृथक् जानने रूप विचार भी नहीं करने देती।

स्व–पर का श्रद्धान होने पर, अपने को पर से भिन्न जाने तो स्वयं के आश्रय से संवर निर्जरा रूप सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है और पर द्रव्यों का अपने से भिन्न रूप श्रद्धान होने पर, पर के लक्ष्य से होने वाले पुण्य–पाप व आश्रव–बंध छूटने लगते हैं यही मुक्ति मार्ग है।

प्रश्न–जब आत्मा शुद्ध मुक्त सिद्ध के समान है फिर यह अशुद्ध पर्याय कर्मादि का चक्कर कैसा क्या है ?

समाधान– आत्मा, स्वभाव से शुद्ध मुक्त सिद्ध के समान है परन्तु अनादि से अपने स्वभाव का विस्मरण होने से अज्ञान, मिथ्यात्व रूप परिणमन चल रहा है, इसी से यह अशुद्ध पर्याय और कर्मादि का संयोग चल रहा है। जब जीव का विभाव रूप परिणमन चलता है तब कर्मों का आश्रव बंध होता है, कर्मावरण से पर्याय का अशुद्ध रूप परिणमन चलता है और जब जीव का स्वभाव रूप परिणमन चलता है तब कर्मों की निर्जरा होती है। कर्मावरण मिटने से पर्याय शुद्ध रूप होती जाती है, ऐसा जीव का और कर्मों का निमित्त – नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्रश्न – यह जीव और कर्मों के निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध का मूल आधार क्या है और इससे छूटने का उपाय क्या है ?

इसके समाधान मे श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य महाराज आगे गाथा कहते हैं–

गाथा – ६

कम्म सहावं षिपनं, उत्पत्ति षिपिय दिस्टि सभावं।
चेयन रूव संजुत्तं, गलियं विलियं ति कम्म बंधानं॥

शब्दार्थ– (कम्म) कर्म (सहावं) स्वभाव से (षिपन) क्षय होने, नष्ट होने वाला है (उत्पत्ति) पैदा होना, आस्रव बंध होना (षिपिय) क्षय होना (दिस्टि) जीव का दर्शनोपयोग (सभावं) सद्‌भाव पर है (चेयन) चैतन्य (रूव) स्वभाव में (संजुत्तं) संयुक्त, लीन रहना (गलियं) गल जाते हैं। (विलियं) विला जाते हैं, क्षय हो जाते हैं (ति) तीन प्रकार के (कम्म) कर्म (बंधानं) बंधे हुए।

विशेषार्थ– कर्म, स्वभाव से नाशवान हैं अर्थात् कर्मों का स्वभाव क्षय होने का है, कर्मों का उत्पन्न होना, अर्थात् आश्रव बंध होना और क्षय होना,

दृष्टि के सद्भाव पर निर्भर है, पर पर्याय पर रागादि विकार युक्त दृष्टि से कर्मों का आश्रव बंध होता है और अपने ममल स्वभाव पर दृष्टि होने से कर्म क्षय होते हैं। अपने चैतन्य स्वरूप त्रिकाली ध्रुव स्वभाव में लीन रहने से तीनों प्रकार के (द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म) कर्मों के बंधन विला जाते हैं।

सद्गुरू ने यह करणानुयोग का सार, कर्म सिद्धान्त का पूरा निर्णय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का पूरा सिद्धांत एक गाथा में भर दिया, यह गाथा जैनागम का सार है।

कर्म स्वभाव से नाशवान, क्षय होने वाले हैं क्योंकि कर्म पुद्गल जड हैं। कार्माण वर्गणाओं का समूह कर्म कहलाता है। पुद्गल परमाणु द्वारा बनी हुई, हर वस्तु मर्यादित है। इसके बाद नष्ट होना उसका स्वभाव है। चर्म चक्षुओं द्वारा जो भी दिखाई दे रहा है यह सब पुद्गल का ही परिणमन है जो सब क्षणभगुर नाशवान परिवर्तनशील है। कार्माण वर्गणायें सूक्ष्म होती हैं, कर्म बन्धोदय दिखाई नहीं देता पर अनुभव में आता है। इन कर्मों के द्वारा ही यह शरीरादि का परिवर्तन होता है। इन कर्मों का आश्रव बंध होना और निर्जरा क्षय होना, यह जीव की दृष्टि के सद्भाव पर है। बस यही निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है, जो सिद्धांत परम्परारूप अनादि काल से चल रहा है। जीव की दृष्टि दर्शनोपयोग बाहर पर पर्याय पर है। रागादि भाव चल रहे है, इससे ही कर्मो का आश्रव बन्ध होता है।

जीव सम्यक्दृष्टि ज्ञानी है उसकी दृष्टि स्वभाव पर है तो कर्म क्षय होते हैं और जहाँ अपने चैतन्य परम पारिणामिक भाव ध्रुव स्वभाव में लीन हुआ तो तीनो प्रकार के बंधे हुये कर्म बन्धन गल जाते, विला जाते, क्षय हो जाते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, नाम, आयु, गोत्र, वेदनीय, यह आठ, द्रव्य कर्म कहलाते हैं।

इनकी एक सौ अडतालीस उत्तर प्रकृतियां होती हैं। संसार में सब जीवों का शरीरादि संयोग का परिणमन इन कर्म प्रकृतियों के आधार से होता है।

मोह, राग, द्वेषादि भाव, भाव कर्म कहलाते हैं।

इन भाव कर्मो से द्रव्य कर्म, बंधते हैं और द्रव्य कर्म के निमित्त से भाव कर्म होते हैं। यह भाव कर्म हैं तो पुद्गल कर्म वर्गणायें, पर यह भाव होते जीव के हैं, पुद्गल जड में यह कोई मोह-राग, द्वेषादि भाव नहीं होते।

प्रश्न - जब यह भाव कर्म जड़ हैं, पुद्गल कर्म वर्गणायें हैं फिर यह जीव के क्यों होते हैं ?

समाधान– अज्ञानी जीव जब जड पर वस्तुओं को अपना मानता है, तब यह रागादि भाव होते हैं, शरीरादि संयोग नो कर्म कहलाते हैं। यह तीनों प्रकार के कर्मो का आश्रव, बंध जीव की मिथ्या दृष्टि और अज्ञान से होता है। इन तीनों कर्मो की निर्जरा जीव के सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान से होती है।

सारे कर्म बंधनों का अभाव, सम्यक्दृष्टि जीव के अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप ध्रुव स्वभाव में लीन होने पर होता है। जिसको अपने सत्स्वरूप का पता नहीं है,ऐसे अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि जीव को निरन्तर कर्मों का बंध होता है। जो जीव सम्यक्दृष्टि ज्ञानी होता है उसे कर्मों का बंध नहीं होता, कर्मों की निर्जरा होती है।

पर वस्तु बंध का कारण नहीं है उसके प्रति जीव का मिथ्यात्व भाव–अज्ञान भाव–बंध का कारण है।

विशेष– कर्मों का बंध कर्म में ही होता है तथा कर्मों से ही कर्मों का बंध होता है। जीव, चेतन लक्षण वाला अरूपी, अमूर्तिक द्रव्य है, पुद्गल रूपी मूर्तिक द्रव्य है । प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य और गुण से शुद्ध है। मात्र जीव और पुद्गल द्रव्य की पर्याय ही अशुद्ध है और इसमें ही एक दूसरे का निमित्त–नैमित्तिक संबंध है। जिसको अंतर्दृष्टि व ज्ञान नहीं है वह इन कर्मों के चक्र में ही घूमता रहता है।

परमात्म तत्व की ओर दृष्टि होते ही जीवात्मा, कर्म प्रकृति से विमुख हो जाता है। अर्थात् उसके पौद्गलिक जगत और कर्म प्रकृति के साथ माने हुए संबंध का विच्छेद हो जाता है और तब वह अपने परमात्म स्वरूप में अपनी वास्तविक अभिन्न स्थिति का अनुभव करता है।

जिस प्रकार खेत में बोये हुए बीजों के अनुरूप उनके फल समय पर प्रगट होते हैं वैसे ही इस मानव शरीर से अहंकार पूर्वक किए हुए कर्मों के संस्कार रूप बीजों के फल अन्य शरीरों में अथवा इसी शरीर में समय पर प्रगट होते हैं। शरीर, कर्म प्रकृति का कार्य है वह यहां प्राप्त होता है और यहीं नष्ट हो जाता है, जबकि जीव आत्मा, स्वयं इस जन्म से पहले भी था तथा जन्म–जन्मान्तर में भी ज्यों का त्यों रहता है।

शरीरादि से अपने को पृथक् जान लेने परं शरीरादि का कोई नाश नहीं होता एवं जानने वाले को कोई हानि नहीं होती क्योंकि दोनों पहले से ही

पृथक-पृथक हैं। नाश होता है मात्र अज्ञान का, वस्तु स्थिति ज्यों की त्यों रहती है, ज्ञान केवल अज्ञान का विरोधी है न कि क्रिया के अनुष्ठान का। अज्ञान मिथ्यात्व के कारण शरीरादि के साथ एकता करके जीव दु:खों को भोग रहा था। ज्ञान हो जाने से अज्ञान के कार्यरूप सम्पूर्ण दु:ख मिट जाते हैं, कर्मों के बंधन छूट जाते हैं। सम्यक्दृष्टि ज्ञानी होने से सम्पूर्ण दु:ख रूप कर्मो का अभाव होने लगता है, कोई शारीरिक और व्यवहारिक क्रियाओं का अभाव नहीं होता।

धनादि की प्राप्ति में प्रारब्ध कर्म की प्रधानता है। जो वस्तु प्रारब्धानुसार मिलने वाली है, वह तो अवश्य मिलेगी ही, न मिलने वाली वस्तुएं नाना प्रकार के उद्योग और झूठ कपटादि के व्यवहार से भी नही मिलती।

मनुष्य शरीर, आत्म कल्याण करने, परमात्म तत्व की प्राप्ति के लिए मिला है। इस जन्म से पहले के जन्मों में मैंने जो शुभ-अशुभ कर्म किए थे, उन्हीं का फल अब भोगना पड रहा है और अभी जो शुभ-अशुभ कर्म कर रहा हूँ उसे भोगने के लिए इस शरीर का नाश होने के पश्चात् भी मेरी सत्ता रहेगी अर्थात् मैं स्वर्गादि चार गति, चौरासी लाख योनियों में कहीं न कहीं रहूंगा और इन कर्मों के फलों को भोगना पडेगा, ऐसा जानकर ज्ञानी इन कर्म फलों से छूटता है।

यह नियम है कि प्रकृति के जिस कार्य, दृश्य वर्ग मे राग होता है उसके विपरीत या विरोधी पदार्थो से द्वेष उत्पन्न हो जाता है। वैसे ही चैतन्य चिन्मय स्वरूप होने से जितने अंश में आत्मा का पर पर्याय ससार में राग होता है, उतना ही कर्म बंध होता है तथा उतने ही अंश में वह अपने चिन्मय स्वरूप से विमुख रहता है; अत: द्वेष के सर्वथा अभाव के लिए संसार में कहीं भी राग नही करना चाहिए जिसके पूर्ण राग-द्वेष का अभाव हो जाता है वही पूर्ण वीतरागी परमात्मा होता है।

कर्म बंधनों से सर्वथा मुक्त होना हो तो एक ही उद्देश्य हो- तत्व ज्ञान की प्राप्ति करना और इसके लिए सांसारिक सग्रह में भोग बुद्धि, सुख बुद्धि और रस बुद्धि नहीं होना तथा निषिद्ध आचरण, पाप अन्याय, झूठ कपट आदि का हृदय से त्याग कर देना, तभी अपने स्वरूप में तन्मयता होती है, जिससे समस्त कर्मबंध क्षय होते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का होना भी जिस

ज्ञान के प्रकाश में प्रकाशित होते हैं वह ज्ञान नित्य निरंतर अखंड एक रस रहता है, उसी को अपना स्वरूप समझकर अभिन्न भाव से नित्य निरंतर स्थित रहना तत्व ज्ञान है।

परमात्म तत्व कभी बदलता नहीं है, वह अटल ध्रुव नित्य शाश्वत है। साधक का लक्ष्य यदि पल-पल बदलते हुए पर पर्याय संसार से हटकर केवल इस अटल ध्रुव तत्व पर केन्द्रित हो जाये तो उसे अविलम्ब परमात्म तत्व से अभिन्नता का बोध हो सकता है क्योंकि तत्व से तो पहले से ही अभिन्न है, केवल भूल से परिवर्तनशील और अनित्य की अर्थात् संसार की ओर अभिमुख हो वह अपने आपको चलायमान, संसारी मानने लगा, अचल ध्रुव तत्व में स्वाभाविक स्थिति होने से यह भूल दूर हो सकती है।

यश प्रतिष्ठा आदि की कामना, दम्भ, हिंसा, क्रोध, कुटिलता, द्रोह, अपवित्रता, अस्थिरता, इन्द्रियों की लोलुपता, राग, अहंकार, आसक्ति, ममता, विषमता, अश्रद्धा और कुसंग आदि दोष जीवन का पतन करने वाले है, इनके रहते हुए विशुद्ध तत्व का ज्ञान नहीं हो सकता।

क्रिया मात्र कर्म बंध का कारण है और समस्त क्रियायें कर्मोदय जन्य कर्म प्रकृति द्वारा पुद्गल में हो रही हैं। इनमें जो जीव अपने को इनका कर्ता मानता है वह कर्म से बंधता है और भेदज्ञान-पूर्वक जो जीव भिन्न अकर्ता रहता है वह कर्म बंध से छूटता है और जो अपने स्वभाव में लीन हो जाता है। वह पूर्ण मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार जीव के अज्ञान, मिथ्यात्व के कारण अनादि से कर्मादि का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान होने पर कर्तापन और निमित्त-नैमित्तिक संबंध छूट जाता है। सम्यक्चारित्र से मुक्त हो जाता है।

वर्तमान कर्म संयोग में अनुकूल या प्रतिकूल प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति और घटना आदि के संयोग-वियोग में, मन में हलचल न होना ही साधक की सम्यक्चारित्र की स्थिति है।

प्रश्न- यह मन तो बडा चंचल रहता है, जरा-जरा से उसमें नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प करता है, इसके शांत करने का क्या उपाय है?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं -

गाथा - ७

मन सुभाव संषिपनं, संसारे सरनि भाव षिपनं च ।
न्यान बलेन विसुद्धं, अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च ।।

शब्दार्थ- (मन सुभाव) मन का स्वभाव (संषिपनं) स्वयं क्षय होने का है । मन, मोहनीय-कर्मोदय जन्य पर्याय है, पर्याय एक समय की होती है, नाशवान है (संसारे) संसार में (सरनि भाव) परिभ्रमण कराने वाले रागादि विकारी भाव (षिपनं) क्षय हो जाते हैं, विला जाते हैं (च) और (न्यान बलेन) ज्ञान के बल से (विसुद्धं) अपने शुद्ध स्वभाव, (अन्मोयं) लीन रहो (ममल) ममल स्वभाव (मुक्ति गमनं) मोक्ष जाने का रास्ता (च) और ।

विशेषार्थ- मन का स्वभाव नाशवान क्षय होने का है और चार गति, पंच परावर्तन रूप संसार में परिभ्रमण कराने वाले यह रागादि विकारी भाव भी क्षय हो जाते हैं, विला जाने वाले हैं इनको शुद्ध नहीं करना, मन को शांत नहीं करना, तुम अपने ज्ञान के बल से अपने शुद्ध स्वभाव, ममल भाव में लीन रहो । यही मुक्ति मार्ग है ।

अनादि से जीव की कर्ता बुद्धि रही, कुछ न कुछ करना चाहता है, शरीर की क्रिया, व्रत संयम तप आदि का कर्ता बनता है, मन आदि को शांत करना चाहता है पर भाई, यह तेरे हैं कहां ? तू शरीर, इन्द्रिया, मन बुद्धि से रहित मात्र चैतन्य ज्योति ज्ञायक स्वभावी भगवान आत्मा है, मन को शुद्ध करने शांत करने का भाव ही अज्ञान, मिथ्यात्व है । शरीरादि मन का स्वभाव तो स्वयं नाशवान है। वह रहने वाले ही नहीं है । तेरे अज्ञान, मिथ्यात्व से तू उन्हें पकडे है, यही तेरा बंधन है, तू अपने ज्ञान बल से अपने शुद्ध स्वभाव, ममल भाव में शांत, शून्य निर्विकल्प समाधिस्थ लीन रहे, यही मुक्ति मार्ग है ।

जहां चैतन्य प्रभु, अपने स्वभाव में आ गया, वहां बाहर कुछ है ही नहीं, यह चैतन्य के प्रकाश में दिखने वाले मन आदि भाव विभाव भ्रम हैं और यह शरीरादि पौद्गलिक जगत भ्रांति है, इनका अस्तित्व, सत्ता ही क्या है ? यह तो सब क्षणभंगुर नाशवान हैं । जैसे-धूप में पानी का भ्रम-मृग मरीचिका दिखती है, है क्या ? वैसे ही यह मन, मोह-माया से ग्रसित क्षणभंगुर नाशवान विचारों का प्रवाह है । एक भ्रम है जो दिखता है पर वास्तविकता क्या है ? ऐसे ही यह संसारी मोह-माया, राग-द्वेषादि भाव भी विला जाने वाले हैं । अज्ञानी जीव इन्हें पकडतां हैं, अपने मानता है, कर्ता बनता है इसीलिए कर्म बंधन से

बंधता है।

सद्गुरू तारण स्वामी कहते हैं कि मन को शांत नहीं करना, स्वयं शांत होना है । भाव–विभावों को नहीं बदलना है, स्वयं निज स्वभाव में रहना है। यह मन आदि तो स्वयं ही नाशवान हैं। जैसे आकाश में बादल दिखाई देते हैं लेकिन थोडे समय में सब अपने आप विला जाते हैं। ऐसे ही यह मन, संसारी भाव भी सब नाशवान विला जाने वाले हैं। तुम इन्हें मत देखो, अपने भेदज्ञान–तत्व निर्णय के बल से अपने शुद्ध स्वभाव, ममल भाव में लीन रहो, यही मुक्ति मार्ग है।

ज्ञानी अपने निज के निश्चय सम्यक्त्व सहित होने से नवीन कर्मों का संवर करता हुआ तथा पूर्व में स्व–अपराध से बांधे हुए कर्मों को अपने निर्जरा योग्य परिणामों के उठान से क्षय करता हुआ वह सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं स्वानुभवोत्पन्न, अत्यन्त आनंद के रस से भरा हुआ, आदि अंत और मध्यभाव से रहित ज्ञानमय होकर अर्थात् आनंद में होकर नृत्य करता है।

भाव–विभाव, क्रिया, यह सब कर्मोदय जन्य पुद्गल का ही परिणमन है। आत्मा इनसे सर्वथा भिन्न असंग और निर्लिप्त है। साधक को ऐसा स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण विकार क्रियायें और पदार्थादि कर्मोदय जन्य पौद्गलिक परिणमन है तथा मन, बुद्धि, इन्द्रियां आदि भी कर्मोदय जन्य ही हैं। अत: इनके द्वारा जो चेष्टायें हो रही हैं, वे न तो मुझमें हैं, न मेरी हैं और न मेरे लिए ही हैं। वास्तविक निज स्वरूप ध्रुव, स्वभाव ज्ञायक भाव में कोई चेष्टा है ही नहीं, जिस शरीर में रह रहे हैं उसी में संपूर्ण चेष्टायें हो रही हैं। अपना सत्स्वरूप तो इनसे सर्वथा भिन्न है और यह सब क्रियायें, चेष्टायें, असत्, क्षणभंगुर नाशवान हैं।

साधकों से प्राय: यह बडी भूल होती है कि सुनते–पढते और विचार करते समय वे जिस बात को ठीक सत्य समझते हैं उस पर भी दृढता से स्थित नहीं रहते तथा उसे विशेष महत्व नहीं देते। इस असावधानी के कारण ही वे अपने मार्ग में आगे नहीं बढ पाते। अत: अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रता पूर्वक अग्रसर होने के लिए साधकों को चाहिए कि वे पढ़ने–सुनने और विचार करने पर जब यह जान लें कि शरीर से आत्मा पृथक् है, तब इस बात पर दृढता से स्थिर रहें।

अपनी इस जानकारी को विशेष महत्व देते हुए कभी किसी अवस्था में भी शरीर मैं हूँ, ऐसा न माने, मैं एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा

हूं, ऐसी ही दृढ प्रतीति रखें। यदि कभी शरीर के साथ एकता मालूम पडे तो उसका आदर न करे, उसे महत्व न दे एवं इस बात को सत्य तो माने ही नहीं, केवल विवेक की कमी, के कारण ऐसा मालूम पडता है। अत: उसकी उपेक्षा करने से, भिन्नता का अनुभव हो जाता है। यदि भूल से पुन: शरीर मैं हूँ ऐसा मानता रहता है तो उसे केवल बौद्धिक ज्ञान हो सकता है, जिससे वह अन्य को कह सकता है किन्तु स्वयं को तत्व का अनुभव नहीं होता।

साधक प्रथम भूमिका में शरीरादि को तो अपने से पृथक् मान लेता है किन्तु शरीर एवं इन्द्रियों द्वारा होने वाली खाना-पीना, सोना, देखना-सुनना, बोलना, चलना-फिरना आदि क्रियाओं को तथा मन से होने वाले चिन्तन और बुद्धि से होने वाले निर्णय को अपनी क्रिया मानता रहता है। इधर ध्यान ही नहीं देता कि जब शरीरादि सब पर हैं, ज्ञेय हैं तो फिर इनके द्वारा होने वाली क्रियायें भी तो पर हैं, ज्ञेय हैं, वह स्वयं में कहां हैं ?

शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि के द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियायें पृथक्, भिन्न ज्ञेय ही हैं तथा जीवात्मा स्वयं इनसे सर्वथा निर्लिप्त, असम्बद्ध और पृथक् है।

स्वयं जीवात्मा शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि से अत्यन्त सूक्ष्म और श्रेष्ठ होने के कारण निरपेक्ष दृष्टा है अर्थात् दूसरे किसी की सहायता की अपेक्षा न रखकर स्वयं ही देखने जानने वाला है।

अखंड आनंद का नाथ प्रभु आत्मा है, जो उसे जाने बिना ही गुण-गुणी के विकल्प में मग्न हैं वे व्यवहार में ही मग्न हैं। संसार के पाप भावों में अथवा दया-दान आदि भावों में अटके हुए जीवों की बात तो दूर परंतु लक्षण-लक्ष्य और गुण-गुणी के विकल्पों में भी अटके रहने तक वे व्यवहार में ही मग्न है तथा जो मन में उलझे हुए हैं उन्होंने अभी वस्तु स्वरूप को जाना ही नहीं है।

राग-द्वेष रूप विकार भाव यह सब आत्मा से भिन्न क्षय होने वाले हैं। मोक्षार्थी पुरूष को तो अपने आत्म स्वरूप को जानना और ममल स्वभाव, ज्ञान भाव में रहना यही इष्ट प्रयोजनीय है, आत्मा तो चैतन्य रत्नाकर है। पुण्य-पाप रूप विकारी भावों से भिन्न होकर सर्व प्रथम ज्ञायक सच्चिदानंद प्रभु को जानो।

आत्मा को सदा ही ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य रखना चाहिए। चाहे जैसा प्रसंग आये तो भी ध्रुव स्वभाव को मुख्य रखना। शुभाशुभ परिणाम भले ही आयें पर नित्य ध्रुव स्वभाव का ध्येय रखना, आत्मा को मुख्य रखने पर जो दशा होती

है, वह निर्मल दशा साधन कहलाती है और उसका ध्येय केवलज्ञान करना है और उसका ध्येय पूर्ण आत्मा है। कषाय की मंदता अथवा क्षयोपशम ज्ञान के विकास की मुख्यता होगी तो दृष्टि संयोग पर जायेगी और वहां मन आदि दिखाई देंगे, आत्मा की उर्ध्वता की रूचि और जिज्ञासा हो और वह अनुभव में आये तब व्यक्त प्रगट उर्ध्वता होती है।

क्षणभंगुर संयोग के लक्ष्य से होने वाले परिणाम क्षण में पलट जाते हैं, क्षय हो जाते हैं, विला जाते हैं, पर जब शाश्वत आत्मा का लक्ष्य करें तब परिणाम शुद्ध होते हैं और यह शुद्ध परिणाम शुद्ध रूप से शाश्वत बने रहते हैं । आनंद स्वरूप भगवान आत्मा का अद्भुत आश्चर्यकारी और गहन स्वभाव है। इस स्वभाव का लक्ष्य करना और इस मय ही रहना मुक्ति का मार्ग है।

मन के अंदर ही भगवान पूर्णानंद का नाथ विराजमान है । वह सर्वोत्कृष्ट आश्चर्यकारी है । स्वयं का सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा केवलज्ञान और सिद्ध की पर्याय से भी सर्वोत्कृष्ट है ; क्योंकि अरिहन्त, सिद्ध दशा तो एक समय की पर्याय है और आत्मा तो अनन्त सिद्ध पर्याय जिसमें से प्रगट होती हैं ऐसा द्रव्य है, वह सर्वोत्कृष्ट परमेष्ठी है । अपरिमित, अमर्यादित, ज्ञान दर्शन आदि अनंत शक्तियों का पिंड सर्वोत्कृष्ट आत्मा है। सर्वोत्कृष्ट निज तत्व को जो दृष्टि स्वीकार करती है वह शुद्ध दृष्टि है ।

जो छूट जाती है वह तो तुच्छ वस्तु है । मन, शरीर, वाणी, संयोग, भाव–विभाव यह सब छूट जाने वाले हैं। सब क्षणभंगुर, नाशवान हैं। संयोग का लक्ष्य छोड दो और निर्विकल्प एक रूप शुद्ध तत्व है, उसका आश्रय लो, त्रिकाली ध्रुव स्वभाव सो मैं हूँ, ऐसा आश्रय करो। गुण–गुणी के भेद का भी लक्ष्य छोडकर एक रूप गुणी की दृष्टि करने से समता शांति, आनंद, मिलेगा सब विकल्प–दु:खों का नाश होगा।

एक चैतन्य वस्तु ध्रुव है, उसमें दृष्टि देने से मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा। अभेद वस्तु, ममल स्वभाव जिसमें गुण–गुणी के भेद का भी अभाव है, उसमें लीन होने पर धर्म होगा, मन और रागादि भावों से छूटने का मार्ग मिलेगा।

मन, शरीर, संयोग यह तो क्षणभंगुर हैं, अनंत बार मिले और छूटे हैं। बाहर में जो सर्वस्व माना है यही अज्ञान मिथ्यात्व है, इसे पलट कर अब ऐसा दृढ श्रद्धान, ज्ञान करना कि अनन्त गुण का पिंड आत्मा यही मेरा सर्वस्व है। भगवान पूर्णानंद का नाथ चैतन्य की जगमग ज्योति है, उस रूप परिणमन

हो, वही जीव का जीवन है।

अंतरंग में सदा ही जगमग ज्योति प्रकाशमान, अविनश्वर स्वत: सिद्ध तथा परमार्थ सत् परम पदार्थ, ऐसा भगवान आत्मा ज्ञान स्वभाव है। उसके अवलम्बन से इन्द्रियों को मन को जीतना अर्थात् इनसे अपने को भिन्न जानना और इनसे किसी से भी भयभीत भ्रमित न होना ही इनको जीतना है, वही जितेन्द्रिय है।

जड शरीर, खंड-खंड ज्ञान रूप मन और बुद्धि तथा पांचों इंद्रियों के विषय भूत पदार्थ, इन तीनों का लक्ष्य छोडकर निज आत्मा में एकाग्रता करना, यही मोक्ष गमन का कारण, मुक्ति मार्ग है।

ज्ञानी को यथार्थ द्रव्य दृष्टि प्रगट होती है, वह द्रव्य के आलम्बन द्वारा अंतर- स्वरूप स्थिरता में वृद्धि करता जाता है परन्तु जब तक अपूर्ण दशा है, पूर्ण रूप से शुद्ध स्वरूप में स्थिर नहीं होता वहां उसे वैराग्य भाव होते हैं। संसार, शरीर, भोगों से छूटता है और जन रंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारव से भी छूटता है, अपने ज्ञान-विज्ञान बल से अपनी साधना में रत रहता है ।

प्रश्न- यह जनरंजन राग, कल रंजन दोष, मन रंजन गारव, क्या हैं और इनसे ज्ञानी को कैसा वैराग्य आता है ?

इसके समाधान में सद्गुरू श्रीमद् जिन तारण स्वामी आगे गाथा कहते हैं-

गाथा - ८

वैरागं तिविह उवन्नं, जनरंजन रागभाव गलियं च।
कलरंजन दोस विमुक्कं, मनरंजन गारवेन तिक्तं च॥

शब्दार्थ- (वैरागं) वैराग्य (तिविह) तीन प्रकार, त्रिविधि (उवन्नं) उत्पन्न होता है (जनरंजन) लोगों को खुश करना, प्रसन्न रखना, संसारी अपेक्षा (रागभाव) राग भाव, पर दृष्टि, यही बंध का कारण है (गलियं च) गल जाते हैं (कलरंजन) शरीर का रंजायमानपना, सुखियापना, शरीराशक्ति (दोस) यह दुष्प्रवृत्ति है, द्वेष रूप है (विमुक्कं) छूट जाता है, विमुक्त होना (मनरंजन) मन का रंजायमानपना, मन की इच्छाओं की पूर्ति करना, मनमानी, मायाचारी, (गारवेन) यह गारव है, मद-मान (तिक्तं) त्याग करना, छूट जाना, (च) और ।

विशेषार्थ- आत्मानुभवी ज्ञानी को तीन प्रकार का वैराग्य उत्पन्न हो जाता

है। संसार से जिनकी दृष्टि हट गई है और समस्त कामनायें छूट गई हैं उनका जनरंजन राग भाव गल जाता है। ज्ञानी कलरंजन दोष से विमुक्त हो जाते हैं, शरीर से दृष्टि हटाकर निजात्म आराधना में रत रहते हैं वे साधक मन रंजन गारव का भी त्याग कर हमेशा अपने चिद्रूप धाम, जिन स्वभाव की साधना करते हैं।

जब तक जीव के साथ शरीरादि कर्म संयोग हैं, संसार में है तब तक उसे निश्चय-व्यवहार पूर्वक साधना करनी पडती है, शुद्ध निश्चय नय निज शुद्धात्म स्वरूप साध्य है, यही इष्ट उपादेय है। इस साध्य की साधना का मार्ग निश्चय निज शुद्धात्मानुभूति सहित स्व-पर का यथार्थ निर्णय करते हुए अपने स्वरूप में लीन रहना, यही मुक्ति मार्ग है। इस पर चलने में अनादि अज्ञान जनित निमित्त नैमित्तिक संबंध जीव और कर्म बंधोदय बाधक बनते हैं उनका निराकरण करते, हटाते हुए अंतर शोधन करते हुए ही आगे बढा जाता है।

जीव के अज्ञान जनित मोह, राग, द्वेष भाव, कर्म बंध के कारण हैं, कर्म बंधोदय के निमित्त से जीव के मोह, राग, द्वेष भाव होते हैं, ऐसा निमित्त- नैमित्तिक संबंध है।

१. जनरंजन राग- यह राग भाव है- जनरंजन का मतलब पर जीव, संसार की तरफ दृष्टि होना और उनको खुश करना, प्रभावित करना, रंजायमान करना, उनके द्वारा अपनी प्रभावना प्रसिद्धि चाहना, इच्छा पूर्ति करना, इसके अंतर्गत-कुटुम्ब परिवार समाज, संसार सब आ जाता है। इनसे स्वार्थ संबंध रखना, कुछ चाहना, वह तो बंधन ही है। पर कुछ भी अपेक्षा रखना, यह राग भाव है, यही कर्म बंध का कारण है।

२. कलरंजन दोष- यह दोष भाव है- कलरंजन का मतलब शरीर रंजायमान पना, शरीराशक्ति, सुखियापना, विषय सेवनादि काम भाव सब इसके अंतर्गत आ जाते हैं। यह सब दुष्प्रवृत्ति दोष भाव दुर्गति कराने वाले हैं। शरीर में एकत्वपना तो मिथ्यात्व है पर शरीर में अपनत्व लगाव होना यह दोष है। शरीर पुद्गल परमाणुओं का स्कंध मल, मूत्र, मांस, हड्डी का पिंड अशुचि है। इसका संयोग संबंध ही जीव का बंधन रूप संसार है, शरीर से आसक्ति का हटना ही वीतरागता है।

३. मनरंजन गारव- यह गारव अहं भाव है- मनरंजन का मतलब मन के चक्कर में चकराना, मन का काम संकल्प-विकल्प (आगे पीछे के भाव) करना

है। यह माया मोह से ग्रसित विचारों का प्रवाह है। इसमें रंजायमान होना, लगे रहना यही संसार है। मन-मोहनीय कर्म की पर्याय है। जब तक पर्याय दृष्टि है तब तक मिथ्यादृष्टि है। पर्याय दृष्टि ही गारव भाव, मद, मान को बढाने वाली है। जब तक पर्याय पर दृष्टि है, उसका लक्ष्य है तब तक मोह भाव है। इससे छूटने पर ही स्वरूप रमणता होती है।

ज्ञानी, इन तीनों को अज्ञानजनित विकारी भाव जानकर इधर से अपनी दृष्टि हटा लेते हैं। इनसे हट जाना, भिन्न हो जाना ही इनको छोड देना, त्याग करना है। ज्ञान ही प्रत्याख्यान है। इनमें उलझे रहना लगे रहना ही अज्ञान जनित मोह-राग-द्वेष भाव है। इसी से इनका चक्र चलता है और उसमें फंसा जीव चार गति, चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता है पर कहीं तृप्त नहीं होता।

शरीर, पदार्थ, व्यक्ति, परिस्थिति आदि के संयोगकाल में ही वियोग का अनुभव कर ले तो तत्काल, तत्व साक्षात्कार हो जाये।

जीव स्वयं परमात्मा होने के कारण अमर तो है ही परन्तु नाशवान शरीरादि के साथ एकता मान लेने से उसे अमरता का अनुभव श्रद्धान नहीं होता, अपने को शरीरादि से सर्वथा पृथक् अनुभव करना ही उस अमरता के स्पष्ट अनुभव का सीधा उपाय है।

जो चल रहा है,हो रहा है, जा रहा है, उस जाने वाले के साथ साधक स्वयं अपनी स्थिति मान लेता है, अर्थात् उसमें एकमेक हो जाता है, यही स्वरूप के अनुभव में मुख्य बाधा है।

साधक को चाहिए कि वह अपनी परिवर्तनशील दशा में अपनी (स्वरूप की) स्थिति न माने और न देखे। अपने स्वरूप को ही देखे, स्वरूप तक कभी सृष्टि (कर्मादि) पहुंच नहीं सकती।

वर्तमान स्थिति से लेकर निर्विकल्प स्थिति (साधु, अरिहंत, सिद्ध दशा) तक अवस्था अर्थात् पर्याय है, जो कि परिवर्तन शील है। अपना सत्स्वरूप अवस्था (पर्याय) नहीं, अपितु अवस्थातीत और अवस्था (दशा) का प्रकाशक ज्ञाता है।

परमात्मा में कभी परिवर्तन हुआ नहीं, होता नहीं, होगा नहीं और हो सकता नहीं है अत: अपने परमात्म स्वरूप में नित्य निरन्तर रहना ही अध्यात्म ज्ञान है।

ज्ञानी पुरुष अपने स्व रस से अर्थात् स्वभाव से ही सम्पूर्ण राग रस से दूर

रहने रूप स्वभाव वाला है । इससे कर्म के बीच पडा हुआ है तो भी वह ज्ञानी सम्पूर्ण कर्मों से लिप्त नहीं होता । जीव चैतन्य स्वभाव वाला है और कर्म जड स्वभाव वाला है । रागादि भाव अचेतन अज्ञान भाव हैं अत: चेतन का अचेतन भाव से दूर रहने का ही स्वभाव है फलत: सम्यग्दृष्टि पुरुष जब तक संसार में है तब तक शुभाशुभ कर्मों के उदय को भोगेगा, यही इनको छोडना, त्यागना, जीतना है ।

ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव जो स्व संवेदन प्रत्यक्ष से अपने स्वरूप का दर्शन कर रहा है और उसमें नि:शंक है वह जानता है कि मैं ज्ञान स्वभावी ध्रुव अचल पदार्थ हूँ। मेरा निज का ज्ञान छिनने वाला नहीं है, न नाश होने वाला है । इसके सिवाय कोई दूसरा पदार्थ मेरी कुछ हानि कर सके, मेरी सत्ता में प्रवेश कर सके या मुझ पर अपनी सत्ता जमा सके ऐसा भी नहीं है । मेरा ज्ञान दर्शन स्वभाव सदा है, सदा रहेगा, वह अचल है अर्थात् हीनाधिक भी नहीं हो सकता, न मेरे ज्ञानादि गुण, अज्ञानादि रूप बनेंगे और न मेरी सचेतन पर्याय कभी जड पर्याय बनेगी, तब मुझे भय किस बात का ? यह निश्चय श्रद्धान ज्ञानी को है अत: सदा अपने ज्ञान स्वभाव में निर्भय रहता है ।

प्रश्न– ज्ञानी ज्ञान स्वभाव में सदा कहां रहता है, क्या वह खाता–पीता नहीं है,व्यापार नहीं करता,आता–जाता नहीं है, धन संचय नहीं करता,यदि वह सब करता है तो कैसे सदा ज्ञान स्वभाव में रहता है ?

समाधान– ज्ञानी चतुर्थ गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के सब जीव होते हैं । उससे ऊपर तो अरिहन्त, सिद्ध हैं जो सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हैं उनके संबंध में प्रश्न ही नहीं उठता है । प्रश्न इन गुणस्थानों का है, इनकी चर्चा करेंगे ।

१. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव, मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधी कषाय से रहित है, उसकी श्रद्धा अपने स्वभाव में अपनेपन की हो गई है, पर में उसे परत्व बुद्धि आ गई है ; अत: पर रमण उस जीव के स्वप्न में भी नहीं है । अनन्तानुबंधी चारित्र मोहनीय की प्रकृति है, उसके अनुदय में सम्यक्दृष्टि की पर में आसक्ति छूट गई, यही उसके पर रमण का अभाव है । उस जीव को अपने स्वरूप की दृढ़ श्रद्धा है और उसमें स्थित है, यही उसका चारित्र गुण है । मद मूढ़ता और अनायतन आदि दोषों से रहित सम्यक्दर्शन की इसी स्थिरता को सम्यक्त्वाचरण कहते हैं ।

अप्रत्याख्यान आदि बारह कषायों तथा नौ-नो कषायों के उदय के कारण उस जीव ने अभी व्रत, संयम, धारण नहीं किया है ; अत: वह अव्रती कहा गया है तथापि वह खाना-पीना, आना-जाना, धन संचय करना आदि जो भी क्रियायें करता है, अपने स्वरूप को न भूलकर ही करता है। ज्ञान स्वभावी निज आत्मा की श्रद्धा उसे सदाकाल रहती है, इसी से कहा गया है कि वह सम्यक्दृष्टि जीव सदा ज्ञान स्वभाव में ज्ञायक रहता है।

२. पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक एकदेश व्रती है अत: वह शेष आठ कषायों की विद्यमानता में अपने पद के योग्य वस्तु का संग्रह करता है। पद के योग्य का तात्पर्य यह है कि श्रावक की ग्यारह प्रतिमायें होतीं हैं उनमें क्रमश: पंचेन्द्रियों के विषय तथा तत्पोषक बाह्य पदार्थ छूट जाते हैं अत: जिस प्रतिमा रूप पदवी में जितना त्याग है, उतने के संचय का व सम्हाल का तो प्रश्न ही नहीं है, जितना शेष बचा है, उसकी साज संभाल करता है, तदनुसार पंचेन्द्रिय के विषय भोगता है तथापि उन्हें हेय मानता है अत. जहा रूचि है, रति है, उसी में लीनता है इसलिए उसे भी ज्ञान स्वभाव में लीन रहता है ऐसा कहना सुसंगत है।

३. षष्टम गुणस्थान वाले श्रमणों की तो बात ही निराली है, मोह के साथ-साथ उनके बारह कषायों का भी अभाव हो चुका है अतएव सम्पूर्ण पापो से उनका संबंध छूट गया है। उठने बैठने में, खाते-पीते हुए, सोते हुए भी वे सावधान हैं, अपने में प्रमाद दशा न आवे इसके लिए सन्नद्ध हैं अत: उनका भी ध्यान सदा स्व रमण पर ही रहता है।

आगे सातवें से बारहवें गुणस्थान तक के ज्ञानी तो ध्यान अवस्थित हैं, वे केवल आत्म निष्ठ हैं-

कर्म के फल के प्रति उदासीन ज्ञानी के कर्माश्रव नहीं होता, पूर्वबद्ध कर्मो को उदय में आने से वह रोक नहीं सकता अत: उसकी इच्छा के बिना भी वे उदय में आते हैं तथापि उस उदय स्थिति में ज्ञानी, कर्म के परवश नहीं होता। किन्तु अपने ममल स्वभाव की श्रद्धा के अनुसार अपने ज्ञान स्वभाव में लीन रहता है। वह अपना उपयोग अन्यत्र न जावे अपने में रहे, यही पुरूषार्थ करता है।

इस प्रकार ज्ञान वैराग्य के बल से ज्ञानी अपने आत्म स्वरूप में लीन रहता है और यह जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारव छूट जाते हैं। यह

मोह रागादि भाव छूटने पर उसे अपना ममल स्वभाव प्रगट हो जाता है, अनन्त चतुष्टय मयी केवलज्ञान स्वरूप दिखाई देने लगता है।

इसी बात को सद्गुरू आगे गाथा में स्पष्ट करते हैं -

गाथा-९

दर्शन मोहंध विमुक्कं, रागं दोसं च विषय गलियं च।
ममल सुभाव उवन्नं, नंत चतुस्टय दिस्टि संदर्स ॥

शब्दार्थ- (दर्शन मोहंध) दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व और चारित्र मोहनीय की अनन्तानुबंधी चार कषाय-यह सात प्रकृति के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से सम्यक्दर्शन होता है (विमुक्कं) विमुक्त होने, छूटने पर (रागं दोसं) राग-द्वेष (च) और (विषय) विषय, पंचेन्द्रिय के भोग (गलियं च) गल जाते हैं, छूट जाते हैं (ममल सुभाव) ममल स्वभाव परम पारिणामिक, त्रिकाली ध्रुव स्वभाव (उवन्नं) उदित हो जाता है, अनुभूति में आ जाता है (नंत चतुस्टय) अनंत चतुष्टय-अनंत दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनत वीर्य (दिस्टि) दर्शनोपयोग में (सदर्स) दिखाई देने लगता है।

विशेषार्थ- दर्शन मोहनीय के मिथ्यात्वरूप अंधकार से विमुक्त होने पर इष्ट-अनिष्ट रूप राग-द्वेष और दुखदाई विषयों की वृत्ति गल जाती है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान होने पर राग-द्वेष रूप विषय-कषाय गल जाते हैं। विकारों के गलते ही स्वयं का चिदानंद मयी ममल स्वभाव उदित होता है, अनुभूति में आ जाता है तथा अपना अनंत चतुष्टय धारी केवलज्ञान सर्वज्ञ स्वभाव दिखाई देने लगता है।

आत्मा का मूल स्वरूप तो वीतराग विज्ञानमय है। अंतर शुद्धता हुई कि वह अनुभूति में आने लगता है तथा अरिहंत का स्वरूप वीतराग विज्ञानमय अनंत चतुष्टय धारी होता है। जीव तत्व की अपेक्षा से तो सर्व जीव समान हैं, शक्ति से तो सभी आत्मायें शुद्ध हैं परन्तु रागादि विकार अथवा ज्ञान की हीनता की अपेक्षा से जीव संसारी हैं।

आत्मा शुद्ध चिदानंद मूर्ति है, उसकी रूचि करने और राग तथा व्यवहार की रूचि छोड़ने पर जिस क्षण आत्मा के आनंद का अनुभव होता है वही निश्चय रत्नत्रय स्वरूप ममल स्वभाव है और उसमें अनंत चतुष्टय केवलज्ञान स्वभाव दिखाई देता है।

आत्मा में भेदज्ञान पूर्वक निज का आलम्बन लेने पर जो आत्म धर्म होता है वह अनुभव शुद्ध प्रकाश है, इसी अनुभूति में अनंत चतुष्टय मयी अरिहंत स्वरूप तथा सिद्ध स्वरूप दिखाई देता है।

जीव की शक्ति तो तीनकाल, तीन लोक को जानने की है, उसमें ज्ञान जितने अश मे विकसित हुआ, उसी ज्ञान के विकल्प मे सर्वज्ञ शक्ति प्रगट होती है। जब यह आत्मा स्वयं राग से भिन्न होकर अपने में एकाग्र होता है, तब केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाली भेदज्ञान ज्योति उदित होती है। जो सम्यग्दृष्टि है वे मोह जो मिथ्यात्व उरासे तथा पदवी के अनुसार, राग-द्वेष से भी रहित होते हैं।

संसारी जीव वस्तुत: अनादि से ससार में पाप-पुण्य को भोगता हुआ भ्रमण कर रहा है। कभी यह जीव शुद्ध था फिर अशुद्ध हुआ, ऐसा नहीं है। कार्माण और तेजस शरीरों का संयोग अनादि से है। यद्यपि उनमें नये स्कंध मिलते हैं, पुराने स्कंध छूटते है इसलिये ससारी जीवों का भ्रमण रूप संसार भी अनादि है तथा यदि इसी तरह जीव कर्म बंध करता हुआ भ्रमण करता रहा तो यह संसार इस मोही, अज्ञानी जीव के लिये अनन्त काल तक रहेगा।

मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से यह संसारी जीव अपने आत्मा के सच्चे स्वरूप को भूला रहा है इसलिये कभी सच्चे सुख को नहीं पहिचाना, केवल इन्द्रियों के द्वारा वर्तता हुआ कभी सुख, कभी दु:ख उठाता रहा। इन्द्रिय सुख भी आकुलता का कारण है, तृष्णा वर्धक है इसलिए दु:ख रूप ही है।

मोहनीय कर्म के दो भेद हैं-दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय । दर्शन मोहनीय का एक भेद मिथ्यात्व कर्म है। चारित्र मोहनीय के भेदों में चार अनन्तानुबधी कषाय हैं, इनसे विमुक्त होने, छूटने पर जीव को निज शुद्धात्मानुभूति होती है, इसी को सम्यक्दर्शन कहते हैं। सम्यक्दर्शन होने पर सम्यक्ज्ञान द्वारा वस्तु स्वरूप को जाना जाता है फिर राग-द्वेष विषयादि स्वय छूटने लगते हैं, यही सम्यग्चारित्र का प्रगटपना है, इसी अनुभूति में अपना ममल स्वभाव आता है और अनन्त चतुष्टय मयी सर्वज्ञ स्वभाव केवलज्ञान दिखाई देने लगता है।

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान सहित सम्यक्चारित्र की एक मुहूर्त की स्थिति मे चारों घातिया कर्मो का क्षय होकर अनन्त चतुष्टय स्वरूप अरिहंत पद प्रगट हो जाता है ।

राग और ज्ञान को लक्षण भेद से सर्वथा भिन्न करने पर ही सर्वज्ञ स्वभावी

शुद्ध जीव लक्ष्य में आता है। जैसे जो सम्पूर्ण वीतरागी होते हैं, वे ही सर्वज्ञ हो सकते हैं, वैसे ही जो सर्व प्रकार के रागादि से ज्ञायक की भिन्नता समझें वे ही सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की पहिचान, अनुभव कर सकते हैं, निर्विकल्प दशा में यह ध्यान है, यह ध्येय है, ऐसे विकल्प नहीं रहते। यद्यपि ज्ञानी की सविकल्प दशा में भी दृष्टि तो परमात्म तत्व पर ही होती है तथापि पंच परमेष्ठी, ध्याता, ध्यान, ध्येय इत्यादि सम्बंधी विकल्प भी होते हैं परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर विकल्प जाल टूट जाता है, कोई शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते, ऐसी उग्र निर्विकल्प दशा में ही मुक्ति है, परम शांति, परमानन्द है, यही मार्ग है।

प्रश्न – रत्नत्रयमयी शुद्ध स्वरूप अरिहन्त पद को प्रगट करने के लिए क्या करना पड़ता है ?

सद्गुरू इसके समाधान में आगे गाथा कहते हैं –

गाथा – १०

तीअर्थ सुद्धं दिस्टं, पंचार्थ पंच न्यान परमिस्टी।
पंचाचार सुचरनं, संमत्तं सुद्ध न्यान आचरनं ॥

शब्दार्थ – (तीअर्थ) रत्नत्रय मयी, द्रव्य गुण पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य, ॐकार ह्रियंकार श्रियकार स्वरूप (सुद्ध) शुद्ध स्वभाव (दिस्टं) देखो (पंचार्थ) पाच अर्थ–उत्पन्न अर्थ, हितकार अर्थ, सहकार अर्थ, जान (ज्ञान) अर्थ, पय (पद) अर्थ मयी, अक्षय स्वभाव (पंच न्यान) पांच ज्ञान – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान (परमिस्टी) पंच परमेष्ठी – अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु (पंचाचार) पांच आचार – दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार (सुचरनं) सम्यक् आचरण करो (संमत्तं) सम्यक्त्व से (सुद्ध) शुद्ध (न्यान) ज्ञान (आचरनं) आचरण करो, लीन रहो, ग्रहण करो, धारण करो।

विशेषार्थ– हे आत्मन्! रत्नत्रय मयी, द्रव्य गुण पर्याय से शुद्ध, उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त, ॐकार ह्रियंकार श्रियंकार मयी, विशुद्ध चिदानन्द स्वरूप अपने शुद्ध स्वभाव को देखो, पांच अर्थ –उत्पन्न अर्थ, हितकार अर्थ, सहकार अर्थ, जान (ज्ञान) अर्थ, पय (पद) अर्थ मयी अक्षय स्वभाव का मनन करो। पांच ज्ञान–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन: पर्ययज्ञान और केवलज्ञान मयी निज स्वभाव की साधना करो। पांच परमेष्ठी–अरिहंत, सिद्ध,आचार्य, उपाध्याय, साधु पद को धारण करो। पंचाचार–दर्शनाचार, ज्ञानाचार,

चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार इन पंचाचारों को ग्रहण करो। पंचाचार का पालन करने वाला आचार्य होता है तथा सम्यक्त्व से शुद्ध, ज्ञानमयी चैतन्य स्वभाव में लीन रहा, इसी से अनन्त चतुष्टयमयी, केवलज्ञान स्वरूप अरिहन्त पद प्रगट होता है।

जिस जीव को आगम, युक्ति, सद्‌गुरू देशना, भेदज्ञान या काललब्धि आदि से जैसे भी हो, निज शुद्धात्मानुभूति हो गई, जिसे शरीरादि से भिन्न अपने चैतन्य स्वरूप की अनुभूति हो गई और ज्ञान पूर्वक इस बात की दृढ प्रतीति, सत्श्रद्धान हो गया कि मैं एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा हूँ यह शरीरादि मैं नहीं और यह मेरे नहीं हैं, इस प्रकार आत्मानुभूति का निश्चय श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन की शुद्धि है और स्व पर के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान संशय, विभ्रम, विमोह से रहित सम्यग्ज्ञान है, वह ज्ञानी है।

ऐसा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, पर के एकत्व, अपनत्व, कर्तृत्व से रहित अपने सच्चिदानन्द घन स्वरूप की अनुभूति करता हुआ हमेशा, ज्ञायक ज्ञानानन्द में रहता है, इससे पूर्व कर्म बंधनों की निर्जरा होती है, पर्याय में शुद्धि आती है। ममल स्वभाव की साधना से, साधु पद से अरिहन्त, सिद्ध पद प्रगट होता है।

सद्‌गुरू कहते हैं कि हे आत्मन्! तू पर की ओर दृष्टि करके दीन हुआ, ललचाता फिरता है। तूने कभी अपनी निज निधि का दर्शन नहीं किया। तेरे भीतर तेरी ज्ञान कला ऐसी अपूर्व निधि है, जो तेरे सम्पूर्ण प्रयोजनों को साधने वाली है, वही तेरे लिए चिन्तामणि रत्न के समान शक्तिशाली वस्तु है, जिसकी शक्ति चिन्तन में नहीं आती पर स्वय अनन्त शक्ति उसमें है । पंच ज्ञान मयी, परमेष्ठी पद का धारी, रत्नत्रय स्वरूप अपना शुद्ध आत्मा है, उसका आश्रय कर तेरे सर्व मनोरथ पूर्ण होंगे।

उस आत्मानुभूति के उद्योत होने पर मिथ्यात्व का अंधकार स्वयं लुप्त हो जाता है। ज्ञान की किरणें सर्वत्र उद्योत करने लगती हैं। वस्तु का यथार्थ बोध हो जाता है, पर से राग-द्वेष दूर होकर समता रस का स्वयं उछाल होकर शुद्ध दृष्टि हो जाती है, ऐसा ज्ञानी अपनी आत्मानुभूति की लहरों मे ही मगन रहता है। पराश्रय की दीनता दूर हो जाती है, मोक्ष पथ उसकी दृष्टि में सहज दीखता है। उसका मन संसार की समस्त वासनाओं से दूर हो जाता है और बंध मार्ग छूट जाता है।

जिसकी दृष्टि सुल्टी है, उसका सब कुछ सुल्टा है व जिसकी दृष्टि उल्टी है, उसका सारा ज्ञान उल्टा है। मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग नौ पूर्व का पाठी भी अज्ञानी है।

स्वरूप में लीन होने पर इच्छा टूट जाती है। इच्छा ही राग है। समकिती को छठे गुणस्थान में सकषाय परिणमन रहता है। स्वरूप मे लीन होने पर बुद्धि पूर्वक राग का अभाव होना ही शुद्धोपयोग है और यही सातवां गुणस्थान है। साधु, इसी छठे सातवें गुणस्थान का झूला झूलते हैं और जब क्षपक श्रेणी माडकर समाधिस्थ होते हैं कि एक मुहूर्त में केवलज्ञान प्रगट होता है।

मुनिराज को पंचाचार आदि का पालन करते हुए भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्र दशा निरंतर चलती रहती है। जोर तो सदा अखंड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिक भाव का भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेष भाव है। बाह्य में सच्चे देव, गुरू, धर्म का आश्रय भी छूट जाता है। अपने ध्रुव स्वभाव के आलम्बन से ही निर्मल उत्पाद, ममल स्वभाव प्रगट होता है, इसलिए सब छोडकर एक शुद्धात्म तत्व, अखंड परम पारिणामिक भाव के प्रति दृष्टि कर उसी के ऊपर निरंतर जोर रख, उसी की ओर उपयोग ढले, ऐसा पुरूषार्थ कर, यही शुद्ध स्वभाव, अरिहन्त पद प्रगट होने का उपाय है।

प्रश्न– बाह्य में सच्चे देव, गुरू, धर्म का आश्रय छोड देंगे, तो मुक्ति कैसे होगी, अपना सच्चा देव, गुरू, धर्म कौन है ?

इसके समाधान मे सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं –

गाथा – ११

दर्सन न्यान सुचरनं, देवं च परम देव सुद्धं च।
गुरं च परम गुरूवं, धर्मं च परम धर्म सभावं॥

शब्दार्थ - (दर्सन) सम्यक्दर्शन (न्यान) सम्यक्ज्ञान (सुचरनं) सम्यक्चारित्र (देवं) देव, परमात्मा (च) और (परम देव) सिद्ध परमात्मा (सुद्धं च) शुद्ध स्वभाव, निज शुद्धात्मा (गुरं) गुरू (च) और (परम गुरूवं) अरिहन्त तीर्थकर परमात्मा (धर्मं) धर्म (च) और (परमधर्म) मोक्ष स्वरूप (सभावं) निज स्वभाव ही है।

विशेषार्थ– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र मयी निज आत्मा सदैव शिव स्वरूप है। निज शुद्धात्मा ही निश्चय से देव और परम देव है। निज

अन्तरात्मा गुरू और परम गुरू है तथा अपना शुद्ध स्वभाव ही धर्म और परम धर्म है।

देव, गुरू, धर्म मयी निज शुद्धात्मा सहज चिद्‌विलासी है, जो सदा चैतन्य में विहार करता है। यह कार्य समयसार स्वरूप चिदानंदमयी परमात्मा मैं स्वयं ही हूँ।

सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव ने जिस आत्मा को ध्रुव कहा है, उसका जो जीव अवलम्बन ले उसे उस ध्रुव स्वभाव में से शुद्धता प्रगट होती है। जिसके ज्ञान में तीनकाल और तीन लोक को जानने वाले भगवान बैठे हों, उसके भव होता ही नही है क्योंकि उसका ज्ञान सर्वज्ञ स्वभाव में ढला है। भगवान जिसके हृदय में विराजते हैं, उसका चैतन्य शरीर राग-द्वेष रूपी जंग से रहित हो जाता है। उसने यह जान लिया कि -

मैं आतम शुद्धातम हूं, परमातम सिद्ध समान हूँ।
ज्ञायक ज्ञान स्वभावी चेतन, चिदानंद भगवान हूँ ॥

ऐसे ज्ञानी को जगत की किसी भी वस्तु में रूचि नहीं होती, रस नहीं आता, निज स्वभाव के जितने विकल्प और बाह्य ज्ञेय हैं उन सभी का रस टूट जाता है।

जो परम पारिणामिक भाव रूप है, अखंड चैतन्य ज्योति स्वरूप परम ब्रह्म परमात्मा है, ऐसे निज चैतन्य स्वरूप की जिसे महिमा है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं और उसे दया, दान, आदि का राग, व्यवहार रत्नत्रय का शुभ राग और पर परमात्मा व उनके फल की महिमा नहीं होती।

कोई पर परमात्मा देव, गुरू, धर्म बाहर मे पर का कुछ नहीं कर सकते, प्रत्येक जीव अपने में परिपूर्ण, स्वतंत्र स्वय परमात्मा है। पर के आश्रय से कभी धर्म होता ही नहीं है। जिनेन्द्र परमात्मा की देशना में आया है कि प्रत्येक द्रव्य, स्वतंत्र है, एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, कर भी नही सकता।

आत्मा ज्ञान स्वभावी प्रभु स्वयं परमात्मा है। ऐसा जिसके ज्ञान में आता है, वह ज्ञानी जीव-जीवन में स्थिर हो जाता है। ज्ञायक ध्रुव शुद्ध तत्व है, उसका ज्ञान करना, उसकी प्रतीति करना ही मुक्ति मार्ग है, इसी से आत्मा-परमात्मा होता है। अपने देवत्व स्वरूप का श्रद्धान होना ही धर्म है और धर्म मार्ग पर चलना और स्वरूप की साधना करना ही गुरूपना है। त्रिकाली ध्रुव स्वभाव शुद्धात्मा को पकडने पर ही सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान होता है। किसी बाह्य आडम्बर,

आलम्बन, पराश्रयपने से कभी मुक्ति नहीं होती।

प्रश्न– जब स्वयं ही देव, गुरू, धर्म है, पूर्णमुक्त, शुद्ध सिद्ध है तो फिर संसार में क्यों भटक रहा है और सच्चे देव, गुरू, धर्म की बात क्यों करता है ?

समाधान– जीव का अपना स्वभाव ही धर्म है, परम धर्म है। अपने अंतरात्मा का जागरण ही गुरू और परम गुरू है। पूर्ण शुद्ध स्वभावमय हो जाना ही देव और परम देव है। शुद्ध निश्चयनय से जीव का सत्स्वरूप यही है ; पर अनादि से अपने ऐसे सत्स्वरूप को भूला अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि बना संसार में भटक रहा है। जब भेदज्ञान, तत्व निर्णय द्वारा ऐसे अपने सत्स्वरूप को स्वीकार करता है, तद्रूप रहता है तो स्वयं गुरू और देव हो जाता है।

इसको अपने सत्स्वरूप का बोध कराने में, वीतरागी सच्चे देव, गुरू निमित्त होते हैं। वह धर्म का सत्स्वरूप, जीव को अपना सत्स्वरूप बताते हैं इसलिए निमित्त अपेक्षा व्यवहार से उनका स्मरण, बहुमान, नमस्कार करते हैं परन्तु कोई देव गुरू धर्म किसी को अपने साथ ले जाकर मुक्त नहीं करा सकते। जिस जीव की पात्रता पकती है, काललब्धि आती है, जीव स्वयं जागता है, तब निमित्त मिलते हैं लेकिन उनको ही पकडकर बैठ जायें, उनकी ही पूजा, वन्दना, भक्ति करते रहें तो तीन काल भी मुक्त हो सकते नहीं हैं। अपने स्व स्वरूप को पहिचान कर उसी का आश्रय करने, उसी मे लीन रहने पर देवत्व पद प्रगट होता है, यही जैन दर्शन में जिनेन्द्र परमात्मा की स्वतंत्रता की घोषणा है।

मोक्ष अपनी आत्मा का शुद्ध स्वभाव है तब उसका उपाय भी केवल एक अपने ही शुद्ध आत्मा का ध्यान है।

इन्द्र पद, चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद यह सब कर्म कृत उपाधियां हैं। आत्मा इन सबसे भिन्न, निरंजन प्रभु देव है। सिद्ध के समान आत्मा का ध्यान करना चाहिए। भेदविज्ञान के प्रताप से ध्यान करने वाला, आप ही अपने को परमात्म स्वरूप देखता है। ज्ञानी को अपना आत्मा, रागादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म और शरीरादि नो कर्म से भिन्न दिखता है।

ज्ञानी को जैसे अपना आत्मा सर्व पर भावों और कर्मादि से भिन्न दिखता है। वैसे ही अन्य संसारी प्रत्येक आत्मा, सर्व पर भावों से भिन्न, शुद्ध चैतन्य स्वरूप दिखता है। सर्व ही सिद्ध और संसारी आत्मायें एक समान परम निर्मल, वीतराग जिन स्वरूप, भगवान आत्मा ज्ञानानंद स्वभावी हैं, इस दृष्टि

को सम्यक्त्व, यथार्थ निर्मल, निश्चय शुद्ध दृष्टि कहते हैं। शुद्ध दृष्टि से देखने का अभ्यास करने वाले के भावों में समभाव का साम्राज्य हो जाता है। राग-द्वेष मोह का विकार मिट जाता है। इसी सम भाव में एकाग्र होना ही ध्यान है। यही ध्यान-अग्नि है जिसमें सर्व कर्म बंधन जल जाते हैं और यह आत्मा शीघ्र ही मुक्त शुद्ध सिद्ध स्वयं देव, परम देव हो जाता है।

प्रत्येक जीव में बहिरात्मा (संसारी जीव) अंतरात्मा (गुरू) परमात्मा (देव) तीनों पर्यायो के होने की शक्ति है। अरिहन्त, सिद्ध में परमात्मापने की शक्ति व्यक्त और प्रगट है। शेष दो शक्तियां अप्रगट हैं। इसी तरह संसारी जीवों में जो बहिरात्मा है, उनमें बहिरात्मा की पर्याय तो प्रगट है परन्तु उसी समय अतरात्मा और परमात्मा की पर्याये शक्ति रूप से अप्रगट हैं, यद्यपि तीनों की शक्तियां एक ही साथ हैं।

जो अपने आत्मा को यथार्थ न जाने, न श्रद्धान करे, न अनुभव करे वह बहिरात्मा है। जो अपने आत्मा को सच्चा जैसा का तैसा श्रद्धान करे, जाने अनुभव करे वह अन्तरात्मा है और जो अपने स्वभाव में लीन रहे, वह परमात्मा है।

प्रयोजन यह है कि बहिरात्मापना त्यागने योग्य है क्योंकि इस दशा में अपने आत्मा के स्वरूप का श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं होता है। उपयोग संसारासक्त मलिन होता है तथा आत्मज्ञानी होकर अन्तरात्मा दशा मे परमात्मा का ध्यान करके अर्थात् अपने ही आत्मा को परमात्मा रूप अनुभव करके कर्मों का क्षय करके परमात्मा होना योग्य है। धर्म के साधन में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

प्रश्न- इसकी साधना का उपाय क्या है ?

इसके समाधान में श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज आगे गाथा कहते हैं -

गाथा -१२

जिनं च परम जिनयं, न्यानं पंचामि अषिरं जोयं।
न्यानेन न्यान विर्धं, ममल सुभावेन सिद्धि संपत्तं ॥

शब्दार्थ- (जिन) निज आत्मा, अंतरात्मा (च) और (परम जिनयं) परम जिन- परमात्मा, जिनेन्द्र भगवान (न्यानं) ज्ञान में (पंचामि) पंचम केवलज्ञान (अषिरं) अक्षय स्वभाव, जिसका कभी क्षय नहीं होता (जोयं) संजोओ, देखो

(न्यानेन) ज्ञान से ज्ञानोपयोग ज्ञानाभ्यास से (न्यान) ज्ञान (विर्धं) वृद्धि होगी, बढता है (ममल सुभावेन) ममल स्वभाव में रहने, लीन होने (सिद्धि संपत्तं) सिद्धि की सम्पत्ति, मुक्ति, परमानंद मयी, परमात्मपद, सिद्ध पद प्रगट होता है।

विशेषार्थ- निज आत्मा ही शुद्ध वीतराग जिन स्वरूप है, यही परम जिनेन्द्र त्रिलोकीनाथ देवों का देव है। आत्मा, अविनाशी पंचम ज्ञान मयी केवलज्ञान स्वरूप है। इसी अक्षय ज्ञान स्वभाव को संजोओ, देखो, साधना करो।

निज स्वभाव की साधना करने से, ज्ञानोपयोग से, ज्ञान से ज्ञान की वृद्धि, शुद्धि होती है। इससे अमृतमयी अतीन्द्रिय आनदानुभूति होती है। परम शांत दशा होती है तथा अपने ममल स्वभाव में लीन होने से, परमानंद मयी सिद्धि की सम्पत्ति मुक्ति, अरिहन्त, सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

परमानंद मयी स्वाभाविक गति एक मोक्ष गति, सिद्ध पद ही है, जहां आत्मा पूर्ण शुद्ध, निराला निश्चल रहकर परमानंद का निरंतर भोग करता रहता है। मनसहित प्राणी को अपना हित विचारना चाहिए, यदि आत्मा के ऊपर दया भाव है तो इसे दु:खों के बीच नहीं डालना चाहिए, इसे भव भ्रमण से रहित करना चाहिए और जितना शीघ्र हो सके मोक्ष के निराकुल भाव में पहुंच जाना चाहिए। सद्गुरू इसका उपाय बताते हैं कि अपने ही शुद्ध आत्मा का ध्यान करो। भेदविज्ञान की शक्ति से अपने आत्मा के साथ जिन-जिन का संयोग है, उन उनको आत्मा से भिन्न विचार करके उनका मोह छोड दो।

भेदविज्ञान के बल से ज्ञानी को गर्म पानी में अग्नि की उष्णता और पानी की शीतलता भिन्न-भिन्न दिखती है। भेदविज्ञान से ही, बनी हुई तरकारी में लवण या तरकारी का स्वाद अलग-अलग अनुभव में आता है। भेदविज्ञान से दिखता है कि यह आत्मा, आत्मीक ज्ञान आनंद आदि रस से भरा हुआ स्वयं परम जिन वीतराग अरिहंत सर्वज्ञ स्वरूप जिनेन्द्र परमात्मा, सिद्ध परमात्मा है तथा यह कर्मादि संयोग, रागादि विकारी भाव इससे भिन्न हैं यह इनका कर्ता नहीं है। यह सब रागादि भाव भिन्न हैं और आत्मा भिन्न है।

सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमयी आत्मा ही शुद्ध तत्व है, यही मोक्ष मार्ग है, जो कोई इस अपने आत्मा में अपनी स्थिति करता है, रात-दिन इसी को ध्याता है, इसी का अनुभव करता है इसमें ही निरंतर

बिहार करता है। अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य आत्माओं को, सर्व पुद्गलादि पर द्रव्यों को, सर्व भावों को स्पर्श तक नहीं करता है, वह अवश्य ही नित्य उदय रूप समयसार परमात्मा का अनुभव करता है। यह आत्मानुभव रूप ममल स्वभाव में रहना ही मोक्ष प्राप्ति सिद्धि की सम्पत्ति है। योगी साधक को निरंतर ज्ञानोपयोग करते हुए इसी में लीन रहना चाहिए।

शुद्ध निश्चय से यह भले प्रकार जानकर कि मैं आत्मा शुद्ध द्रव्य हूं, सिद्ध के समान हूँ, अपने ही स्वभाव से परिणमन करने वाला हूँ। रागादि भावों का कर्ता नहीं हूँ, सांसारिक सुख-दु:ख का भोगने वाला नहीं हूँ। मैं केवल अपने ही शुद्ध भाव का कर्ता व शुद्ध आत्मीक आनंद का भोक्ता हूँ। मैं आठ कर्मो से और शरीरादि अन्य सब जीवो से अत्यन्त भिन्न निराला हूं तथा अपने गुणों से अभेद हूँ।

ज्ञानी अपने को ऐसा जानता है कि मैं आत्मा अबद्ध - अस्पृष्ट हूँ। आत्मा न तो कर्मो से बंधा है और न स्पर्शित है। मैं अनन्य हूँ, जैसे कमल जल से निर्लेप है, वैसे ही आत्मा है। यह नारकी, देव, तिर्यंच, मनुष्य नहीं है। जैसे मिट्टी अपने बने, बर्तनों में मिट्टी ही है, ऐसे ही आत्मा-चैतन्य मयी त्रिकाल शाश्वत है। मैं नियत या निश्चल हूँ, जैसे पवन के झकोरे के बिना समुद्र निश्चल रहता है, वैसे ही यह आत्मा कर्म के उदय के बिना निश्चल है, मैं अविशेष अर्थात् सामान्य हूँ, जैसे-स्वर्ण अपने पीत, भारी, चिकने आदि गुणों से अभेद या सामान्य एक रूप है। मैं असंयुक्त हूँ, जैसे- पानी स्वभाव से गर्म नहीं है, ठंडा है, वैसे ही यह आत्मा स्वभाव से परम वीतराग है, रागी-द्वेषी, मोही नहीं है।

शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि पर से भिन्न आत्मा को देखने की होती है, जैसे-वास्तव में मैले पानी के भीतर, पानी मैल से जुदा है निर्मल है, वैसे ही यह आत्मा शरीर से, आठ कर्मों से, रागादि सर्व पर भावों से जुदा है। इस तरह आत्मा का प्रेमी होकर सर्व बाह्य इंद्र, चक्रवर्ती, नारायण आदि लौकिक पदों से तथा संसार, शरीर भोगों से विरक्त उदासीन होकर उनका मोह छोड़कर अपने शुद्धात्म तत्व का मनन और ध्यान करना इसी से सिद्धि की सम्पत्ति, मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- शुद्ध आत्मा का ज्ञान, ध्यान करना यह तो ठीक है पर इन कर्म संयोग, कर्म बंधनों का क्या होगा ?

इसके समाधान में आचार्य श्रीमद् जिन तारण स्वामी आगे गाथा कहते हैं-

गाथा -१३

चिदानंद चिंतवनं, चेयन आनंद सहाव आनंदं ।
कम्म मल पयडि षिपनं, ममल सहावेन अन्मोय संजुत्तं ॥

शब्दार्थ - (चिदानंद) चैतन्य आनन्द, ज्ञान स्वभाव, निज स्वरूप का (चिंतवनं) चिंतवन करो, स्मरण ध्यान करो (चेयन आनंद) चेतन आनन्द, ज्ञानानन्द (सहाव) स्वभाव (आनंदं) आनन्दित रहो (कम्म मल) कर्म मल (पयडि) प्रकृति (षिपनं) क्षय हो जायेंगी (ममल सहावेन) ममल स्वभाव में (अन्मोय) अनुमोदना करो (संजुत्तं) संयुक्त लीन रहो।

विशेषार्थ- शुद्ध चिदानन्द ज्ञान मयी, निज स्वरूप का चिंतवन करो, स्मरण ध्यान करो कि मैं शुद्ध चैतन्य केवलज्ञान स्वभावी सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा हूँ। अपने इसी ज्ञानानन्द स्वभाव में आनन्दित रहो, ममल स्वभाव की साधना करो, लीन रहो। ऐसी निर्विकल्प स्वानुभूति से कर्म मलों की समस्त प्रकृतियाँ क्षय हो जायेंगी। सब कर्म छूट जायेंगे और सहज में सहजानन्द में ही निर्वाण की प्राप्ति हो जावेगी।

आत्मा ही आनन्द का धाम है, उसमे अन्तर्मुख होने से ही सुख है। आत्मा सदा ही आनन्द मय, वीर्य मय, शिवमय परमात्म तत्व है।

जिण सुमिरहु जिण चिंतवहु, जिण झायहु सुमणेण ।
सो झायंतहं परमपऊ, लब्भइ एक्क खणेण ॥१९॥ योगसार

शुद्ध भाव से आत्मा का स्मरण करो, आत्मा का चिंतवन करो, आत्मा का ध्यान करो, ऐसा ध्यान करने से एक क्षण में परम पद प्राप्त हो जाता है।

सुद्धप्पा अरू जिणवरहं, भेउ म किमणि वियाणि ।
मोक्खहं कारण जोईया, णिच्छइ एउ वियाणि ॥२०॥ योगसार

हे योगी ! अपने शुद्धात्मा में और जिनेन्द्र में कोई भी भेद मत समझो, मोक्ष का साधन निश्चयनय से यही है।

जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इह सिद्धंतहु सारू ।
इय जाणे विण जोयईहु, छंडहु माया चारू ॥२१॥ योगसार

जो जिनेन्द्र परमात्मा है, वही यह आत्मा है ऐसा मनन करो, यह सिद्धान्त

का सार है ऐसा जानकर, हे योगीजनों! मायाचार छोडो।

निर्वाण उसे कहते हैं, जहाँ आत्मा सर्व राग-द्वेष, मोहादि दोषों से मुक्त होकर सर्व कर्म कलंक से छूटकर शुद्ध स्वर्ण के समान पूर्ण शुद्ध हो जावे और सदा ही शुद्ध भावों में ही कल्लोल करे, निरन्तर आनन्दामृत का स्वाद लेवे, वह आत्मा का स्वाभाविक पद है। इस निर्वाण का साधन भी अपने ही आत्मा को परमात्म स्वरूप समझ कर उसी का ध्यान करना है।

श्री जिनेन्द्र का ऐसा उपदेश है कि रागी जीव कर्मों से बंधता है और आत्मस्थ वीतराग जीव कर्म से छूटता है। निर्वाण का पद शुभ क्रियाओं के करने से कभी प्राप्त नहीं हो सकता, वह तो आत्म ज्ञान की कला से सहज में ही मिलता है। इसलिए जगत के मुमुक्षुओं का कर्तव्य है कि वे आत्म ज्ञान की कला के बल से सदा ही उसी का यत्न करें। जो कोई पर पदार्थों में अहंकार, ममकार का त्याग करके एकाग्र भाव से अपनी आत्मा का अनुभव करता है, वह पूर्व संचय किये हुये कर्म मलों का नाश करता है तथा नवीन कर्मों का संवर भी करता है।

साधक को बाहरी चारित्र में निमित्त मात्र से संतोष नहीं करना चाहिये। जब आत्मा, आत्म समाधि में, आत्मानुभव मे वर्तन करे। अपने ज्ञानानन्द स्वभाव में रहे तब ही मोक्षमार्ग सधता है क्योंकि जब तक शुद्धात्मा का ध्यान होकर शुद्धोपयोग का अंश प्रगट नहीं होगा तब तक संवर, निर्जरा तत्व प्रगट नहीं होते।

निश्चय से ऐसा समझना चाहिए कि मुक्ति, निर्वाण का मार्ग एक आत्म ध्यान की अग्नि का जलना है। जब आत्मा अपने ही आनन्द में आनन्दित होता है, ममल स्वभाव में लीन रहता है तब कर्म मलों की प्रकृतियाँ अपने आप क्षय होती हैं।

यदि परिणामों में आत्मानुभव नहीं प्रगटे, आत्मीक आनंद न आवे, अपने ज्ञानानन्द स्वभाव में न रहे तो बाहरी चारित्र से शुभ भावों के कारण बंध होगा, संसार बढेगा, मोक्ष का साधन नहीं होगा। जिसने सर्व कर्मों को दूर करके, सर्व देहादि पर द्रव्य का संयोग हटाकर अपने ज्ञान मय आत्मा को पाया है, वह परमात्मा-नित्य है, निरंजन, वीतराग है, ज्ञान मय है, परमानन्द स्वभाव का धारी है। वही शिव है, शान्त है, जिसको वेदों के द्वारा, शास्त्रों के द्वारा, इन्द्रियों के द्वारा जाना नहीं जा सकता, मात्र निर्मल ध्यान में निज स्वानुभूति में ही वह झलकता है। वही अनादि अनन्त अविनाशी शुद्ध आत्मा परमात्मा है।

शुद्धोपयोग ही वास्तव में मोक्ष का कारण है। ममल स्वभाव में रहना, ज्ञानानन्द स्वभाव में रहना, आत्मीक आनन्द में डूबे रहना, सब एक ही बात है, इस दशा में रहने पर ही सारे कर्म बन्ध क्षय होते हैं।

इस तत्व को भले प्रकार श्रद्धान में रखकर अन्तरात्मा मोक्षमार्गी होता है तब उसकी दृष्टि हर समय अपने आत्मा में रमण की रहती है। हमेशा वह अपने चिदानन्द चैतन्य स्वरूप का चिन्तवन करता है तथा अपने आत्मीक आनन्द में आनन्दित रहता है, वह आत्मा की शान्त गंगा में स्नान करना ही धर्म समझता है। इसके अतिरिक्त सर्व ही मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को अपना धर्म न समझ कर बंध का कारण अधर्म समझता है।

ज्ञानी सम्यक्दृष्टि शुद्ध वीतराग भाव से अपने शुद्धात्म स्वरूप ज्ञानानन्द स्वभाव का स्मरण, चिन्तवन, ध्यान करता है। किसी प्रकार की कोई बांछा, चाहना नहीं रखता, उसके भीतर संस:र के सब क्षणिक पदों से पूर्ण वैराग्य है। वह इन्द्र चक्रवर्ती आदि के पदों को भी नहीं चाहता है, न वह इन्द्रियों के तृष्णावर्धक भोगों को चाहता है, न वह अपनी पूजा या प्रसिद्धि चाहता है।

आत्मा शाश्वत है अत: उसकी ज्ञान आनन्द आदि शक्तियाँ भी शाश्वत हैं, उनकी ओर देखने से सम्यक्दर्शन ज्ञान होता है।

आत्म तत्व अनन्त शक्तियों का पिंड है, जिसे उसका आदर नहीं है, परन्तु पुण्य-पाप का आदर है, वह संसार में रुलता है। जब तक ज्ञान में तत्व की अयथार्थता है तब तक तत्व में स्थिरता नहीं होती। ज्ञान की विपरीतता में आत्म एकाग्रता नहीं जम पाती इसलिए कहते हैं कि आत्मा ज्ञानानन्द है, उसकी रूचि करो, आत्मीक आनन्द में लीन रहो, उसका अवलोकन करो, उसी का चिंतवन करो तो सारे कर्म मल क्षय हो जायेंगे। उसकी प्रतीति कर उसमें एकाग्र होने से केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

(१) नि:शंकितअंग - ज्ञानी के भीतर सम्यग्दर्शन के आठ अंग भले प्रकार अंकित रहते हैं। इनका हमेशा चिंतवन मनन करता है। आत्मा के शुद्ध स्वभाव में और जिन परमात्मा में कोई संशय नहीं है। न उसे मरण का, रोगादि का व किसी अकस्मात् का भय है। ‸.ग आत्मा अमूर्तिक, अभेद्य, अछेद्य, अविनाशी है। मेरा कोई कुछ बिगाड नहीं कर सकता। इस तरह स्वरूप में नि:शंक व निर्भय होकर नि:शंकित अंग पालता है।

(२) नि:कांक्षित अंग - ज्ञानी को कर्मों के आधीन क्षणिक, तृष्णावर्द्धक, पाप बंधकारी इन्द्रिय सुखों की रंच मात्र लालसा या आसक्ति नहीं होती, वह

पूर्णपने वैरागी है। केवल अपने अतीन्द्रिय आनन्द का प्यासा है। उस परमानंद के सिवाय किसी प्रकार के अन्य सुख की तथा स्वानुभव के सिवाय अन्य किसी व्यवहार धर्म की व अन्य किसी पद की वांछा नहीं रखता, इस प्रकार नि:कांक्षित अंग को पालता है।

(३) निर्विचिकित्सा अंग – ज्ञानी छहों द्रव्यों को, उनके गुणों को व उनकी होने वाली पर्याय को पहिचानता है। जो स्वाभाविक – वैभाविक रूप चलती है। सर्व जगत की व्यवस्था को नाटक के समान देखता है। किसी को बुरा भला मानने का विचार न करके, घृणा भाव की कालिमा से दूर रहकर व समभाव की भूमि में तिष्ठ कर निर्विचिकित्सा अंग पालता है।

(४) अमूढदृष्टि अंग – वस्तु स्वरूप को ठीक – ठीक जानने वाला ज्ञानी जैसे अपने आत्मा को द्रव्यार्थिक नय व पर्यायार्थिक नय से एक व अनेक रूप देखता है। वैसे ही अन्य जगत की आत्माओं को देखता है, वह किसी बात मे मूढ भाव नहीं रखता। वह धर्म, अधर्म, आकाश, काल चारों द्रव्यो को स्वभाव में सदा परिणमन करते हुए देखता जानता है। पुद्गल की स्वाभाविक व वैभाविक पर्यायों को पुद्गल की मानता है। जीव की स्वाभाविक व वैभाविक, नैमित्तिक पर्यायों को जीव की मानता है। उपादेय एक अपने शुद्ध द्रव्य को ही जानता है। इस तरह ज्ञानी वस्तु स्वरूप का ज्ञाता होकर अमूढदृष्टि अंग पालता है।

(५) उपगूहन अंग – ज्ञानी सर्व रागादि दोषों से परे रहकर, कषाय के मैल को मैल समझ कर उनसे रहित अपने वीतराग स्वभाव के अनुभव में जमकर, अपने भीतर अनन्त शुद्ध गुणों का प्रकाश करता है। दोषों से उपयोग को हटाकर आत्मीक गुणों को अपने में बढाता हुआ उपगूहन अंग को पालता है।

(६) स्थितिकरण अंग – ज्ञानी जानता है कि राग – द्वेष की पवन लगने से मेरा आत्मीक समुद्र चंचल होगा – इसलिए वीतराग भाव में स्थिर होकर ज्ञान चेतना मय होकर आत्मानन्द के स्वाद में तन्मय होता हुआ स्थितिकरण अंग पालता है।

(७) वात्सल्य अंग – ज्ञानी अपने उपयोग को आत्मा की भूमि से बाहर नहीं जाने देता। सर्व जगत की आत्माओं को एक समान शुद्ध व परमानन्द मय देखकर परम शुद्ध प्रेम में पगकर ऐसा प्रेमालु हो जाता है कि सर्व विश्व को एक शांति मय समुद्र बनाकर उस समुद्र में गोते लगाता है। शुद्ध विश्व प्रेम को रखकर वात्सल्य अंग को पालता है।

(८) प्रभावना अंग – ज्ञानी अपने निर्मल उपयोग रूपी रथ में परमात्मा को विराजमान करके, ध्यान के मार्ग में रथ को चलाकर अपने आत्मा की परम शांत महिमा को विस्तार करके प्रभावना अंग को पालता है।

इस प्रकार ज्ञानी शुद्ध भाव से अपने जिन स्वभाव का स्मरण चिंतवन, ध्यान करता हुआ निर्वाण के अचल नगर ध्रुवधाम को प्रयाण करता है।

इसी प्रकार जो भव्य जीव अपने चिदानन्द चैतन्य शुद्ध ज्ञान भाव का चिन्तवन करते हैं, अपने ज्ञानानन्द स्वभाव में आनन्दित रहते हैं, ममल स्वभाव में लीन होते हैं, वह संसारी कर्म संयोग, व्याधि, जरा, मरण की वेदना की दाह से छूटकर शिव रूप मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न– ऐसे अपने आत्म स्वरूप का चिन्तवन मनन तो करते हैं, ध्यान भी लगाते हैं पर यह पर पर्याय और शल्यें तो लगी रहती हैं, इसके लिये क्या करें ?

इसके समाधान में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी गाथा कहते हैं –

गाथा –१४

अप्पा परू पिच्छन्तो, पर पर्जाव सल्य मुक्तानं।
न्यान सहावं सुद्धं, सुद्धं चरनस्य अन्मोय संजुत्तं॥

शब्दार्थ – (अप्पा) आत्मा (परू)पर पदार्थ, समस्त जड–चेतन द्रव्य (पिच्छन्तो) पहिचानने से, वस्तु स्वरूप जानने से (पर) शरीरादि पदार्थ (पर्जाव) भीतर चलने वाले भाव (सल्य) कांटा, एक प्रकार का विकल्प जो रह–रह कर चुभता है। इसके तीन भेद होते हैं – मिथ्या, माया, निदान (मुक्तानं) मुक्त हो जाते हैं, छूट जाते हैं (न्यान सहावं) ज्ञान स्वभाव (सुद्धं) शुद्ध है (सुद्धं चरनस्य) शुद्ध चारित्र को, सम्यग्चारित्र को (अन्मोय) अंगीकार, स्वीकार, अनुमोदना (सजुत्तं) लीन रहो, संयुक्त होओ।

विशेषार्थ – मैं आत्मा, समस्त पर पदार्थो से त्रिकाल भिन्न हूँ, इस प्रकार आत्मा को और पर को अर्थात् समस्त जड चेतन पदार्थों को भिन्न पहिचानने से पर पर्यायें विभाव–भाव रूप शल्यें आदि समस्त दोष छूट जाते हैं, फिर यह होते ही नहीं हैं, रहते ही नहीं हैं।

अपना ज्ञान स्वभाव कर्मोदायिक विकारों से रहित सदैव शुद्ध है, इसी सत्स्वरूप में लीन रहो, यही शुद्ध चारित्र है, इसे अंगीकार करो।

जो कोई शरीरादि से उदास हो, राग द्वेष से रहित, ममकार से परे हो, सर्व

लौकिक व धार्मिक आरम्भ से रहित हो, केवल एक अपने आत्मा के स्वभाव को भले प्रकार जानता है, वह पर पर्याय शल्यों से मुक्त हो जाता है।

जो अपने ही आत्म द्रव्य में लीन है, वही साधु या श्रावक सम्यग्दृष्टि है, वही साधक, दुष्ट कर्मों को क्षय करता है। अपने आत्मा के स्वभाव से अन्य सर्व चेतन या अचेतन या मिश्र द्रव्य पर द्रव्य हैं। ऐसा यथार्थ वस्तु स्वरूप जिनवाणी में जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है। आठों कर्मों से रहित, अनुपम ज्ञान शरीरी, नित्य शुद्ध अपना आत्मा ही स्व द्रव्य है, ऐसा जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है जो अपने शुद्ध आत्मा को ध्याते हैं, पर द्रव्यों से अपने उपयोग को हटाते हैं, शुद्ध चारित्र को पालते हैं, ज्ञान मार्ग पर भले प्रकार चलते हैं, वे ही निर्वाण को पाते हैं।

साधक को पहले यह उचित है कि आत्मा के स्वभाव और विभाव को जाने, इसका ज्ञान, यथार्थ निर्णय जिनवाणी या सद्गुरू द्वारा कर लेवे। आत्मा आप ही अपने भावों को कर्ता है, स्वभाव से यह शुद्ध भाव का ही कर्ता है। यह आत्म द्रव्य परिणमन शील है। यह स्फटिक मणि के समान है। स्फटिक मणि के नीचे रंग का संयोग हो तो वह उस रूप लाल, काला, पीला झलकती है। इसी तरह इस आत्मा में कर्मो के उदय के निमित्त से विभाव रूप या औपाधिक अशुद्ध भाव रूप परिणमन की शक्ति है। यदि कर्म के उदय का निमित्त न हो तो यह अपने निर्मल शुद्ध भाव में ही परिणमन करता है। मोहनीय कर्म के उदय से विभाव-भाव होते हैं, इसी से यह पर पर्याय, शल्यें पेरती हैं।

पुण्य या पाप कर्म के उदय शुभ व अशुभ योगों से अपने आत्मा को आत्मा के द्वारा रोककर, जो आत्मा अन्य पर द्रव्यो की इच्छा से विरक्त हो, सर्व परिग्रह की इच्छा से रहित हो, दर्शन, ज्ञानमयी आत्मा में स्थिर बैठकर आप से अपने को ही ध्याता है। भाव कर्म, द्रव्य कर्म, नो कर्म को रंचमात्र भी स्पर्श नहीं करता, केवल एक शुद्ध भाव का ही अनुभव करता है। शुद्ध ज्ञान स्वभाव में एकाग्र होता है यही शुद्ध सम्यग्चारित्र है, जिसको अंगीकार करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

निश्चय से परम तत्व एक आत्मा है। यही अपने स्वभाव में एक ही काल परिणमन करने से व जानने से समय है। यही एक ज्ञानमय होने से शुद्ध है। यही स्वतंत्र चैतन्य मय होने से केवली है। यही मनन मात्र होने से मुनि है। यही ज्ञानमय होने से ज्ञानी है, जो साधक ऐसे अपने ही आत्मा के स्वभाव में स्थिर होते हैं, आत्मस्थ होते हैं, उनके पर पर्याय

शल्य आदि सब छूट जाते हैं ।

मन, वचन, काय, पुद्गलकृत विकार व कर्म के उदय से होने वाली क्रियायें यह सब पर हैं । मिथ्यादृष्टि जीव–ममकार व अहंकार के दोषों में लिप्त रहता है । शरीर, धन, परिवार, देश, ग्रामादि पदार्थ जो सदा ही अपने आत्मा से जुदा हैं, जिनका संयोग कर्म के उदय से हुआ है, उनको अपना मानना ममकार है । जैसे – यह शरीर मेरा है, इससे ही पर पर्याय से सम्बन्ध जुडता है तथा जो कर्म के उदय से होने वाले रागादि भाव, निश्चय से आत्मा से भिन्न हैं, उन रूप ही अपने को रागी – द्वेषी मानना अहंकार है और इसी से शल्य विकल्प होते हैं ।

शरीरादि सयोग अपनी आत्मा से भिन्न कहे हैं, वे कभी आत्मा नहीं हो सकते तथा आत्मा उन रूप नहीं हो सकता, वे कभी आत्मा के नहीं हो सकते । आत्मा सर्व रागादि भाव से रहित परम शुद्ध है, इस तरह आत्मा को केवल आत्मा रूप टंकोत्कीर्ण, ज्ञाता दृष्टा, परमानन्द मय समझ कर उसी में रमण करना, इससे सब पर संयोग, पर्यायी परिणमन और शल्य आदि विभाव–भाव अपने आप छूट जाते हैं ।

आत्मा आप ही से आपमें क्रीडा करता हुआ, शनै:शनै: शुद्ध होता हुआ परमात्मा हो जाता है । जितनी मन, वचन, काय की शुभ–अशुभ क्रियायें हैं वे सब पर हैं, आत्मा नहीं हैं । चौदह गुणस्थान की सीढियां भी आत्मा का निज स्वभाव नही है । आत्मा परम पारिणामिक एक जीवत्व भाव का धनी है, जिसका प्रकाश कर्म रहित सिद्ध गति में होता है । आत्मा का स्वभाव ज्ञानानंद ज्ञान मय है, उस स्वभाव की प्राप्ति को ही मोक्ष कहते हैं ।

जो कोई शरीरादि से भिन्न इस प्रकार के ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आत्मा को नहीं जानता, वह उत्कृष्ट तप तपते हुए भी निर्वाण को नहीं पाता है । जो कोई इस भयानक संसार सागर से पार होना चाहे, कर्म ईंधन को जलाना चाहे तो उसे अपने शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहिए । जीव से अजीव लक्षण से ही भिन्न हैं, इसलिए ज्ञानी जीव अपने को सर्वरागादि से व शरीरादि से भिन्न ज्ञान मय, प्रकाश मय एक रूप अनुभव करता है । वह जानता है कि मैं शुद्ध द्रव्य हूँ । मेरा स्वभाव परम शुद्ध निरंजन, निर्विकार, अमूर्तिक, पूर्ण ज्ञानमयी, ज्ञान स्वभावी है । मेरे साथ पुद्गल संयोग है पर यह मेरा रूप नहीं है । मैं निश्चय से पुद्गल से व पुद्गलकृत सर्व रागादि विकारों से भिन्न हूँ ।

जो यह जानेगा कि मैं रोगी हूँ तथा रोग का कारण यह है, वही रोग के कारणों से बचेगा व विद्यमान रोग के निवारण के लिये औषधि का सेवन करेगा इसलिए गाथा में कहा है कि जीव-अजीव के भेद का ज्ञान करने से पर-पर्याय शल्यों से छूट जाते हैं।

''अप्पा परू पिच्छन्तो'' आत्मा को और पर को भिन्न-भिन्न पहिचानने से पर पर्याय, शल्य आदि समस्त दोष छूट जाते हैं। आत्मा को जब निश्चय नय से तथा पुद्गल को उसके स्वभाव से देखा जावे, तब देखने वाले के सामने अकेला एक आत्मा सर्व पर के संयोग रहित खडा हो जायेगा। वहाँ न तो आठों कर्म दिखेंगे, न शरीरादि नो कर्म दिखेंगे, न राग-द्वेषादि भाव दिखेंगे, सिद्ध परमात्मा के समान हर एक आत्मा दिखेगा। यह आत्मा वास्तव में अनुभव में सबसे भिन्न अकेला है तथापि समझने के लिये कुछ विशेष गुणों के द्वारा अचेतन द्रव्यों से भिन्न करके बताया है। जैसे -

(१) ज्ञान - जिस गुण के द्वारा यह आत्मा दीपक के समान आपको व सर्व जानने योग्य द्रव्यों की गुण पर्यायों को एक साथ क्रम रहित जानता है, इसी को केवलज्ञान स्वभाव कहते हैं। इन्द्रियों की व मन की सहायता के बिना होने से इसे सकल प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है। यह ज्ञान आवरण रहित सूर्य की भांति प्रकाशता है। इसी के द्वारा अन्य गुणों का प्रतिभास होता है, इसी को सर्वज्ञपना कहते हैं। ऐसा हर एक आत्मा स्वभाव से सर्वज्ञ है।

(२) दर्शन - जिस गुण के द्वारा सर्व पदार्थों के सामान्य स्वभाव को एक साथ देखा जा सके, वह केवलदर्शन स्वभाव है। वस्तु सामान्य विशेष रूप है। सामान्य अश को ग्रहण करने वाला दर्शन है और विशेष को ग्रहण करने वाला ज्ञान है।

(३) सुख - जिस गुण के द्वारा परम निराकुल अद्वितीय आनन्दामृत का निरन्तर स्वाद लिया जाये। हर एक आत्मा अनंत सुख का सागर है, वहाँ कोई सांसारिक नाशवंत पर के द्वारा होने वाला सुख व ज्ञान नहीं है। स्वयं, स्वयं में परिपूर्ण है। जैसे - लवण की डली खार रस से और मिश्री की डली मिष्ट रस से परिपूर्ण है, वैसे ही हर एक आत्मा परमानन्द से परिपूर्ण है।

(४) वीर्य - जिस शक्ति के द्वारा अपने अनन्त गुणों का अनन्त काल तक भोग या उपभोग करते हुए खेद व थकावट न हो, निरन्तर सहज ही शांत रस में परिणमन हो, अपने भीतर किसी बाधा का प्रवेश न हो, ऐसा हर एक आत्मा अनन्त वीर्य का धनी है। पुद्गल में भी शक्ति है परन्तु आत्मा की

शक्ति उससे अनन्त गुणी है क्योंकि कर्मों का क्षय करके परमात्म पद आत्म वीर्य से ही होता है।

(५) चेतनत्व – चेतनपना, अनुभवपना, अपने ज्ञान स्वभाव का निरंतर अनुभव करना। कर्म का, कर्म फल का अनुभव नहीं करना। संसारी आत्मा अज्ञान दशा में रागी–द्वेषी होते हैं अतएव राग–द्वेष पूर्वक शुभ और अशुभ कार्य करने में तन्मय रहते हैं या कर्म के फलों को भोगते हुए सुख–दु:ख में तन्मय हो जाते हैं। कर्म रहित शुद्ध आत्मा में मात्र एक ज्ञान चेतना है, ज्ञानानन्द का ही अनुभव है।

(६) अमूर्तत्व – यह आत्मा यद्यपि असंख्यात प्रदेशी, एक अखंड द्रव्य है तथापि यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित अमूर्तिक है। इन्द्रियों के द्वारा देखा नहीं जा सकता। आकाश के समान निर्मल आकारधारी ज्ञानाकार है।

इन विशेष गुणों से यह आत्मा अचेतन पर द्रव्यों से भिन्न झलकता है। आत्मा, स्वभाव से परम वीतराग शांत, निर्विकार है। अपनी ही परिणति का कर्ता या भोक्ता है। पर का कर्ता – भोक्ता नहीं है। सब आत्मा स्वभाव से परम शुद्ध परमात्मा, परम समदर्शी हैं परन्तु सब आत्मा अपने–अपने में स्वतंत्र हैं, एक आत्मा का दूसरे आत्मा से कोई संबंध नहीं है।

इस प्रकार अपने ज्ञान स्वभाव में रहना, यही सम्यक्चारित्र है, ध्यान है, भाव संवर, भाव निर्जरा, भाव मोक्ष है। यही कर्म क्षयकारी भाव है। इसी से पर पर्याय का संयोग, शल्यें आदि छूट जाते हैं। योगियों ने परम ऋषियों ने व अरिहंत भगवंतों ने स्वयं अनुभव करके यही बताया है कि मुमुक्षु को सदा ही अपने आत्मा का ऐसा शुद्ध ज्ञान रखना चाहिये।

प्रश्न – आपने एक आत्मा ही आत्मा का ज्ञान ध्यान करना बताया, फिर इसमें बाहर से भी कुछ व्रत, नियम, संयम करना आवश्यक है या नहीं ?

समाधान – अध्यात्म में निश्चय नय की प्रधानता रहती है, व्यवहारनय गौण रहता है, वह साथ चलता है। जैसे – पथिक के चलने पर छाया पीछे चलती है। शुद्धात्मा का अनुभव होने के पश्चात् पात्रता बढने पर, पाँचवें और छठे गुणस्थान में उस प्रकार का बाह्य आचरण होता ही है। उस प्रकार के भाव आये बिना नहीं रहते, पर्याय की शुद्धता की वृद्धि अनुसार कषाय घटते जाने से व्रतादि होते ही हैं। मुक्ति मार्ग में चलने में मोक्ष रूपी कार्य के लिये उपादान कारण अपने ही शुद्धात्म स्वरूप का श्रद्धान, ज्ञान, तद्रूप आचरण ध्यान ही

है। निमित्त कारण - व्यवहार व्रत, संयम, तप आदि हैं। जब शुद्धात्मा अपने में जमेगा, रमेगा तब ही आत्मा कर्म मल से रहित होगी।

साधु के या गृहस्थ के भेष व व्यवहार चारित्र मोक्षमार्ग नहीं हैं। सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता मोक्षमार्ग है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं। जैसे - खेत में बीज बोने पर उसमें पत्ते, फूल-फल अपने आप ऊगते हैं, लगते हैं, लगाना नहीं पडते, इसी प्रकार धर्म मार्ग में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र होने पर भूमिकानुसार पर्याय की शुद्धि होने पर उस प्रकार का आचरण स्वयमेव होता है, न होवे ऐसा होता ही नहीं है। मूल लक्ष्य को छोडकर व्यवहार में फिसलना यह अज्ञान अनादि से चल रहा है।

प्रश्न - जब हम आत्मा का ध्यान करने बैठते हैं, चिंतन मनन करते हैं तब यह अब्रह्म के, विकथा, व्यसन, विषयों के नाना प्रकार के भाव चलते हैं, इनके लिए क्या करें ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं -

गाथा - १५

अबंभं न चवन्तं, विकहा विसनस्य विसय मुक्तं च ।
न्यान सहाव सु समयं, समयं सहकार ममल अन्मोयं ॥

शब्दार्थ - (अबंभं) अब्रह्म, कुशीलादि, शरीर विषयाशक्ति (न) नहीं (चवन्तं) भ्रमित होना, चकराना (विकहा) विकथा - राजकथा, चोर कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा, (विसनस्य) व्यसनों के (विसय) विषय, इन्द्रियों की भोगाकांक्षा, (मुक्त च) मुक्त हो जाते, छूट जाते (न्यान सहाव) ज्ञान स्वभाव (सु समयं) स्व समय, शुद्धात्मा (समयं सहकार) स्व समय शुद्धात्मा का सहकार करो (ममल) ममल स्वभाव, त्रिकाली ध्रुव तत्व (अन्मोयं) लीन रहो, बार-बार चिन्तन मनन, मंथन करो।

विशेषार्थ - शुद्धात्म स्वरूप में लीन होने से अब्रह्म भाव छूट जाता है। इसमें भ्रमित मत होओ, चकराओ मत, चारों प्रकार की विकथायें दूर हो जाती हैं। व्यसन और विषय आदि जितने भी विकार हैं, वे सभी छूट जाते हैं। हे भव्य ! कर्मोदायिक विभावों में भ्रमित मत होओ। समस्त विकारों से भिन्न ज्ञान स्वभावी स्व समय परम पवित्र निज शुद्धात्म स्वरूप को देखो तथा हमेशा अपने ममल स्वभाव की अनुमोदना कर बार-बार चिन्तवन, मनन कर निज शुद्धात्मा में लीन और स्थिर रहो, यही सम्यग्चारित्र है और इससे यह

सब भाव–विभाव विला जाते हैं।

सम्यक्दृष्टि पर द्रव्यों को बुरा नहीं जानता, वह तो अपने राग भाव को ही बुरा मानता है। स्वयं राग भाव को छोडता है तब उसके कारणों का भी त्याग रूप अभाव हो जाता है। वस्तु विचारणा में तो कोई भी पर द्रव्य भला बुरा नहीं है। पर द्रव्य तो आत्मा का एक रूप ज्ञेय है। एक रूपता में अनेक रूपता की कल्पना कर एक द्रव्य को इष्ट तथा अन्य द्रव्य ज्ञेय को अनिष्ट मानना, मिथ्याबुद्धि है।

द्रव्यलिंगी विषय सेवन छोडकर तपश्चरण करे तो भी वह असंयमी है। द्रव्यलिंगी नौ कोटि बाढ ब्रह्मचर्य पालन करे, मन्द कषाय करे परन्तु आत्मा का भान न होने से उसे चतुर्थ व पंचम गुणस्थान वाले ज्ञानी से हीन बतलाया है।

असंयत, देशसंयत सम्यक्दृष्टि के कषायों की प्रवृत्ति तो है परन्तु उसकी श्रद्धा में कोई भी कषाय करने का अभिप्राय नहीं रहता, पर्याय में कषाय होती है पर वह उसे हेय मानता है। द्रव्यलिंगी को तो शुभ कषाय करने का अभिप्राय रहता है और उसे श्रद्धा में भला भी समझता है।

जिनके अन्तर मे भेदज्ञान रूपी कला जागी है। चैतन्य के आनन्द का वेदन हुआ है, ऐसे ज्ञानी धर्मात्मा सहज वैरागी हैं। ऐसे ज्ञानी–विषय कषायों में मगन रहे, यह विपरीतता सम्भवित नही है। जिन जीवों को विषयो में सुख बुद्धि है वे ज्ञानी नहीं हैं। ज्ञानी को तो अन्तर के चैतन्य सुख के अलावा समस्त विषय सुख के प्रति उदासीनता होती है। अभी जिसको अन्तर में भान ही न हो, तत्व संबंधी कुछ भी विवेक न हो, वैराग्य न हो और वह ध्यान में बैठकर अपने को ज्ञानी माने तो वह स्वच्छन्दता का पोषण करता है।

सम्यक्दृष्टि को ज्ञान वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रम में होने पर भी सभी कार्य में स्थित होने पर भी लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं। ज्ञानी के अभिप्राय में, राग है वह जहर है, काला नाग है, उसे आत्मा के सिवाय बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता। जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती, जिसे चैतन्य की महिमा है, उसी का रस है, उसको बाह्य विषयों का रस छूट जाता है।

साधक दशा में शुभाशुभ भाव बीच में आते हैं परन्तु साधक उन्हें छोडता जाता है। चैतन्य की स्वानुभूति रूप खिले हुये नन्दन वन में साधक आत्मा आनन्द मय विहार करता है। जो शुभाशुभ भाव आते हैं वे विरूद्ध स्वभाव

वाले होने के कारण हेय रूप ज्ञात होते हैं रूचते नहीं हैं तथापि उस भूमिका में आये बिना रहते नहीं हैं। उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान वैराग्य शक्ति कोई और ही रहती है। मैं तो ज्ञायक ज्ञान स्वरूपी शुद्धात्म तत्व ही हूँ, नि:शंक ज्ञायक हूँ, विभाव और मैं कभी एक नहीं हुये, मैं ज्ञायक स्वभावी ध्रुव तत्व शुद्धात्मा पृथक् ही हूँ। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये तथापि मैं पृथक् ही हूँ। ऐसा अचल निर्णय होता है, स्वरूप अनुभव में आता है। अनुभव में अत्यंत निशंकता वर्तती है। स्वसमय शुद्धात्मा ममल स्वभाव में विराजता है, लीन होता है, तो यह सब छूट जाते हैं, विला जाते हैं।

जिसे भव भ्रमण से सचमुच छूटना हो, उसे अपने को पर द्रव्य और पर भावों से भिन्न पदार्थ निश्चित करके अपने ममल स्वभाव में लीन रहने का पुरूषार्थ, प्रंयास करना चाहिये। ज्ञायक की अपने ध्रुव धाम में दृष्टि जमने पर, ममल स्वभाव में रहने, उसमें एकाग्रता रूप प्रयत्न करते - करते पर्याय में निर्मलता प्रगट होती जाती है। यह सब अब्रह्म, विकथा, व्यसन, विषयादि के भाव अपने आप छूट जाते हैं विला जाते हैं।

साधक जीव की दृष्टि निरन्तर शुद्धात्म तत्व पर रहती है तथापि साधक जानता सबको है। वह शुद्ध-अशुद्ध पर्यायों को जानता है और उन्हें जानते हुए उनके स्वभाव-विभावपने का, उनके सुख-दु:ख रूप वेदन का, उनके साधक-बाधकपने इत्यादि का विवेक वर्तता है; परन्तु मैं परिपूर्ण शुद्ध ज्ञान स्वरूपी, परम शुद्ध, शुद्धात्मा हूँ इस पर दृष्टि रहती है, इससे यह सारा विभाव परिणमन अपने आप विला जाता है। द्रव्य तो स्वभाव से शुद्ध अनादि अनन्त है जो पलटता नहीं है, बदलता नहीं है, उस पर दृष्टि करने से, उसका ध्यान करने से अपनी विभूति का प्रगट अनुभव होता है। अपनी शक्ति प्रगट होने पर कर्मादि की शक्ति विला जाती है।

साधक द्रव्य कर्म, भाव कर्म, शरीरादि नो कर्म के प्रति उदासीन रहता है क्योंकि शुद्ध स्वरूप का अनुभव होने से उसे शुद्ध चैतन्य ही उपादेय है। जब से ध्रुव स्वभाव शुद्धात्मा को ध्यान में लेकर आत्मअनुभव हुआ, तब से वह जीव पूर्णानन्द स्वरूप को उपादेय जानने से रागादि रूप उठने वाले विकल्पों के प्रति उदासीन है। उन्हें कोई महत्व नहीं देता, उसकी दृष्टि में उनका कोई मूल्य महत्व न होने से वह अपने आप विला जाते हैं।

कर्मोदय परिणामों में, रागादि भावों में, भ्रमना, चकराना, उन्हें अच्छा-बुरा मानना यही अज्ञान बंध का कारण है, इसलिए भेदज्ञान पूर्वक तत्व का निर्णय करके अपने ममल स्वभाव में रहो। अपने शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वभावी शुद्धात्मा को देखो, उसी की साधना अभ्यास करो, तो फिर यह कुछ होगा ही नहीं। ज्ञानी होने के बाद सम्यक्चारित्र का यही पुरूषार्थ है। अपनी शुद्ध दृष्टि रखो, राग भाव छोड़ो, हमेशा अपने त्रिकाली ध्रुव स्वभाव निरावरण चैतन्य स्वरूपमय रहो।

प्रश्न – हम पूरा पुरूषार्थ करते हैं, जोर लगाते हैं, पर यह वेदक सम्यक्त्व दर्शन मोहनीय के भाव अप्रत्याख्यानावरण कषाय और कर्मोदय के भाव स्थिर शान्त नहीं होने देते, इनके लिए क्या करें ?

इसके समाधान में सद्गुरू श्री जिन तारण स्वामी आगे गाथा कहते हैं –

गाथा – १६

जिन वयनं च सहावं, जिनियं मिथ्यात कसाय कम्मानं।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा ममल दर्सए सुद्धं ॥

शब्दार्थ – (जिन वयनं) जिनवाणी, जिनेन्द्र के वचनों का (च) और (सहाव) स्वरूप समझकर, स्वीकार करना, श्रद्धा करना (जिनियं) जीतोगे (मिथ्यात) मिथ्यात्व, दर्शन मोहनीय (कसाय) कषाय (कम्मानं) कर्मों को, कर्मोदय को, कर्म मलों को (अप्पा) आत्मा (सुद्धप्पानं) शुद्धात्मा है (परमप्पा) परमात्मा (ममल) ममल स्वभावी (दर्सए) देखो, देखने से (सुद्धं) शुद्ध होते हैं।

विशेषार्थ – जिनवाणी में जिनेन्द्र परमात्मा ने वस्तु का यथार्थ स्वरूप कहा है कि निज स्वभाव समस्त विकारों से रहित शुद्ध ज्ञानमयी है इसे स्वीकार करो। मैं आत्मा-शुद्धात्मा परमात्मा हूँ। ऐसी आत्मानुभूति ही मुक्ति का कारण है। हे साधक ! निज स्वभाव के आश्रय से ही मिथ्यात्व कर्म और कषायों को जीतोगे तथा परमानन्द मयी परम सुख प्राप्त करोगे इसलिए समस्त कर्म मलों से रहित अपने शुद्ध समयसार स्वरूप ममल स्वभाव को देखो, इसी से पर्याय शुद्ध होती है।

आत्मा को आत्मा के द्वारा ग्रहण कर जो निश्चल होकर आत्मा का अनुभव करता है कि मैं आत्मा – शुद्धात्मा – परमात्मा हूँ वही ममल स्वभाव का दर्शन करता हुआ, कर्म की निर्जरा करता है। जब आत्मा

अपने मूल स्वभाव, ममल स्वभाव को लक्ष्य में लेकर ग्रहण करता है तब सर्व ही पर भावों का त्याग हो जाता है, छूट जाते हैं।

ज्ञानी, जो ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, ऐसे पर भाव, या पर द्रव्य को ग्रहण नहीं करता तथा जो अपने गुण का स्वभाव है जिनको सदा ग्रहण किये हुये है उनका कभी त्याग नहीं करता, किन्तु जो सर्व प्रकार से सर्व को जानता है, वही मैं अपने से आप अनुभव करने योग्य हूँ। जिस आत्मीक स्वरूप से मैं अपनी आत्मा को आत्मा के भीतर, आत्मा के द्वारा, आत्म रूप ही अनुभव करता हूँ, वही मैं हूँ, न पुरूष हूँ, न स्त्री हूँ, न नपुंसक हूँ, न एक हूँ, न दो हूँ, न बहुत हूँ, जिस स्वरूप को न जानकर मैं अनादि काल से सो रहा था, अब उसको जानकर जाग उठा हूँ। वह मैं अतीन्द्रिय, नाम रहित केवल स्व संवेदन योग्य हूँ। ऐसा सत् श्रद्धान कर जो यथार्थ तत्व दृष्टि से अपने को ज्ञान स्वरूपी देखता है, वहीं सर्व रागादि क्षय हो जाते हैं।

जितना कुछ प्रपंच या विकल्प पर द्रव्यों के सम्बन्ध में होता है, वह सब परभाव है। कर्मों के उदय से जो भाव कर्म रागादि शुभ या अशुभ होते हैं व नो कर्म शरीरादि होते हैं, वे सब पर भाव हैं। चौदह गुणस्थान व चौदह मार्गणाओं के भेद तब तक ही संभव हैं, जब कर्म सहित आत्मा को देखा जावे। अकेले मल रहित आत्मा में इनका कोई सम्बंध ही नहीं है। अपने आत्मा के सिवाय अन्य संसारी व सिद्ध आत्मायें तथा सर्व ही पुद्गल परमाणु या स्कन्ध रूप जगत तथा अन्य पर द्रव्य यह सब पर हैं। इनके सम्बंध से होने वाले भाव पर भाव हैं। मन के भीतर होने वाले मानसिक विकल्प भी परभाव हैं। आत्मा निर्विकल्प है, अभेद है, असंग है, निर्लेप है, ऐसा जिनवाणी मे जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है इसका सत्श्रद्धान करो।

भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनो काल सम्बंधी सर्व कर्मो से व विकल्पों से आत्मा को न्यारा देखो। यद्यपि आत्मा अनन्त गुण व पर्यायों का समुदाय है तो भी ध्यान के समय उसे गुण - गुणी भेदों का विचार बन्द कर देना चाहिये। बाह्य निमित्त संयोग भी इसीलिये हटाये जाते हैं कि मन की चचलता मिटे, मन क्षोभित न हो, मन में चिन्तायें घर न करें। निर्ग्रन्थ साधु को ही शुद्धोपयोग की भले प्रकार साधना होती है क्योंकि उसका मन परिग्रह की चिन्ता से व आरम्भ के झंझट से मुक्त है। बिल्कुल एकान्त सेवन, निरोग शरीर, शीत-उष्ण, दंश मशक की बाधा का संहनन, यह सब निमित्त कारण ध्यान में सहयोगी हैं।

आत्मा के ध्यान के लिये एकांत स्थान में ठहरकर शरीर को निश्चल रखना होगा, वचनों का त्याग करना होगा, जगत के प्राणियों से वार्तालाप छोडना होगा, पाठ पढना छोडना होगा, जप करना छोडना होगा, बिल्कुल मौन से रहना होगा, मन का चिन्तवन छोडना होगा। यहाँ तक कि आत्मा के गुणों का विचार भी छोड़ना होगा, जब उपयोग मन, वचन, काय से हटकर केवल अपने ही शुद्धात्मा के भीतर श्रुतज्ञान के बल से या शुद्ध निश्चयनय के प्रताप से जमेगा, तब ही मोक्ष का साधन बनेगा, तब ही स्वानुभव होगा, तब ही वीतरागता होगी, तब ही आत्मा सर्व कर्म मल से रहित होगा।

ध्यान के समय मन के भीतर बहुत से विचार आ जाते हैं। उनमें जो गृहस्थ सम्बंधी बातों के विचार हैं। मोह, माया, राग-द्वेष के विचार हैं, वे महान बाधक हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह की चिन्ता ध्यान में हानिकारक है इसीलिए साधु पांचो पापों को पूर्णपने त्याग कर देते हैं। ध्यान के समय शुभ कार्यों के विचार भी बाधक हैं। यदि कोई व्यवहार चारित्र को नहीं पाले, लौकिक व्यवहार में लगा रहे तो आत्मा के भीतर उपयोग स्थिर नहीं हो सकेगा। इसी कारण सर्व परिग्रह के त्यागी निर्ग्रन्थ मुनि ही उत्तम धर्म ध्यान तथा शुक्ल ध्यान कर सकते हैं।

प्रश्न– आप आत्मा का ही ज्ञान ध्यान करने का पूरा जोर देते हैं और यहाँ व्यवहार चारित्र की भी बात करते हैं, यह क्या बात है ?

समाधान – निश्चय से शुद्धात्मा का भाव ही मोक्ष का मार्ग है। शुद्धोपयोग की भावना, शुद्ध तत्व का अनुभव नहीं करते हुए, जो कुछ व्यवहार चारित्र है वह मोक्षमार्ग नहीं, संसार मार्ग है, पुण्यबंध का कारण है। मिथ्यादृष्टि आत्म ज्ञान शून्य बहिरात्मा बाहर से मुनि भेष धर कर पंच महाव्रत पाले, बारह तप तपे, इन्द्रिय या प्राणी संयम को साधे, अट्ठाईस मूल गुण का पालन करे तो भी वह कर्मों से मुक्ति नहीं पा सकता। ऐसा द्रव्य लिंगी साधु पुण्य बांध कर नौवें ग्रैवेयक तक जाकर अहमिन्द्र हो सकता है परन्तु संसार से पार करने वाले सम्यक्दर्शन के बिना अनन्त संसार में ही भ्रमण करता है। व्यवहार चारित्र को निमित्त मात्र, बाहरी आलम्बन मात्र मानकर व निश्चय चारित्र को उपादान कारण मानकर जो स्वानुभव का अभ्यास करे तो निर्वाण का मार्ग बनता है।

जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि जो जीव आत्मज्ञान के बिना व्रत, संयम, तप, शील का पालन करता है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी ही रहता है। तत्व की

यथार्थ श्रद्धा न रखता हुआ कितना भी शास्त्र पढे, उसका पढना गुणकारी नहीं है। जो शरीरादि की ममता रहित हो, मान कषाय से रहित हो, आत्मा को आत्मा में लीन रखे वही भाव लिंगी साधु होता है।

आत्मज्ञान, आत्मध्यान, निश्चयचारित्र का मार्ग सूक्ष्म है, वह निकट भव्य जीव की पकड में आता है। व्यवहार चारित्र का मार्ग स्थूल है, वह सहज में पकड में आ जाता है। व्यवहार चारित्र साधन है, साध्य नहीं है। भूल यह हो जाती है कि साध्य का लक्ष्य न होने से साधन को ही साध्य मान लिया जाता है, यही जीव आत्मा के साथ बहुत बडा धोखा है। इससे सावधान सतर्क रहते हुए साधना करना, यही अपने लिये हितकारी है।

जैसा वस्तु स्वरूप जिनवाणी में जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है, वैसा ही सत्श्रद्धान कर तद्रूप आचरण करने से सारे कर्म क्षय हो जाते हैं। सर्वज्ञ की सर्वज्ञता स्वीकार कर लेना ही मिथ्यात्व, कषाय, कर्मों को जीतना है। जब केवलज्ञान में अपना स्वरूप ''शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्म तत्वं'' अनन्त चतुष्टय धारी, रत्नत्रयमयी स्वयं आत्मा, शुद्धात्मा परमात्मा है, ममल स्वभावी है, ध्रुव तत्व निरावरण चैतन्य ज्योति ज्ञायक ज्ञान स्वरूपी चिदानन्द भगवान आत्मा है और पर्याय एक समय की क्षणभंगुर नाशवान है। जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है। अपने में कोई भाव विभावादि हैं ही नही, शुद्ध परम पारिणामिक भाव ही है ; फिर क्या हो रहा है ? क्या होता है ? क्या आता है ? क्या जाता है ?उसको देखने की जरूरत ही क्या है ? देखने जानने में आता है तो ज्ञायक रहो, इन्हें कोई महत्व मत दो, परवाह मत करो, भयभीत मत होओ, तभी इन मिथ्यात्वादि कषाय कर्मोदय को जीतोगे। मैं आत्मा, शुद्धात्मा, परमात्मा हूँ, इसका निरन्तर स्मरण ध्यान रखो। यही कर्मादि को जीतना है। यह अपने आप गल जाते, विला जाते हैं। वैसे भी इनका कोई अस्तित्व नही है। सब असत् अनृत पर्याय है।

जगत की सत्ता, कर्मो का अस्तित्व है ही क्या ? सब भ्रम है, भ्रान्ति है। अपने अज्ञान के कारण वह सिर पर चढा है। जब वस्तु स्वरूप जान लिया, भेदज्ञान - तत्व निर्णय कर लिया, जिनेन्द्र के वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं, यह स्वीकार कर लिया फिर क्या है ? हर दशा, हर परिस्थिति में निर्विकारी न्यारे ज्ञायक रहो, सहजानन्द में रहते हुए अपनी साधना करो, पुरूषार्थ को सक्रिय रखो। विवेक जाग्रत रखो और स्वयं निर्विकल्प निजानन्द में अपने ध्रुव धाम में डटे रहो। अब क्या होता है, क्या नहीं होता ? इसकी तरफ

देखना ही नहीं है । जब एक-एक समय का, एक-एक परमाणु का, एक-एक पर्याय का और जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है तो अब अपने में भी इतने ही दृढ, अटल, अभय, अडोल, अकम्प, स्वस्थ मस्त रहो, यह वेदक सम्यक्त्व अप्रत्याख्यानावरण कषाय कर्मोदय की कोई परवाह नहीं करना ही इनको जीतना है। मैं आत्मा, शुद्धात्मा, परमात्मा हूँ, सिद्ध स्वरूपी, ममल स्वभावी चिदानन्द चैतन्य ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, इसकी सिंह गर्जना करो । सिद्धोहं, सिद्धरूपोहं का जयघोष करो और अपने आत्मीक आनन्द में आनन्दित रहो । अब किसी पर्याय से डरते झपकते क्यों हो ? कोई अपेक्षा-उपेक्षा मत रखो, अच्छा बुरा मत मानो । अपने में निस्पृह, निर्द्वन्द मस्त रहो तभी जीतोगे, जय-जयकार मचेगी ।

प्रश्न - यह कर्मोदय को देखने पर इष्ट - अनिष्टपना लगता है, भयभीतपना भी आ जाता है, इन कर्मों से कैसे छुटकारा होवे, इसका उपाय बताइये ?

इसके समाधान मे श्री गुरूदेव आगे गाथा कहते हैं -

गाथा-१७

जिन दिस्टि इस्टि संसुद्धं, इस्टं संजोय तिक्त अनिस्टं ।
इस्टं च इस्ट रूवं, ममल सहावेन कम्म संषिपनं ॥

शब्दार्थ - (जिन दिस्टि) अपने जिन स्वभाव पर दृष्टि रखो (इस्टि) यही इस्ट है (संसुद्धं) स्वयं का शुद्धात्म स्वरूप (इस्टं) इस्ट को (संजोय) संजोने, साधना करने, [illegible] रहने (तिक्त अनिस्टं) कर्मोदय जन्य मोह, राग-द्वेषादि भाव सब अनिष्ट छूट जायेंगे (इस्टं) इष्ट, श्रेष्ठ (च) और (इस्ट रूवं) अपना स्वरूप ही इष्ट है (ममल सहावेन) ममल स्वभाव में लीन रहने, ममल स्वभाव के द्वारा (कम्म संषिपनं) सारे कर्म क्षय हो जायेंगे ।

विशेषार्थ - हे आत्मन् ! सदैव अपने जिन स्वभाव पर दृष्टि रखो, वीतराग मयी निज शुद्धात्म स्वरूप ही अपना इष्ट है । अपने इष्ट सत्स्वरूप को संजोने, साधना करने से मोह-रागादि समस्त अनिष्टकारी भाव छूट जायेंगे तथा श्रेष्ठ इष्ट और प्रयोजनीय चैतन्यमयी शुद्ध स्वरूप ममल स्वभाव में लीन होने से सारे दुखदायी कर्म भी क्षय हो जायेंगे ।

अपना जिन स्वभाव भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजमान है, यही सर्वोत्कृष्ट है । स्वयं का सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा, सिद्ध की पर्याय से

भी सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि सिद्ध दशा तो एक समय की पर्याय है और आत्मा तो अनन्त सिद्ध पर्याय जिसमें से प्रगट होती हैं ऐसा द्रव्य है, यह सर्वोत्कृष्ट है। अपरिमित, अमर्यादित, ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त शक्तियों का पिंड सर्वोत्कृष्ट आत्मा है। सर्वोत्कृष्ट वस्तु को जो दृष्टि स्वीकार करे, वह शुद्ध दृष्टि है।

जो छूट जाती है, वह तो तुच्छ वस्तु है। उसे छोडते तुझे डर क्यों लगता है? ये तो तुच्छ वस्तुयें हैं। जो आश्चर्यकारी सर्वोत्कृष्ट प्रभु है उसका आश्रय ले तो तुझे आनन्द झरेगा। चिन्तामणि रत्न कहो, कल्पवृक्ष कहो, कामधेनू कहो, वह आत्मा स्वयं ही है। जब-जब उसका आश्रय करेगा, तब-तब आनन्द का आस्वादन करेगा।

संयोग का लक्ष्य छोड दे और निर्विकल्प एक रूप वस्तु है उसका आश्रय ले। गुण-गुणी का भी लक्ष्य छोडकर एक रूप गुणी की दृष्टि कर, तुझे समता होगी, शांति होगी, आनन्द मिलेगा, सब अनिष्ट पर्याय, दु:ख का नाश होगा, कर्म क्षय होंगे। एक चैतन्य वस्तु ध्रुव है, उसमें दृष्टि देने से तुझे मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा।

बाहर पर में, पर्याय में उत्साहित मत हो, यह सब तो क्षणभंगुर नाशवान है और अनन्त बार मिला है। बाहर में जो इष्ट और सर्वस्व माना है, वहाँ से दृष्टि पलट कर ऐसा मान कि अनन्त गुण का पिंड आत्मा, यही इष्ट, परम इष्ट, सर्वोत्कृष्ट मेरा सर्वस्व है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, चैतन्य की जगमग ज्योनि है, उस रूप परिणमन हो, अपने ममल स्वभाव में लीन रहे तो सब कर्म क्षय हो जायेंगे।

पर पर्याय राग भाव मेरा है, कर्म बन्धोदय मेरा है, ऐसी पकड किये है इसलिये स्वयं जकडा है, पकडा है परंतु चैतन्य स्वरूप आत्मा की पकड करे तो संसार रूपी मगरमच्छ के मुँह में से छूट सकता है। प्रभु! तुझमें शक्ति है, तू पर से भिन्न हो सकता है। पर से भेदज्ञान कर संसार रूपी मगरमच्छ कर्मादिक के मुख में से छूट सकता है।

यह आत्मा प्रत्यक्ष है। जैसे सामने कोई चीज प्रत्यक्ष होती है, वैसे ही यह आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव गोचर है। सद्गुरू कहते हैं, इसे देख, यही इष्ट है। यह शरीर, कुटुम्ब, धन, वैभव, मकान आदि देखता है। यह सब तो तेरे से अत्यन्त भिन्न पर द्रव्य हैं। इससे भिन्न यह आत्मा, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है। इसे देखने से मोह, रागादि, अनिष्ट अपने आप छूट जायेंगे और ममल स्वभाव

में रहने से सब कर्म क्षय हो जायेंगे और इसकी रूचि कर, लगन लगा, यही अपना इष्ट है।

तू संसार के प्रसंगों को याद किया करता है। अरे ! तू स्वयं पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण रत्नों से भरा हुआ, महाप्रभु सदा ऐसा का ऐसा ही रहता है। इसे याद कर – अपने में लगन लगा, अपना स्मरण ध्यान कर। स्त्री-पुत्र आदि को इस प्रकार प्रसन्न रखा था और इस प्रकार के भोग-विलास में मौज मजा किया था, ऐसा याद करता है। यह सब दु:ख के कारण हैं, अनिष्टकारी हैं। सुख का कारण तो अपना शुद्ध स्वभाव ही है। वह तो सदा ही शुद्ध रूप से ऐसा का ऐसा ही विद्यमान है। चारों गतियों में भ्रमण करने पर भी अपना स्वभाव सुख सागर से भरा चैतन्य पिंड चिदानन्द भगवान तो ऐसा का ऐसा ही रहा है। इसे याद कर, इसका स्मरण कर, यही सुख शांति और मुक्ति को देने वाला है।

चैतन्य मूर्ति, मुक्त स्वरूप, अनन्त गुण का धनी यही अपना इष्ट है। इस मुक्त स्वरूप, सिद्ध स्वरूप का अन्तर ध्यान करने से पर्याय में मुक्त स्वरूप प्रगट होता है। मुक्त स्वरूप बाह्य में प्रगट नहीं होता बल्कि अन्तर में जो पूर्णानन्द स्वरूप है, उसे दृष्टि में लेकर उसका ध्यान कर, अन्तर में स्थित ममल स्वभाव में लीन होने से पर्याय में मुक्ति प्रगट होती है। आत्मा में अनन्त गुण भरे हैं। एक-एक गुण में अनन्त गुणों का रूप है। एक-एक गुण में अनन्त पर्याय प्रगट करने की शक्ति है। भगवान आत्मा अनन्त गुणों की अद्‌भुत शक्तियों से युक्त है। इसमें एक बार दृष्टि दे तो तुझे संतोष मिलेगा, आनन्द मिलेगा। पुण्य पाप के परिणाम में दृष्टि देने से तो दु:ख का वेदन होता है, यही अनिष्टकारी है।

परिणाम को परिणाम द्वारा देख, ऐसा नहीं है ; किन्तु परिणाम द्वारा ध्रुव को देख। पर्याय से पर को तो न देख, पर्याय को भी मत देख, परंतु जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु मुक्तानन्दन है, उसे पर्याय में देख, उसे तू निहार, तेरी दृष्टि वहाँ लगा। अन्तर में प्रभु परमेश्वर स्वयं विराजते हैं, उन्हें एक बार छह माह तो खोज, यह क्या है ? अन्य चंचलता और चपलता छोडकर अन्तर में जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ, इष्ट, परम इष्ट, सिद्ध सदृश प्रभु है, उसे छह मास तो शोध। वास्तव में वह एक समय में प्राप्त होता है परंतु उपयोग असंख्य समय का होने से अन्तर्मुहूर्त में प्राप्त होता है, पर से विरक्तता और विभाव की तुच्छता भाषित हुये बिना, अन्तर में नहीं

उतर सकते।

हम स्त्री, पुत्र, पैसा आदि से समृद्ध हुये हैं, इन्हें इष्ट मानने वाले मूढ हैं। चैतन्य स्वभाव की महिमा तो अचिन्त्य है। अन्तर में ऐसी महिमा आये तो स्व की ओर पुरूषार्थ उमडे। वास्तव में तो पर्याय - परलक्षी है। उसे स्वलक्षी करना, इसमें महान पुरूषार्थ है। पर्याय को स्वलक्ष्य में ढालना, यह अनन्त पुरूषार्थ है , महान और अपूर्व पुरूषार्थ है । यह पर्याय जो स्व सम्मुख ढली है, जिससे उसे अन्तर्लीन कहा है किन्तु उससे पर्याय कोई ध्रुव में मिल नहीं जाती। ध्रुव के आश्रय से द्रव्य दृष्टि प्रगट हुई फिर चारित्र की शुद्धि भी पर्याय के आश्रय से नही होती। त्रिकाली अन्त: तत्व जो ध्रुव स्वभाव, ममल स्वभाव है, उसके आश्रय, उसकी इष्टता से ही चारित्र की शुद्धि होती है यह वस्तु स्थिति है, जिनेन्द्र भगवान के वचन हैं।

सम्यक् दृष्टि जीव अपने स्वरूप को जानकर उसकी प्रतीति, स्वरूपाचरण कर ऐसा अनुभव करता है कि मैं तो चैतन्य ज्योति मात्र हूँ। शुद्ध-बुद्ध, चैतन्य घन, स्वयं ज्योति सुखधाम मैं हूँ। चैतन्य, ज्ञान-दर्शन मात्र ज्योति स्वरूप ज्ञायक हूँ। मैं रागादि रूप बिल्कुल नहीं हूँ , इनका मेरे में अत्यन्त अभाव है । ऐसी दृष्टि होने से सारे अनिष्टों से मुक्त हो जाता है और ममल स्वभाव में लीन होने पर कर्म क्षय हो जाते हैं फिर कर्मोदय जन्य इष्ट, अनिष्ट की कल्पना छूट जाती है ।

भगवान सर्वज्ञ कहते हैं कि आत्मा मे शरीर, संसार या रागादि कर्म बंध है ही नहीं; सर्वप्रथम ऐसा निर्णय कर यह आत्मा जिनवर है, तीर्थकर है, केवलज्ञान स्वभावी है, यह आत्मा अमृत कुंभ है, इसी में एकाग्र होने से पर्याय में जिनवर के दर्शन होते हैं। परमात्म स्वरूप प्रगट होता है। इसके अतिरिक्त जो ऐसा मानते हैं कि प्रथम शुभ क्रिया कर, कषाय मन्द कर, संयम तप कर, तब आत्मा का अनुभव होगा, वे जीव, देव-गुरू-शास्त्र का अनादर करते है।

हम सर्वज्ञ हैं और तेरे गर्भ में भी सर्वज्ञ पद विद्यमान है। स्वभाव में विद्यमान सर्वज्ञ पद का आदर हुआ, उसमें अनन्त सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्माओं का आदर हो गया। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, कर ही नहीं सकता, आत्मा के अनन्त गुणों की पर्याय में एक पर्याय को दूसरी पर्याय की सहायता भी नहीं है। पर्याय, पर्याय की योग्यता से षट्कारक रूप से स्वतंत्र परिणमित होती है। यह जैन दर्शन के हार्द की, स्वतंत्रता की मूल बात है।

अपने जिन स्वभाव की दृष्टि सारे अनिष्ट से छुड़ाती है और जिन स्वभाव की रमणता, लीनता सारे कर्म बंधनों से मुक्त करती है। अपने जिन स्वभाव की इष्टता और बहुमान, लगन, उत्साह ही मुक्ति मार्ग है।

प्रश्न - अपने जिन स्वभाव की इष्टता, लगन पूर्वक पुरूषार्थ तो करते हैं पर यह, बीच में पर पर्याय दिखने लगती है, उस समय सब गडबड़ हो जाता है। अज्ञान जनित राग-द्वेषादि भाव होने लगते हैं ऐसे में क्या करें ?

इसके समाधान में श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य महाराज आगे गाथा कहते हैं -

गाथा-१८

अन्यानं नहु दिस्टं, न्यान सहावेन अन्मोय ममलं च। न्यानंतरं न दिस्टं, पर पर्जाव दिस्टि अंतरं सहसा ॥

शब्दार्थ - (अन्यानं) अज्ञान को (नहु) नहीं (दिस्टं) देखो (न्यान सहावेन) ज्ञान स्वभाव से (अन्मोय) अनुमोदना, चिन्तन, लीनता (ममलं च) ममल स्वभाव (न्यानंतरं) ज्ञान के अन्तराल, ज्ञान के अतिरिक्त (न) नहीं (दिस्टं) देखो (पर) शरीरादि पर द्रव्य (पर्जाव) अन्त: करण में चलने वाले भाव (दिस्टि) देखने में आया, दृष्टि गई (अंतरं) अन्तर पड जाता है (सहसा) तत्क्षण, एकदम।

विशेषार्थ - अपने शुद्ध स्वभाव का विस्मरण ही अज्ञान है। इस विस्मृति रूप अज्ञान मोह, राग-द्वेषादि भावों को मत देखो। ज्ञान स्वभाव के द्वारा अपने ममल स्वभाव में लीन रहो। स्वभाव से उपयोग का हटना, पर पर्याय की तरफ देखना ही ज्ञान से दूर होना है इसलिए ऐसे कर्म बंध कराने वाले ज्ञानान्तर को मत देखो, शुद्धात्म स्वरूप में लीन रहो। जिस समय, पर पर्याय पर दृष्टि जाती है उसी समय सतर्क सावधान हो जाओ। वहाँ से अपना उपयोग, दृष्टि हटा लो, वरना घोर अन्तराल हो जाता है, इसलिये पर पर्याय को मत देखो, ज्ञान स्वभाव में जाग्रत स्वस्थ होश में रहो।

अपने ज्ञान स्वभाव आत्मा के लक्ष्य से विकार नहीं होता; परन्तु स्व द्रव्य का लक्ष्य छोड़कर पर द्रव्य का, पर्याय का लक्ष्य करने से विकार होता है और उसी से भटकना पड़ता है, यही अज्ञान है। ज्ञान स्वभाव के लक्ष्य से राग से भिन्नता भाषित होने पर फिर उसमें लीनता नहीं होती।

आत्मा का स्वभाव सिद्ध के समान है। जहाँ न मन के संकल्प-विकल्प हैं, न वचन का व्यापार है, न काय की चेष्टा है। व्यवहार आचरण, मन, वचन, काय के आधीन है इसलिये पराश्रय है, जो कुछ स्वाश्रय हो – आत्मा के ही आधीन हो, वही उपादान कारण है। जब उपयोग मात्र एक उपयोग के धनी की तरफ हो। अभेद, सामान्य एक आत्मा ज्ञान स्वभाव ही देखने योग्य हो, आप ही देखने वाला हो, इस निर्विकल्प समाधि भाव को या स्वानुभव को आत्म दर्शन कहते हैं। यह आत्म दर्शन एक गुप्त तत्व है, वचन से अगोचर है, मन से चिन्तवन योग्य नहीं है। केवल आप से ही अपने को अनुभवने योग्य है, वहाँ पर एक सहज ज्ञान है।

सर्व मन के विकारों को बंद करके, सर्व जगत के पदार्थों से विरक्त होकर अपने उपयोग को अपने ही भीतर सूक्ष्मता से ले जाना चाहिये, तभी यह बोध होता है कि मैं ही परम ब्रह्म परमात्मा हूँ। ज्ञानानन्द स्वभावी, ज्ञान मात्र चेतन सत्ता हूँ। वहाँ फिर यह कोई अज्ञान जनित विकार भाव होते ही नहीं हैं।

चैतन्य के चैतन्य में एकाग्र होने पर भेद नहीं रहता। आत्मा की पर्याय में अज्ञान रूपी उलझन पैदा होती है। उसे ज्ञान से सुलझाने पर वह नहीं रहती। अंश बुद्धि में राग – द्वेष, अज्ञान आदि भाषित होते हैं परन्तु स्वभाव बुद्धि होने पर वे कुछ भी भाषित नहीं होते। जैसे – पुराना मकान बेच देने के बाद उसके संभालने की चिन्ता नहीं होती, वैसे ही ज्ञानी को शरीर, मन, वाणी, अज्ञान जनित रागादि भावों के प्रति स्वामित्व भाव उड चुका होने से उनकी चिन्ता नहीं रहती, उस तरफ देखता ही नहीं है।

अज्ञान व राग-द्वेष से आत्मा को दु:ख होता है। उस चैतन्य स्वभाव को ही वीतरागता प्रगट कर बचाना ही आत्मा की दया है, यही परम धर्म है।

स्व-पर का श्रद्धान होने पर, अपने को पर से भिन्न जाने तो स्वयं के आश्रय ज्ञानभाव से संवर, निर्जरा रूप, दर्शन, ज्ञान, चारित्र का उपाय करे और पर द्रव्यों का अपने से भिन्न रूप श्रद्धान होने पर, पर के लक्ष्य से होने वाले पुण्य पाप, आश्रव बंध को छोडने, उनसे बचने – हटने का श्रद्धान, ज्ञान होता ही है।

शुद्ध स्वरूप आत्मा में, ज्ञान स्वभाव में, मानो विकार भरे हों, अज्ञानी को ऐसा दिखाई देता है, यही भ्रम है परन्तु भेदज्ञान प्रगट होने पर वे ज्ञान रूपी

चैतन्य दर्पण में प्रतिबिम्ब रूप झलकते दिखाई देते हैं। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान होने पर शुद्धदृष्टि में यह प्रत्यक्ष भिन्न दिखाई देते हैं। अपने को अज्ञान रूप विकार रूप मानना, यही भ्रम है। जो ज्ञान स्वभाव के अभ्यास से दूर होता है।

अपना स्वरूप तो ममल स्वभाव, ज्ञान मात्र चेतन सत्ता है। ममल स्वभाव का मतलब है कि जिसमें कभी कोई मल आदि विकार हुये नहीं, हैं नहीं, होंगे नहीं, ऐसे ममल स्वभाव की अनुमोदना बार-बार भेदज्ञान का अभ्यास करने पर ज्ञान स्वभाव में रहने पर, पूर्व अज्ञान जनित कर्मोदय जन्य जो ज्ञेय भाव पर और पर्याय, भावक भाव देखने – जानने में आते हैं, इनसे भिन्नता भाषित होना ही ज्ञायक स्वभाव ज्ञानीपना है।

अभी ज्ञेय भाव के भेदज्ञान से शून्य होने के कारण स्वयं को ज्ञेय रूप जानता हुआ ज्ञानरूप परिणमित होने के बजाय अज्ञान रूप परिणमित होता हुआ, यह रागादि भाव मेरे हैं, ऐसा जानना-मानना ही ज्ञानान्तराय है और इससे बडा भ्रम, भ्रांति पैदा होती है, घोर अन्तराल आ जाता है।

मैं ज्ञायक, ज्ञान स्वभावी, शुद्धात्मा, ध्रुव तत्व ममल स्वभावी हूँ और यह जो कुछ भी देखने-जानने में आ रहा है, मैं ज्ञान-स्वभावी ज्ञायक और यह सब ज्ञेय शरीर संसार आदि तो यह पर हैं ही, भीतर चलने वाले भाव और एक समय की पर्याय भी पर है। सब मेरे ज्ञान का ज्ञेय है, यह मेरा स्वभाव नहीं, इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी ज्ञानधारा निरन्तर प्रवाहित हो तो फिर यह कुछ रहते ही नहीं हैं।

प्रश्न – हम पर पर्याय को देखना ही नहीं चाहते, अपने ज्ञान स्वभाव ममल भाव में ही रहना चाहते हैं पर यह हठात् दिखाई देते हैं और बडी भ्रम-भ्रांति पैदा कर देते हैं, भयभीतपना होने लगता है, यह क्या है, और इसका उपाय क्या है ?

समाधान – ज्ञान स्वभाव स्व-पर प्रकाशक होता है। यह ज्ञान स्वभाव की विशेषता है। आत्मा, ज्ञान स्वभावी है, केवल ज्ञान में तो लोकालोक झलकता है। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में तीन काल, तीन लोक के समस्त द्रव्य और उनकी त्रिकालवर्ती पर्याय झलकती हैं पर उन्हें कुछ नहीं होता, वह अपने परमानन्द में लीन रहते हैं। शरीरादि संयोग भी हैं पर उन्हें कुछ भी नहीं

लगता क्योंकि वह पूर्ण ज्ञानी, पूर्ण वीतरागी हैं। उनके घातिया कर्म क्षय हो गये हैं। अनन्त चतुष्टय स्वभाव प्रगट हो गया है ऐसे ही अपना स्वरूप यह आत्मा भी केवलज्ञान स्वभावी है परन्तु अनादि से ऐसे अपने स्वभाव को भूला, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि हो रहा है। अज्ञान, मिथ्यात्व के कारण संसार में कर्म बंधनों में एकमेक हो रहा है। अब सद्गुरू कृपा भेदज्ञान होने से स्व-पर का यथार्थ स्वरूप प्रतिभासित हुआ, सत्श्रद्धान ज्ञान हुआ, इसी को सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान कहते हैं। अब सम्यक्दर्शन, ज्ञान होने पर ध्रुव तत्व, शुद्धात्मा, ज्ञान स्वभावी, ज्ञायक मात्र हूँ और यह सब पर पर्याय, कर्मोदय जन्य परिणमन संसार सब मेरे से भिन्न है।

अपनी एक समय की पर्याय भी कर्मोदय जन्य होने से अशुद्ध रूप है, वह भी मेरी नहीं है। मैं तो ममल स्वभावी, टंकोत्कीर्ण, शुद्ध चैतन्य ज्योति ज्ञान मात्र ज्ञायक हूँ तथा यह एक - एक समय की पर्याय, जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन सब क्रमबद्ध निश्चित अटल है। जैसा केवलज्ञान में झलका है, वैसा ही हो रहा है और होगा। इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं एक अखंड अविनाशी ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ। ऐसा दृढ अटल ज्ञान श्रद्धान पूर्वक अपने ममल स्वभाव में रहो, यही साधना सम्यक्चारित्र है। अब जिस भूमिका में बैठे हैं, जो पात्रता है जैसा पुरूषार्थ काम करता है। उसी अनुसार जितना ज्ञानोपयोग होगा, उतने ही समता, शांति, आनन्द में रहोगे और यह पूर्व कर्म बंधोदय क्षय होते जायेंगे। अभी जो भयभीतपना, भ्रम भ्रांति होती है, यह अपने ज्ञान, श्रद्धान की कमी है, इसे पक्का करो और जो न चाहते हुए भी दिखाई देते हैं यह पात्रता की कमी है, इसमें अपनी पात्रता बढाओ, मोह, राग के संयोग में रहते हुये, अपने स्वभाव में नहीं डूब सकते, इसके लिये तो उत्तम पात्र, निर्ग्रन्थ, वीतरागी साधु पद ही चाहिये।

पहले सच्चा ज्ञान होवे कि मैं इन शरीरादि से पृथक् हूँ। अन्तर में जो शुभाशुभ भाव होते हैं, वह भी मैं नहीं हूँ, मेरे नहीं हैं, मैं तो सबसे भिन्न मात्र ज्ञायक हूँ। यह स्थिति बनने के बाद ममल स्वभाव में रहने का पुरूषार्थ काम करता है और तभी अपने ज्ञानानन्द, निजानन्द स्वभाव में रहा जाता है फिर यह कोई बाधा नहीं डालते, फिर कोई भ्रम अज्ञान नहीं रहता। सहजानन्द में साधना चलती है।

प्रश्न – इसके लिए कैसी साधना करना पड़ती है ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं –

गाथा – १९

अप्पा अप्प सहावं, अप्पा सुद्धप्प विमल परमप्पा ।
परम सरूवं रूवं, रूवं विगतं च ममल न्यानस्य ।।

शब्दार्थ – (अप्पा) आत्मा (अप्प सहावं) आत्म स्वभावी है इसकी उपमा पर से नहीं दी जा सकती (अप्पा) आत्मा (सुद्धप्प) शुद्धात्मा (विमल) सर्व कर्म मलों से रहित (परमप्पा) परमात्मा है (परम सरूव) परम स्वरूप, ॐकार स्वरूप, ब्रह्म स्वरूप (रूवं) अपना स्वरूप है (रूवं विगतं च) रूपी पुद्गल शरीरादि कर्म संयोग के हटते, छूटते ही (ममल न्यानस्य) ममल स्वभावी ज्ञान मात्र है।

विशेषार्थ – आत्मा, आत्म स्वभाव अपने आप में अद्वितीय है, इसकी उपमा पर से नहीं दी जा सकती, अपने स्वभाव से परम ज्ञान मयी है। चैतन्य तत्व दैदीप्यमान अरूपी तत्व है। वह आत्मा मैं स्वयं ही शुद्धात्मा, सर्व कर्म मलों से रहित विमल परमात्मा हूँ।

निज स्वरूप टंकोत्कीर्ण अप्पा, परम उत्तम, उपमा रहित सर्वश्रेष्ठ चेतना मयी है। रूपी पुद्गल शरीरादि कर्म सयोग के हटते, छूटते ही ममल स्वभावी ज्ञान मात्र सदैव शुद्ध चिन्मय चिद्रूप केवलज्ञानमयी परमात्मा है। इस सत्य का निरन्तर स्मरण, ज्ञान, ध्यान करना ही साधना है, इसी से परमानन्द मयी मुक्ति की प्राप्ति होती है।

जीव, विकार और स्वभाव को एक मान रहा है अत: यथार्थ विचार नहीं कर पाता। यदि मिथ्या धारणा में थोडी संधि करे, बुद्धि का सदुपयोग करे तो जाने कि विकार कृत्रिम है तथा स्वभाव निरूपाधि स्वरूप है, यही भेदविज्ञान है परन्तु अज्ञानी ने तो निज स्वभाव और रागादि दोनों में एकता मानी है। दया–दानादि से धर्म होने की मान्यता, व्यवहार करे, कषाय मंद करे तो धर्म हो, ऐसी विपरीत श्रद्धा माने बैठा है। इससे हटकर जो भेदज्ञान का अभ्यास करता है उसे वस्तु स्वरूप समझ में आता है कि यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ। यह शरीरादि संयोग रागादि विकार सो मैं नहीं, ऐसे आत्मज्ञान होता है।

ज्ञान लक्षण से लक्षित चैतन्य स्वभाव का अनुभव होने पर अनुभव ही मैं हूँ, ऐसा सम्यक्ज्ञान होता है। इसकी उपमा किसी बाह्य पर पदार्थ से नहीं दी जा सकती क्योंकि चैतन्य लक्षण ज्ञान स्वभावी मात्र आत्मा है, अन्य सब जड द्रव्य अचेतन हैं।

साधक को ऐसा स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण विकार क्रियायें और पदार्थादि प्रकृति सम्भूत है, अचेतन जड कर्मादि जनित हैं तथा मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि भी प्राकृतिक ही हैं अतः इनके द्वारा जो चेष्टायें हो रही हैं, वे न तो मुझमें हैं, न मेरी हैं और न मेरे लिए ही हैं। वास्तविक स्वरूप में कोई चेष्टा है ही नहीं, जिस शरीर के साथ संबंध माना हुआ है, उसी में सम्पूर्ण चेष्टायें हो रही हैं।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रस, गध, वर्ण, इन दस का नाम कार्य है। मन, बुद्धि, अहंकार, श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र, नासिका, वाणी, हस्त, पैर, उपस्थ और गुदा इन तेरह (अन्तः करण और बाह्यकरण) का नाम करण है। यह सब प्रकृति पुद्गल कर्म के कार्य हैं इसलिए इनके द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं के कर्तापने में भी प्रकृति, पुद्गल कर्म के कार्य हैं इसलिये इनके द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं के कर्तापने में भी प्रकृति, पुद्गल कर्म की प्रधानता है। कर्म जड है इसलिए वास्तव में उसमें कर्तृत्व - भोक्तृत्व का स्वतंत्र सामर्थ्य है ही नही किन्तु व्यवहार सयोगी अवस्था होने वाला, सामान्य क्रिया से लेकर निर्विकल्प समाधि तक कर्तृत्व-भोक्तृत्व सब कर्म और जीव के निमित्त, नैमित्तिक सम्बध से ही होता है।

कर्तृत्व में क्रिया की प्रधानता होने से कर्म को हेतु कहा गया है और सुख-दु:ख का अनुभव रूप ज्ञान, चेतन जीव को ही हो सकता है, कर्म जड को नहीं, इस अभिप्राय से चेतन जीव को सुख-दु:ख के भोक्तापने में हेतु कहा गया है, पर वास्तव में चेतन जीव सुख-दु:ख का भोक्ता नहीं है।

क्रिया मात्र पुद्गल जड में हो रही है। जैसे - शरीर का बढना, श्वास का आना-जाना, भोजन का पचना आदि क्रियायें स्वतः शरीर में हो रही हैं, किन्तु मन, बुद्धि पूर्वक होने वाली कुछ क्रियाओं को जैसे- खाना-पीना, चलना-फिरना, उठना-बैठना, बोलना आदि को साधारण मनुष्य अपने द्वारा की हुई मानता है।

यहाँ यह अभिप्राय है कि वास्तव में सम्पूर्ण क्रियायें कर्मोदय जन्य पुद्गल में ही हो रही हैं। उनमें से कुछ क्रियाओं के साथ अपना सम्बन्ध मानना भूल है, इस भूल के मिटने पर ही आत्मा का वास्तविक रूप समझ में आता है।

जो जानता है, वह कर्ता नहीं है। जो कर्ता है, वह जानता नहीं है। करना ही निश्चय से राग है।

राग को अज्ञान रूप अध्यवसान कहते हैं। यह अज्ञान भाव नियम से मिथ्यादृष्टि को होता है और यही अज्ञान भाव बंध का कारण बनता है। भगवान जिनेन्द्र ने पग-पग पर ग्रंथों में अध्यवसान ही त्याग करने योग्य कहा है। अध्यवसान पर के आश्रय से होता है, स्वाश्रय से नहीं होता; इसलिये सद्गुरू कहते हैं, स्वाश्रय करो, पराश्रय छोडो। जितना भी संसार का व्यवहार है, वह सब पराश्रय से होता है। पराश्रय के त्याग का उपदेश ही परमार्थ का उपदेश है। अपनी निज महिमा से सर्वोत्कृष्ट शुद्धात्मा में ही लीन रहना मुक्ति मार्ग की साधना है।

अनिष्टकारक पंचेन्द्रियों के विषय तथा उनके साधन क्रोधादि कषाय तथा उनके साधनों की भयंकरता, अनिष्टकारिता भाषित होने पर बंध से बचा जा सकता है। बंध से बचना ही मुक्ति मार्ग की साधना है, यही सम्यक्चारित्र है।

जगत में कर्म की वर्गणायें भरी हैं, वे बंध कराती हैं, ऐसा नहीं है। जीव के हलन-चलन कराने वाले मन-वचन-काय की क्रियायें जीव को बंध नहीं कराती। नाना प्रकार के बाह्य साधन इन्द्रियाँ आदि भी जीव को बंध नहीं कराते। सचेतन - अचेतन पदार्थों का घात भी कर्म बंधन नहीं कराता किन्तु जीव के ज्ञानोपयोग की भूमिका जब रागादि विकारी भावों के साथ एकता को प्राप्त होती है, तब यही एक मात्र अवस्था प्राणियों के लिये बंध का कारण होती है।

बंध का कारण पर पदार्थ नहीं होता, स्वापराध ही होता है अत: जब जीव का उपयोग रागादि विकारों से विकृत होता है, तब वे ही अशुद्ध उपयोग स्थित रागादि परिणाम जीव को कर्म बंधन के कारण होते हैं, ये ही मूल हेतु है।

रागादि रहित विरागी के कर्म बंध नहीं होता। लोक कार्माण वर्गणा से भरा हुआ हो, जो योग प्रदेश चलनात्मक क्रियायें भी हों तथा इन सबके साथ,

पाँचों इन्द्रियों मन तथा इनके साधन स्वरूप अन्य पदार्थ रूप करण (साधन) भी हों तथा चेतन-अचेतन का घात भी हो तथापि सम्यग्दृष्टि जीव यदि उपयोग की भूमिका में रागादि रूप परिणमन नहीं करता और मात्र अपने ज्ञान स्वरूप में रहता है, तत् रूप ही परिणमन करता है, तो किसी भी प्रकार से उस सम्यक्दृष्टि जीव को बंध नहीं होता, यह सुनिश्चित है।

यही साधना है कि अपने उपयोग को बाहर पर पर्याय में न जाने दिया जाये। निरन्तर अपने स्वरूप का स्मरण-ज्ञान-ध्यान किया जावे कि मैं आत्मा, शुद्धात्मा, ममल स्वभावी परमात्मा हूँ। ममल स्वभाव में रहने से अनन्तानन्त कर्म क्षय होते है और यह रूपी पदार्थ पुद्गलादि, शरीर संयोग कर्म बन्ध छूटने पर केवलज्ञान मयी ममल स्वभावी परमात्मा हो जाते हैं। यही साधना है जिसका निरन्तर आराधन किया जाये।

मैं ध्रुव तत्व शुद्धातम हूँ, मैं ध्रुव तत्व शुद्धातम हूँ॥

मैं अशरीरी अविकारी हूँ, मै अनन्त चतुष्टय धारी हूँ।
मैं सहजानन्द बिहारी हूँ, मै शिव सत्ता अधिकारी हूँ॥
मैं परम ब्रह्म परमातम हूँ, मै ध्रुव तत्व शुद्धातम हूँ....

मैं ज्ञेय मात्र से भिन्न सदा, मै ज्ञायक ज्ञान स्वभावी हूँ।
मैं अलख निरंजन परम तत्व, मैं ममलह ममल स्वभावी हूँ॥
मै परम तत्व परमातम हूँ, मै ध्रुव तत्व शुद्धातम हूँ....

मै निरावरण चैतन्य ज्योति, मै शाश्वत सिद्ध स्वरूपी हूँ।
मैं एक अखड अभेद शुद्ध, मैं केवलज्ञान अरूपी हूँ॥
मै ज्ञानानन्द सिद्धातम हूँ, में ध्रुव तत्व शुद्धातम हूँ....

बस, सत्ता एक शून्य विन्द मै ही मै हूँ। पर का जगत का अस्तित्व मिटा देना, अपने ममल स्वभाव ध्रुव धाम मे लीन रहना, इसी से अनन्तानन्त कर्मक्षय होते है। यह शरीरादि संयोग छूटते है और आत्मा - शुद्धात्मा, परमात्मा हो जाता है।

प्रश्न- यह तो परम आनन्द की बात है, पर इस शरीरादि कर्म संयोग में रहते हुए ऐसा कहना सहज है, पर ऐसा रहना, स्वीकारता में आना तो कठिन है, क्या इससे स्वच्छंदता न होगी ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं -

गाथा–२०

विमलं च विमल रूवं, न्यानं विन्यान न्यान सहकारं ।
जिन उत्तं जिन वयनं, जिन सहकारेन मुक्ति गमनं च ॥

शब्दार्थ – (विमलं) सारे कर्म मलों से रहित विमल (च) और (विमल रूवं) विमल स्वरूपी निज आत्मा है (न्यानं विन्यान) भेद विज्ञान के द्वारा (न्यान सहकारं) ज्ञान में स्वीकार किया, ऐसा अनुभव में आया (जिन उत्तं) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है (जिन वयनं) जिनवाणी में आया है (जिन सहकारेन) अपने आत्म स्वरूप को स्वीकार करना ही (मुक्ति गमनं च) मुक्ति मार्ग है ।

विशेषार्थ – निज शुद्धात्मा चैतन्य मयी विमल स्वरूपी अर्थात् सर्व कर्म मलादि से रहित परिपूर्ण ब्रह्म स्वरूप है। ऐसा भेदज्ञान द्वारा अपने ज्ञान से स्वीकार किया है तथा जिनेन्द्र परमात्मा ने भी कहा है, जिनवाणी में भी आया है कि आत्मा – शुद्धात्मा–परमात्मा है। सारे कर्म मलादि शरीरादि संयोग से रहित एक अखंड अविनाशी, चेतन तत्व भगवान आत्मा है। ऐसे अपने आत्म स्वरूप को स्वीकार करना, श्रद्धान, ज्ञान सहित अपने स्वभाव में रहना ही मुक्ति मार्ग है।

जिनेन्द्र भगवान के वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं तो क्या यह मात्र कहने के लिये हैं, या ऐसा रहने के लिये हैं ? मुक्ति का मार्ग है – **सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग :** फिर अब इस बात को स्वीकार करने में क्या कठिनाई है, स्वयं ने भेदविज्ञान पूर्वक निज शुद्धात्मानुभूति युत ज्ञान से इस बात को स्वीकार किया है या नहीं ? कि मैं आत्मा – शुद्धात्मा – परमात्मा हूँ, फिर इसमें स्वच्छन्दता कैसी ? सत्य को स्वीकार करना, शूरवीर नरों का काम है। सत्य मार्ग पर चलना महावीर की बात है।

सारे कर्म मलादि शरीरादि संयोग और ज्ञान स्वरूपी आत्मा को लक्षण भेद से सर्वथा भिन्न करने पर ही सर्वज्ञ स्वभावी शुद्ध जीव लक्ष्य में आता है। जैसे जो आत्मा पूर्ण वीतरागी होते हैं, वही सर्वज्ञ परमात्मा होते हैं। वैसे ही जो सर्व प्रकार कर्म मलादि रागादि भावों से ज्ञायक आत्मा की भिन्नता समझें, वे ही सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की पहिचान अनुभव कर सकते हैं।

स्व – पर प्रकाश का पुंज प्रभु तो शुद्ध ही है। पर जो रागादि से भिन्न होकर उसकी उपासना करे, उसी के लिये वह शुद्ध है। सर्व प्रकार से भेदज्ञान में

प्रवीण होना ही मुक्ति मार्ग है। द्रव्य तो त्रिकाली और निरावरण है, पर वर्तमान पर्याय में रागादि को मिश्रित कर रखा है। भेदज्ञान की प्रवीणता से भिन्न होता है। अन्य किसी उपाय-क्रिया-कर्म से भिन्न नहीं होता। जो आत्म स्वभाव का अनादर कर पर वस्तु से सुख पाना मानता है, बाह्य क्रिया से मुक्ति होना मानता है, वह जीव घोर मिथ्यादृष्टि पापी है। अन्तर में महान चैतन्य निधि विराजमान है, उसका तो आदर नहीं करता और जड में सुख मानता है। ऐसे जीव को भले ही बाह्य मे सारी अनुकूलता लक्ष्मी के ढेर लगे हों, परन्तु भगवान उसे पापी कहते हैं।

जिसको द्रव्य दृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक, ध्रुव-ध्रुव चैतन्य आत्मा ही भासता है। शरीरादि कुछ भाषित नहीं होते। भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। मैं एक ज्ञान मात्र चेतन तत्व भगवान आत्मा हूँ। मेरा यह स्वभाव अनादि काल से है और अनन्त काल तक यह मेरा स्वभाव रहेगा। न कभी चलायमान विकारी हुआ और न कभी चलायमान विकारी होगा। यह ज्ञान स्वभाव मेरा परकृत नहीं है, किन्तु स्वयं सिद्ध है। इसमें किसी दूसरे पदार्थ का प्रवेश नही है अथवा यह दूसरे प्रकार के पदार्थ के रूप में बदल भी नहीं सकता। इस प्रकार मेरे स्वरूप में आकस्मिक रूप से आने वाला कुछ भी नहीं है। तब ज्ञानी को भय भी किसी प्रकार से नहीं है।

ज्ञानी सम्यक्‌दृष्टि जीव सदैव निर्भय होकर अपने सहज स्वरूप ज्ञानानन्द में स्वयमेव रमण करता है, सदा आनन्दित रहता है। जो स्व संवेदन प्रत्यक्ष से अपने स्वरूप का दर्शन कर रहा है और उसमें नि:शंक है वह जानता है कि मैं ज्ञान स्वभावी ध्रुव अचल पदार्थ हूँ। मेरा निज का ज्ञान छिनने वाला नहीं है। वह बिगडने वाला भी नहीं है और न नाश होने वाला है। मैं विमल ममल स्वभावी आत्मा-शुद्धात्मा-परमात्मा हूँ। इसी का लक्ष्य, आश्रय करने, इसी में दृढ अटल रहने से कर्मक्षय होते हैं। पर्याय में शुद्धि आती है और सिद्ध दशा प्रगट होती है। यही जिनेन्द्र कथित मुक्ति मार्ग है, इसमें स्वच्छंदता नहीं है।

जिसे इस बात का दृढ श्रद्धान-ज्ञान अटल विश्वास नहीं है वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है, उसे अभी मुक्ति मार्ग पर चलने का अधिकार ही नहीं है।

प्रश्न - हमें यह सब सुनकर तो लगता है कि मैं आत्मा - शुद्धात्मा परमात्मा हूँ, पर अभी ऐसा दृढ अटल श्रद्धान विश्वास नहीं है इसके

लिये क्या करें ?

समाधान – पहले इस बात को पक्की नक्की करो। जब तक यह बात अनुभव प्रमाण पक्की न होगी, तब तक इस ज्ञान मार्ग पर चल ही नहीं सकते और न मुक्ति हो सकती। इसके लिये भेदज्ञान का निरन्तर अभ्यास करो। स्व-पर की भिन्नता भाषित हो। शरीर से भिन्न आत्मा की अनुभूति हो, निर्विकल्प दशा बने, इसके लिये ध्यान सामायिक का अभ्यास करो, बारह भावनाओं का चिन्तवन करो और अपने में पक्का दृढ श्रद्धान करो।

इस साधना के साधक को, भेदज्ञान करने वाले को, पांच पाप का त्याग, पांच इन्द्रियों के विषय और मन का संयम आवश्यक है। बगैर इसके निर्विकल्प अनुभूति नहीं हो सकती। अपने में दृढता अटलता लाने के लिये निम्न उपाय हैं –

(१) निज शुद्धात्मानुभूति पूर्वक भेदज्ञान द्वारा सम्यक्त्व की शुद्धि करना, अर्थात् यह पक्का निर्णय होना कि मुझे आत्मानुभूति सम्यग्दर्शन हो गया तथा तत्व निर्णय स्वीकार करना – जिस समय जिस जीव का जिस द्रव्य का जैसा जो कुछ होना है, वह अपनी तत् समय की योग्यतानुसार हो रहा है और होगा, उसे कोई टाल फेर बदल सकता नहीं, इससे जीवन में समता शांति आती है।

(२) वस्तु स्वरूप को अनुभव प्रमाण करना।

१. जीव – मैं और समस्त जीव-शुद्ध जीव अस्तिकाय, सिद्ध के समान, ध्रुव अविनाशी हैं। सब स्वतंत्र अपने में पूर्ण परमात्म स्वरूप हैं। सब चेतन सत्ता शक्ति धारी हैं।

२. पुद्गल (अजीव) – पुद्गल परमाणु भी शुद्ध अपने में स्वतंत्र सत्ता शक्तिधारी हैं।

विशेष – संयोगी परिणमन, अशुद्ध पर्याय अज्ञान जनित परिणाम है जो स्वयं ही परिणमित होता, गलता, विलाता, क्षय होता जा रहा है।

(३) संशय, विभ्रम, विमोह रहित सम्यक्ज्ञान होना।

मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ और एक-एक समय की पर्याय और जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है, मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा अनुभूति युत निर्णय करना।

(४) सर्वज्ञ की सर्वज्ञता स्वीकार करना। जैसे केवलज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा हैं, वैसा ही मैं हूँ। अपने अनन्त चतुष्टय मयी केवलज्ञान सर्वज्ञ स्वभाव की

सत्ता शक्ति का बोध होना तथा जैसा केवलज्ञान में झलका है, वैसा तीन लोक तीन काल के समस्त जीवादि द्रव्यों का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है। ऐसा बुद्धिपूर्वक अनुभव प्रमाण स्वीकार करने पर दृढता अटलता आती है। ऐसा ज्ञानी हर समय हर दशा में निर्विकल्प निजानन्द में ज्ञायक रहता है।

अब निरन्तर अपना स्मरण, ध्यान रखो, हर दशा में हर समय स्वस्थ होश में प्रसन्न, मस्त आनन्द में रहो। अब है क्या, जब ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हो। केवलज्ञान स्वभावी, सिद्ध स्वरूपी ज्ञान मात्र, चैतन्य ज्योति हो और यह एक-एक समय का पूरे जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है तथा किसी से अपना कोई सम्बन्ध, लेना-देना मतलब नहीं है, पूर्ण स्वतंत्र मुक्त हो तो यह पर पर्याय को देखना बन्द करो। राग भाव खत्म करो। यह फिसलन कचाहट, भयभीतपना राग के कारण ही होता है। अपने में निस्पृह आकिंचन्य वीतरागी बनकर ब्रह्म स्वरूप, ममल स्वभाव में लीन रहो। इतना ज्ञान, श्रद्धान,भेदज्ञान तत्व निर्णय, वस्तु स्वरूप सब सामने प्रत्यक्ष अनुभव प्रमाण, जिनवाणी और जिनेन्द्र परमात्मा द्वारा प्रमाण है, तो अब अपने में अभय, अटल, अडोल, अकम्प, स्वस्थ मस्त रहो, दृढता धरो। दृढ श्रद्धान विश्वास करो तो जय-जयकार मचे। सारे कर्म निर्जरित क्षय हो जायें और साधु पद से सिद्ध पद की प्राप्ति हो।

सद्गुरू कहते हैं कि जीव स्वयं के द्वारा शुद्ध स्वरूप का अनुभव करने में समर्थ है। निज स्वरूप का ज्ञान नहीं था, तब तक, जो जीव अज्ञानता वश विकारी भावों का वेदन करता था, वह स्वयं ही स्वयं के द्वारा निज शुद्धात्म तत्व का अनुभव करने मे समर्थ है । अन्तर की गहराई से रूचि और लगन होना चाहिये। जो आत्मा को लक्ष्य कर छह माह तक आत्म धुन लगे तो आत्मा प्रत्यक्ष सामने नाचने लगे।

जिन्हे आत्मा को समझने के लिये अन्तर में सच्ची धुन और छटपटाहट लगे, उन्हें अन्तर मार्ग, निज आत्मानुभूति हुये बिना न रहे। स्वयं के पुरूषार्थ से मुक्ति मार्ग पर चलकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। आत्मा ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। उसमें स्वयं के द्वारा एकता करे व विभाव से पृथकता करे, यही मोक्ष का मार्ग है।

इसमें ज्यादा विकल्प, संशय, शल्य करने की आवश्यकता नहीं है। यह तो अपना स्वयं का स्वरूप है, जो अनाद्यनिधन शाश्वत, सिद्ध स्वरूपी है।

इसकी स्वीकारता होने पर आगे का मार्ग तो स्वयमेव बनता है। सब सहजता सरलता से होने लगता है। प्रथम भूमिका से अपने आप ऊपर उठने के भाव और तद्रूप आचरण होने लगता है।

प्रश्न – इसमें फिर अपने आप भाव और कैसा आचरण होने लगता है ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं –

गाथा – २१

षटुकाई जीवानं, क्रिपा सहकार विमल भावेन।
सत्वं जीव समभावं, क्रिपा सह विमल कलिस्ट जीवानं ॥

शब्दार्थ – (षटुकाई) छहकाय, पांच स्थावर (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति) और त्रस (दो इन्द्रिय से पाच इन्द्रिय तक) (जीवान) जीवों पर, समस्त जीव (क्रिपा) दया भाव, करूणा (सहकार) सहयोग, साथ देना, स्वीकार (विमल भावेन) विमल भाव सहित, शुद्ध आत्म स्वरूप (सत्वं जीव) समस्त जीव, प्राणी मात्र (समभाव) समभाव, समता भाव, प्रेम, मैत्री (क्रिपा) दया भाव, करूणा (सह विमल) निर्मल भाव सहित सहयोग, साथ देना (कलिस्ट जीवानं) दु:खी जीवो पर, बडे कष्ट में रहने वाले जीवों पर।

विशेषार्थ – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी आत्मा, अपने ही समान छहों काय के जीवों को भगवान आत्मा सिद्ध स्वरूप देखता है। सब के प्रति मैत्री प्रमोद रखता है। सब जीवों के प्रति सम भाव रहता है। कोई ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं रखता, क्योंकि उसकी दृष्टि द्रव्य स्वभाव, विमल ममल स्वभाव पर रहती है। दीन-दु:खी जीवों पर करूणा होती है। किसी जीव को कोई कष्ट न हो, ऐसी भावना रहती है। जो दु:खी जीव हैं, कष्ट में हैं, उनके कष्ट दूर हों, उनका हर प्रकार से सहयोग करता है।

सम्यक्दृष्टि जीव को सर्व ही सिद्ध व संसारी आत्मायें – एक समान परम निर्मल विमल स्वरूपी वीतराग ज्ञानानन्दमय दिखती हैं। इस दृष्टि से देखने, अभ्यास करने वालों के भावों में सम भाव का साम्राज्य हो जाता है। राग-द्वेष, मोह का विकार मिट जाता है। इसी सम भाव में एकाग्र होना ही ध्यान है।

संसारी आत्माओं में कर्मों का संयोग व उदय होने के कारण विभाव पर्यायें व अशुद्ध पर्याय होती हैं परन्तु उसी समय अन्तरात्मा व परमात्मा की पर्यायें शक्ति रूप से अप्रगट हैं।

जिसमें अनादि काल से चार गतियों, चौरासी लाख योनियों में जीव व संसरण या भ्रमण हो रहा है, उसको संसार कहते हैं। इसमें छह काय के जी रहते हैं। पाँच स्थावर (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति) यह ए इन्द्रिय वाले होते हैं। शेष दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के जीव त्र कहलाते हैं। चारों गतियों में क्लेश व चिन्तायें रहती हैं। शारीरिक व मानसि दुःख जीव को कर्मों के उदय से भोगना पडते हैं, जन्म-मरण का महान क्ले तो चारो गतियों में है।

मिथ्यादृष्टि संसारासक्त प्राणियों को संसार भ्रमण में दुःख ही दुःख होत है। जब कभी कोई इच्छा पुण्य के उदय से तृप्त हो जाती है तब कुछ दे सुख-सा झलकता है, फिर तृष्णा का दुःख अधिक हो जाता है। चिरका तक तिर्यंच गति में महान वेदनाओं से आकुल हो, भ्रमण करके मनुष्य गति जन्म लेकर पाप के फल से यह प्राणी दुःखों को पाता है।

इस तरह अनादि काल से यह जीव सर्वज्ञ भगवान के कहे हुये धर्म को पाकर, भयानक संसार सागर में गोते लगाया करता है। संसार भ्रमण उदासीन मोक्ष प्रेमी, सम्यग्दृष्टि जीवों को अपनी आत्मा और सर्व आत्माउ पर करूणा आती है। उन्हें लगता है कि कोई आत्मा संसार क्लेशों को सहन करे। यह आत्मा भव-भव में न भ्रमे, भव सागर में न डूबे, जन्म, जरा, मरा के घोर क्लेश न सहे। इस दुःख रूपी रोग के विनाश के लिये, धर्म रूपी अमृ को सदा पीना चाहिये। जिसके पीने से जीवों को सदा ही परमानन्द प्राप होगा। इसके लिये उनको जैसे बनता है जीवों का कष्ट दूर करने का प्रया करते हैं।

निश्चय नय से ज्ञानी जब देखता है, तब उसे अपना आत्मा परम शु दिखता है। वैसे ही विश्व भर में भरे सूक्ष्म व बादर शरीरधारी आत्मायें भ परम शुद्ध ज्ञानानुभूति में आती हैं। इस दृष्टि से छहों काय के जीवों के प्रा समभाव, मैत्री, करूणा, प्रमोद भाव रहता है। जब सब जीवों को समान दे लिया, तब किसके साथ मैत्री करे, किसके साथ कलह करे। राग-द्वेष त नाना भेद रूप दृष्टि में होता है। सर्व को शुद्ध एकाकार देख लिया तब शत्रु मित्र की कल्पना ही न रही, यही समभाव चारित्र है। समभाव ही धर्म है समभाव ही परम तत्व है।

जो सुबुद्धि, सर्व प्राणी मात्र से समभाव रखता है, वह ममता से छूट जात है, वही अविनाशी पद को पाता है।

सब जीवों के प्रति, सभी भावों के प्रति, अखंड एक रस वीतराग दशा रखना ही सर्व ज्ञान का फल है। आत्मा शुद्ध चैतन्य- जन्म, जरा, मरण रहित असंग स्वरूप विमल स्वभावी है, इसमें सर्व ज्ञान समा जाता है।

ज्ञानी जीव भेदज्ञान के बल से राग, द्वेष, मोह को आत्मा से भिन्न करके वीतराग विज्ञानमय आत्मा का अनुभव करता है। राग, द्वेष, मोह को हटाने के लिये, ज्ञानी जीव-मोहनीय कर्म, राग, द्वेष, मोह भावों तथा उन्हें उत्पन्न करने वाले बाहरी द्रव्यों से परम उदासीन हो जाता है।

व्यवहार नय से देखने पर संसारी जीवों में भेद दिखता है, मित्र-शत्रु का, माता-पिता का, पुत्री-पुत्र का, स्वामी-सेवक का, ध्याता-ध्येय का, सुन्दर-असुन्दर का, रोगी-निरोगी का, धनिक-निर्धन का, विद्वान-मूर्ख का, बलवान-निर्बल का, कुलीन-अकुलीन का, साधु-ग्रहस्थ का, राजा-प्रजा का, देव-नारकी का, पशु-मानव का, स्थावर-त्रस का, सूक्ष्म-बादर का, पर्याप्त-अपर्याप्त का, प्रत्येक-साधारण का, पापी-पुण्यात्मा का, लोभी-संतोषी का, मायावी-सरल का, मानी-विनय वाले का, क्रोधी-क्षमाशील का, स्त्री-पुरुष का, बालक-वृद्ध का, बहिन-भाई का, अनाथ-सनाथ का, सिद्ध-संसारी का, ग्रहण योग्य या त्याग योग्य का भेद दिखता है, तब विषय भोग का लोलुपी, कषाय का धारी जीव, इष्ट से राग, अनिष्ट से द्वेष करता है। यह सब बाहरी व्यवहार में दिखने वाला जगत-राग द्वेष, मोह को पैदा करने का निमित्त हो जाता है।

ज्ञानी-मोह, राग, द्वेष भावों की मलिनता से बचने के लिये निश्चय नय से जगत को देखता है तब सर्व ही छह द्रव्य अपने मूल स्वभाव से अलग-अलग दीख पडते हैं। सर्व पुद्‌गल शुद्ध परमाणु रूप में, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, असंख्यात कालाणु सब ही अपने-अपने स्वभाव में दीख पड़ते हैं तथा सर्व ही जीव एक समान शुद्ध दीख पडते हैं। आप भी अपने को शुद्ध देखता है, तब सम भाव हो जाता है।

ज्ञानी आत्मानुभूति में रत ममल स्वभाव में रहने के लिये राग, द्वेष, मोह भाव को दूर कर, शुद्ध स्वभाव की साधना करता है। आत्मा का स्वभाव यथार्थ प्रतीति का धारी है। स्व को-स्व, पर को-पर, यथार्थ श्रद्धान करने वाला है व सर्व लोकालोक के द्रव्य, गुण, पर्यायों को एक साथ जानने वाला है। चारित्र गुण से यह परम वीतराग है। रत्नत्रय स्वरूप यह आत्मा अभेद दृष्टि से एक रूप है, परम निरंजन, निर्विकार, परम ज्ञानी, परम शान्त, परमानन्द

मय है । इस तरह बार-बार अपने आत्मा को ध्याता है तब परिणामों की स्थिरता होने पर ममल स्वभाव में लीन होता है यही मोक्ष मार्ग है ।

आत्मानुभव के समय अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है । इसी स्वाद को लेते हुये, आत्मानुभव करते हुये, ज्ञानी आत्म ध्यान में लीन क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर अरिहन्त परमात्मा होकर अनन्त सुख का भोगने वाला हो जाता है ।

तीन काल और तीन लोक में शुद्ध निश्चय नय से ज्ञान रस और आनन्द कन्द सच्चिदानन्द प्रभु केवल मैं हूँ। ऐसी दृष्टि ही शुद्ध दृष्टि है तथा मैं ऐसा हूँ और सब जीव भी भगवान स्वरूप हैं । परमात्म स्वरूप सभी जीव हैं। इसका नाम समभाव है। किसी के प्रति कोई भी राग, द्वेष, मोह का न होना सम भाव है । भूमिकानुसार-मैत्री, प्रमोद, कारूण्य, माध्यस्थ भाव का सहयोग होता ही है। ज्ञानी की भावना होती है-

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे ।
बैर-पाप अभिमान छोड जग, नित्य नये मंगल गावे ॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत-दुष्कर हो जावे ।
ज्ञान-चरित उन्नति कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे ॥

इस प्रकार ज्ञानी की शुद्ध दृष्टि और समभाव होने पर परमशांति आ जाती है। इसमें स्थित रहता हुआ ज्ञानी, कर्मों को क्षय कर मुक्ति प्राप्त करता है। फिर उसे आकुलता-व्याकुलता, उकताहट संकल्प-विकल्प नही होते। शान्त समता में सहजानन्द में अपनी साधना-करता रहता है।

प्रश्न- ज्ञानी अब किस तरह की साधना करता है ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं-

गाथा - २२

एकांत विप्रिय न दिस्टं, मध्यस्थं विमल सुद्ध सभावं ।
सुद्ध सहावं उत्तं, ममल दिस्टी च कम्म संषिपनं ॥

शब्दार्थ - (एकांत) एकान्त, एक पक्ष (विप्रिय) विपरीत पक्ष (न) नहीं (दिस्टं) देखता (मध्यस्थं) मध्यस्थ, सम भाव, बीच में साक्षी रहता है (विमल) मल रहित (सुद्ध सभावं) शुद्ध स्वभाव में (सुद्ध सहावं) शुद्ध स्वभाव की (उत्तं) कहा है, कहता है जाग्रत रखता है (ममल द्रिस्टी च) ममल दृष्टि के द्वारा (कम्म संषिपनं) कर्म क्षय होते हैं।

विशेषार्थ – ज्ञानी , एकान्त और विपरीत को नहीं देखता, वह मध्यस्थ, अपने विमल शुद्ध सम भाव में रत रहता है। अपने शुद्धात्म स्वभाव में जाग्रत रहने और ममल स्वभाव में दृष्टि रखने से सारे कर्म बन्ध क्षय हो जाते हैं।

(१) एकान्त– वस्तु, अनेकान्त स्वभाव रूप होते हुये भी उसे एक धर्म रूप या एकान्त रूप मानना एकान्त मिथ्यात्व है।

(२) विपरीत– वस्तु स्वरूप से जो विपरीत हो, उसको ठीक मानना, विपरीत मिथ्यात्व है। शुद्ध निश्चय नय को एकान्त से पकडने वाला, निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टि है।

व्यवहार नय को एकान्त पक्ष से पकडने वाला–व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि है। दोनों को एक सा मानने वाला उभयाभासी मिथ्यादृष्टि है।

ज्ञानी न निश्चय को पकडता है, न व्यवहार को पकडता है। वह तो नय से अतीत समभाव में अपने विमल शुद्ध स्वभाव को देखता है।

जीव में कर्म बंध हुआ है तथा स्पर्शित है, ऐसा व्यवहार नय का कथन है, और जीव में कर्म अबद्ध और अस्पर्शित है, ऐसा शुद्ध नय का कथन है।

जीव कर्म से बंधा हुआ है तथा नहीं बंधा हुआ है, यह दोनों–नय पक्ष हैं। उनमें से किसी ने बंध पक्ष ग्रहण किया, उसने विकल्प ही ग्रहण किया, किसी ने अबन्ध पक्ष ग्रहण किया, तो उसने भी विकल्प ही ग्रहण किया, और किसी ने दोनों पक्ष लिये, तो उसने भी पक्ष रूप विकल्प ग्रहण किया परन्तु ऐसे विकल्पों को छोडकर जो कोई भी पक्ष को ग्रहण नहीं करता, वही शुद्ध पदार्थ का स्वरूप जानकर उस रूप–समयसार, शुद्धात्मा को प्राप्त करता है।

नय पक्ष को ग्रहण करना राग है इसलिये समस्त नय पक्ष को छोड़ने से वीतराग समयसार हुआ जाता है।

जब तक कुछ भी पक्षपात रहता है, तब तक चित्त का क्षोभ नहीं मिटता। जब नयों का सब पक्षपात दूर हो जाता है तब वीतराग दशा होकर स्वरूप की श्रद्धा निर्विकल्प होती है। स्वरूप में प्रवृत्ति होती है और अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है।

इस प्रकार जिसमें बहुत से विकल्पों का जाल अपने आप उठता है। ऐसी बड़ी नय पक्ष कक्षा को उल्लंघन करके जो तत्व वेत्ता–भीतर और बाहर समता रस रूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है। जो अनुभूति मात्र एक अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। चैतन्य का अनुभव होने पर समस्त नयों का विकल्प रूपी इन्द्रजाल उसी क्षण विलय को प्राप्त होता है।

विपुल महान चंचल विकल्प रूपी तरंगों के द्वारा उडते हुये इस समस्त इन्द्र जाल को, जिसका स्फुरण मात्र ही तत्क्षण उडा देता है वह चिन्मात्र तेज पुंज विमल शुद्ध स्वभावी मैं हूँ। ऐसा ज्ञानी मध्यस्थ सम भाव में रहता है।

जैसे केवली भगवान सदा नय पक्ष स्वरूप के साक्षी (ज्ञाता-दृष्टा) हैं। उसी प्रकार श्रुतज्ञानी भी जब समस्त नय पक्षों से रहित होकर शुद्ध चैतन्य मात्र का अनुभव करते हैं, तब वे नय पक्ष के स्वरूप के ज्ञाता ही हैं, यदि एक नय का सर्वथा पक्ष ग्रहण किया जाये तो मिथ्यात्व के साथ मिला हुआ राग होता है, प्रयोजन वश एक नय को प्रधान करके उसका ग्रहण करे तो मिथ्यात्व के अतिरिक्त मात्र चारित्र मोह का राग रहता है और जब नय पक्ष को छोडकर वस्तु स्वरूप को मात्र जानते ही हैं तब उस समय श्रुतज्ञानी भी केवली की भाँति वीतराग जैसे ही होते हैं।

चित्स्वभाव के पुंज द्वारा ही अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किये जाते हैं, ऐसा जिसका परमार्थ स्वरूप है इसलिये जो एक है, शुद्ध है, ममल है। ध्रुव स्वभाव को मैं समस्त बन्ध पद्धति को दूर करके अर्थात् कर्मोदय से होने वाले सर्व भावों को छोडकर अपने शुद्ध स्वभाव का अनुभव करता हूँ। जब ऐसी शुद्ध स्वभाव की स्थिति ममल स्वभाव की दृष्टि होती है तो सारे कर्म क्षय हो जाते हैं।

पर्याय में अपने ही कारण अशुद्धता है, ऐसा न मानकर जो यह माने कि अकेला आत्मा ही शुद्ध है तो वह निश्चयाभाषी है तथा जो रागादि व्यवहार होता है, उसे आदरणीय मानने वाला व्यवहाराभाषी है, वे दोनों ही मिथ्यादृष्टि हैं।

किसी ज्ञानी का धारणा ज्ञान अल्प हो परन्तु प्रयोजनभूत ज्ञान तो समीचीन होता है अत: विरोध नहीं होता। वह कदाचित् विशेष स्पष्टीकरण न कर सके परन्तु उसे स्वभाव की अपेक्षा तथा पर की उपेक्षा होने से ज्ञान प्रति समय विशेष-विशेष निर्मल होता जाता है। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान पूर्वक जितना वीतराग भाव हुआ उतना संवर धर्म है। उस समय पूर्व कर्म बंध क्षय होते हैं तथा उसी समय जो रागांश है, सो आश्रव है। एक ही समय में ऐसे दोनों भाव मिश्र रूप हैं। धर्मी जीव उनको भिन्न-भिन्न

पहिचानता है।

जीव कर्मों से बंधा हुआ है, ऐसा एक नय का पक्ष है और नहीं बंधा हुआ है, ऐसा दूसरे नय का पक्ष है। इस प्रकार चित्स्वरूप जीव के सम्बंध में दो नयों के दो पक्ष हैं। जो तत्व वेत्ता वस्तु स्वरूप का ज्ञाता ज्ञानी, पक्षपात रहित है, उसे निरन्तर चित्स्वरूप जीव–चित्स्वरूप ही है अर्थात् उसे चित्स्वरूप जीव जैसा है, वैसा ही निरन्तर अनुभव में आता है।

जो शुद्ध नय का भी पक्षपात (विकल्प) करेगा, वह भी उस शुद्ध स्वरूप के स्वाद को प्राप्त नहीं करेगा। अशुद्ध नय की तो बात ही क्या है; इसलिये ज्ञानी सब पक्षपात, नय विकल्प छोडकर चिन्मात्र–विमल शुद्ध स्वरूप में लीन, स्वरूप में प्रवृत्ति रूप चारित्र प्राप्त करके वीतराग दशा प्राप्त करता है। इससे ही सब कर्म क्षय होते हैं और अरिहन्त, सिद्ध पद प्रगट होता है।

प्रश्न– जब कर्म जड़ हैं, उनका परिणमन उनमें चलता है, जीव का परिणमन जीव में चलता है फिर जीव के अपने शुद्ध ममल–स्वभाव में रहने से कर्म कैसे क्षय होते हैं।

समाधान– जैसे जीव के अज्ञान भाव– मोह, राग–द्वेषादि से कर्मों का बंध होता है, वैसे ही जीव के ज्ञान स्वभाव वीतराग भाव में रहने से कर्म क्षय होते है, ऐसा ही निमित्त–नैमित्तिक सम्बध है। इस आत्मा के क्रोधादिक मोहनीय कर्म की प्रकृति का अर्थात् राग–द्वेष का उदय आने पर, अपने उपयोग में उसका राग–द्वेष रूप मलिन स्वाद आता है।

अज्ञानी को स्व–पर का भेदज्ञान न होने से यह मानता है कि यह राग द्वेष भाव मलिन उपयोग ही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ। इस प्रकार राग–द्वेष में अहबुद्धि करता हुआ अज्ञानी अपने को रागी–द्वेषी करता है इसलिये वह कर्मों को करता है। इस प्रकार अज्ञानमय भाव से कर्म बंध होता है।

ज्ञानी को भेदज्ञान होने से वह ऐसा जानता है कि ज्ञान मात्र शुद्ध उपयोग है वही मेरा स्वरूप है, वही मैं हूँ। राग–द्वेष कर्मों का रस है, यह मेरा स्वरूप नहीं है। इस प्रकार राग–द्वेष में अहं बुद्धि न करता हुआ ज्ञानी–अपने को रागी–द्वेषी नहीं करता। इस प्रकार ज्ञानमय भाव से कर्म बन्ध नहीं होता तथा स्वरूप लीनता, वीतराग भाव से पूर्व बद्ध कर्म निर्जरित क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न – यह ठीक है कि जीव का और कर्म का निमित्त–नैमित्तिक सम्बंध अज्ञान जनित है परंतु ''परस्परोपग्रहो जीवानां'' परस्पर में एक जीव दूसरे जीव का उपकार तो करता है, जैसे आपके द्वारा हमें ज्ञान प्राप्त हुआ, यह निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध तो ठीक है ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं–

गाथा –२३

सत्वं किलिस्ट जीवा, अन्मोयं सहकार दुग्गए गमनं ।
जे विरोह सभावं, संसारे सरनि दुष्य वीयंमी ॥

शब्दार्थ– (सत्वं) संसार के सारे (जीवा) जीव, प्राणी,(किलिस्ट) क्लेश में महान दुखी हैं (अन्मोयं) अनुमोदना (सहकार) साथ देना (दुग्गए) दुर्गति में (गमनं) गमन होता है (जे) जो जीव (विरोह सभावं) स्वभाव के विरोधी–अज्ञान दशा में हैं (संसारे सरनि) संसार का परिभ्रमण, संसार चक्र (दुष्य वीयंमी) दु:खों का बीज बोते हैं।

विशेषार्थ– संसार में अज्ञान दशा में सब जीव, बडे क्लेश में महान दु:खी हैं तथा इसी अज्ञान दशा में, कषायाधीन एक दूसरे की अनुमोदना करते हुए उसमें सहयोगी बनते हैं, उन जीवों का दुर्गति में गमन होता है।

जो जीव आत्म–स्वभाव का विरोध करते हैं, संसारी व्यवहार और राग को धर्म मानते हैं, वे संसार में चार गति चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करने के लिये दु:खों का बीज बोते हैं।

वीतरागता ही धर्म है, पूर्ण वीतरागी ही मुक्ति पाते हैं। जहाँ राग का अंश है – वहाँ बंधन है।

भगवान की दिव्य ध्वनि खिरती है, देशना होती है पर उससे किसका क्या होता है, किसको लाभ होता है, इस ओर भगवान का उपयोग जाता ही नहीं है। इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि को भी विकल्प उठते हैं और वाणी निकलती है, पर वे यह नहीं देखते कि किसको लाभ हुआ, कितना लाभ हुआ, वे तो निजात्मा को ही देखते हैं।

सर्वज्ञ परमात्मा–जिनेन्द्र देव ने जिस आत्मा को ध्रुव कहा है, उसका जो जीव अवलम्बन ले, उसे उस ध्रुव स्वभाव में से शुद्धता प्रगट होती है तभी उस जीव का उपकार होता है।

संसार में – अज्ञान दशा में कोई जीव किसी जीव का उपकार कर ही नहीं

सकता।

अन्धे, अन्धा ठेलिया – दोनों कूप पडन्त।

अन्धा–अन्धे को क्या मार्ग बतायेगा ? संसार में अनादि काल से सब जीवों का, चार गतियों में भ्रमण हो रहा है। चारों गतियों में क्लेश व चिन्तायें होती हैं। शारीरिक व मानसिक दु:ख जीव को कर्मों के उदय से भोगना पड़ते हैं। जन्म और मरण का महान क्लेश तो चारों गतियों में है।

नरक गति में आगम के प्रमाण से तीव्र शारीरिक व मानसिक दु:ख जीव को बहुत काल सहने पडते हैं। वहाँ दिन–रात मार–धाड रहती है। नारकी परस्पर–नाना प्रकार शरीर की अपृथक् विक्रिया से पशु रूप व शस्त्रादि बनाकर दु:ख देते हैं और सहते हैं। तीसरे नरक तक संक्लेश परिणामों के धारी असुर कुमार देव भी उनको लडाकर क्लेश पहुँचाते हैं। वैक्रियक शरीर होता है, पारे के समान गलकर फिर बन जाता है। तीव्र भूख–प्यास और शीत–उष्ण की वेदना सहना पडती है और यह अज्ञान जनित–तीव्र कषाय द्वारा एक दूसरे जीव के प्रति विरोध के कारण ऐसी दुर्गति भोगना पडती है।

तिर्यंच गति में एकेन्द्रिय स्थावर–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि प्राणियों को पराधीन पने, निर्बलता से घोर कष्ट सहने पडते हैं। निगोदिया जीव का तो एक श्वास में अठारह बार जन्म–मरण होता है। द्वीन्द्रिय–लट आदि, तीन इन्द्रिय–चींटी खटमल आदि, चौइन्द्रिय–मक्खी पतंगे आदि यह तीनों विकलत्रय, महान कष्ट से जीवन बिताते हैं। मनुष्य और पशुओं के चलने–फिरने से इनका मरण होता रहता है। पंचेन्द्रिय पशु–थलचर गाय, भैंस आदि। जलचर– मगरमच्छ, कछुआ आदि। नभचर–कबूतर मोर काक आदि व सर्पादि पशु कितने कष्ट से जीवन बिताते हैं, सो प्रत्यक्ष–प्रगट है। मानवों के अत्याचार–शिकार आदि व्यसन से अनेक पशु मारे जाते हैं। भार वहन, गर्मी–सर्दी, भूख–प्यास परस्पर, बैर–विरोध से घोर कष्ट सहते हैं और यह सब कष्ट जीव के अज्ञान दशा में मोह और मायाचारी करने से भोगना पडते हैं।

मनुष्य गति में – इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, रोग–दारिद्र, अपमान आदि के घोर शारीरिक व मानसिक कष्ट, भय–चिन्ता, संकल्प–विकल्प आदि सहने पड़ते हैं, यह तो सब प्रत्यक्ष ही हैं। यहाँ अपने आत्म स्वरूप को न जानकर मुक्ति मार्ग पर न चलकर–अज्ञान दशा में परस्पर एक दूसरे जीव से बैर–विरोध, मोह–राग–द्वेष–इष्ट मित्रता आदि द्वारा राग–द्वेष करके कर्म बंध करता

है, जो एक दूसरे जीव का बैरानुबन्ध-अक्रमानुबन्ध-मोहानुबन्ध-प्रीतानुबन्ध द्वारा-जन्म-जन्मान्तर में भुगतना पडता है।

देव गति में मानसिक कष्ट अपार हैं। छोटे देव, बडे देवों की विभूति देखकर कुढ़ते हैं। देवियों की आयु थोड़ी होती है। देवों की आयु बडी होती है इसलिए देवियों के वियोग का बडा कष्ट होता है। मरण निकट आने पर अज्ञानी देवों को बड़ा कष्ट होता है।

इस प्रकार चारों गतियों में दु:ख ही दु:ख विशेष हैं। संसार में सबसे बडा दु:ख - आशा मोह और तृष्णा का है। इन्द्रियों के भोगों की लालसा- आहार, भय, मैथुन, परिग्रह (निद्रादि) चार संज्ञायें सब जीवों को होती हैं। इससे मिथ्यादृष्टि, संसाराशक्त प्राणियों को संसार भ्रमण में दु:ख ही दु:ख होता है, यहाँ जो उनकी अनुमोदना करते हैं, सहकार करते हैं, वे जीव ऐसी ही दुर्गति भोगते हैं।

विचारवान, विवेकी को अपनी आत्मा पर करूणा लाना चाहिये तथा यह भय लगना चाहिये कि हमारा आत्मा संसार के ऐसे क्लेशों को न सहे। यह आत्मा इस भव वन में न भ्रमे, भव सागर में न डूबे। जन्म, जरा, मरण के घोर क्लेश न सहे।

इसके लिये बुद्धिमान को इस दु:खमय संसार से उदासीन होकर मोक्ष पद पाने की लालसा- उत्कंठा-भावना करनी चाहिए। मोक्ष पद में सर्व सांसारिक कष्टों का अभाव है। राग-द्वेष, मोहादि विकारों का अभाव है। सब पाप-पुण्य कर्मों का अभाव है इसलिए उसे निर्वाण कहते हैं। वहाँ सब पर की शून्यता है। सत्ता एक शून्य विन्द- अपने आत्मस्वरूप की सत्ता है। परमानन्दमयी, दिव्य चेतना का शाश्वत प्रकाश है। निरन्तर अतीन्द्रिय आत्मीक आनन्द की षट् गुणी वृद्धि होती रहती है। जन्म-मरण से रहित हो जाता है।.

सम्यक्दृष्टि महात्मा-परम आनन्द व परम ज्ञान की विभूति से पूर्ण शिव पद को पाते हैं। जहाँ - जरा नहीं, रोग नहीं, भय नहीं, बाधा नहीं, शोक नहीं, मोह नहीं,शंकादि कुछ नहीं रहती, यह सब आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान, आत्मानुभव से होता है।

सद्गुरू कहते हैं इसके लिये भेदविज्ञान की शक्ति से अपने आत्मा के स्वरूप का विचार करो, निर्णय करो, अनुभूति करो। सच्चा श्रद्धान करो तथा साथ में जिन-जिन शरीरादि-नो कर्म, मोह, राग-द्वेषादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का संयोग है, उन-उनको आत्मा से भिन्न विचार करके उनका मोह

छोड़ दो। एक जीव का दूसरे जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, न कर सकता। एक पर्याय भी दूसरी पर्याय में सहकारी,सहायक नहीं है; फिर पर जीव, पर वस्तु शरीरादि से अपना (आत्मा का) क्या सम्बन्ध है ? मोक्ष अपने ही आत्मा का शुद्ध स्वभाव है और उसका उपाय भी केवल एक अपने शुद्ध आत्मा का ज्ञान-ध्यान करना है।

सिद्ध के समान अपने आत्मा का ध्यान करना ही इष्ट हितकारी है। भेदविज्ञान के प्रताप से ध्यान करने वाला आप ही अपने को परमात्मा रूप देखता है। जैसे दूध पानी मिले हों तो भी दूध, पानी से भिन्न-अनुभव सिद्ध दिखता है। गर्म पानी में, पानी का अग्नि का स्वभाव अलग अनुभव में आता है व्यंजन में लवण व तरकारी का स्वाद अलग अनुभव में आता है, लाल पानी में पानी व लाल रंग का स्वभाव अलग दिखता है। तिलों में भूसी व तेल अलग दिखता है। धान्य में तुष और चावल अलग दिखता है। दाल में छिलका व दाल अलग-दिखती है। वैसे ही ज्ञानी को अपनी आत्मा-रागादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म, शरीरादि नो कर्म से भिन्न दिखती है। जैसे ज्ञानी को अपना आत्मा सर्व पर भावों से, पर द्रव्यों से भिन्न दिखता है, वैसे ही अन्य संसारी प्रत्येक आत्मा सर्व पर भावों से भिन्न दिखते हैं।

सर्व सिद्ध व संसारी आत्मायें एक समान परम निर्मल वीतराग ज्ञानानन्द-स्वभावी दिखती है, इस दृष्टि को शुद्ध दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि से देखने वाले के अंतर में समभाव आ जाता है। राग-द्वेष-मोह का विकार मिट जाता है, पर से एकत्व-अपनत्व-कर्तृत्व छूट हो जाता है। इसी समभाव में एकाग्र होना ध्यान है, यही मुक्ति मार्ग है।

आत्मा ही परमात्मा है। परमात्मा कर्म मल रहित है, केवल स्वाधीन है। साध्य को सिद्ध करके शुद्ध हैं। सब द्रव्यों की सत्ता से निराला सत्ता का धारी है। वही अपना वीर्य धारी प्रभु है, वही अविनाशी है। परम पद में रहने वाला परमेष्ठी है, वही श्रेष्ठ आत्मा है, वही शुद्ध गुण रूपी ऐश्वर्य का धारी ईश्वर है, वही परम विजयी जिनेन्द्र है।

आत्मा ही आनन्द का धाम है, उसमें अन्तर्मुख होने से ही सुख है। ऐसे अपने आत्म स्वभाव का जो विरोध करते हैं और संसारी व्यवहार-जीवों के दया-दान-परोपकार आदि रागभाव को धर्म मानते हैं, वे संसार परिभ्रमण के दु:ख का बीज बोते हैं।

अज्ञानी जीव अनादि काल की परिपाटी से संसार में कर्मोदय के साथ

परिणमन या व्यवहार करता हुआ, उसी का अपने को कर्ता तथा भोक्ता मान रहा है। यह मैंने अच्छा किया, यह बुरा किया, मैं सुखी हूँ, मैं दु:खी हूँ। मैं इसका ऐसा कर सकता हूँ इसका वैसा कर सकता हूँ, इसको सुख दे सकता हूँ, इसको दु:ख दे सकता हूँ, इसको मार सकता हूँ, इसको जिला सकता हूँ। ऐसे भ्रम-अज्ञानमयी जीव के परिणामों का निमित्त पाकर पौद्‌गलिक कर्म वर्गणायें स्वयं कर्म रूप होकर बंध जाती हैं। जब यह जीव स्वयं अपने अशुद्ध भावों में परिणमन करता है, तब उस समय पूर्व में बंधा पौद्गलिक कर्म उदय में आकर उस अशुद्ध भाव का निमित्त होता है। इस तरह कर्म फल, भावों को व कर्मों के बंध को व कर्म के उदय को बहिरात्मा अपना मान लेता है।

निश्चय से आत्मा सर्व कर्म भावों से जुदा है। पुद्‌गल-शरीरादि से भिन्न है और सर्व पर जीवों से अत्यन्त भिन्न है। ऐसे अपने आत्मस्वभाव का श्रद्धान न करता हुआ जो आत्मा की, धर्म की विराधना करता है, कहता है, क्या आत्मा-आत्मा लगा रखा है। पहले शुभ भाव कर लो, कषाय मन्द कर लो, जीवों का उपकार दया, दानादि करो, इसी से कल्याण होगा। आत्मा, परमात्मा को किसने देखा है, कहाँ है ? आत्मा-आत्मा रटने से पेट नहीं भरता है। पहले सब जीवों को सुखी करो। संसारी व्यवहार निभाओ, इस प्रकार अपने आत्म स्वभाव, धर्म का विरोध करता है, वह संसार भ्रमण के दु:ख का बीज बोता है, जिससे चतुर्गति संसार में रूलना पडता है।

अज्ञानी बहिरात्मा को यही प्रतिभास भ्रम रहता है कि यह सब संयोग-विकार भाव आदि मेरे हैं, यही सब करना मेरा धर्म है। यही संसार भ्रमण का बीज है। यह बीज संसार वृक्ष को बढाता है और इससे बहिरात्मा अन्धा मोही होकर संसार वन में भटकता रहता है।

मुझे पर की चिन्ता का क्या प्रयोजन ? मेरा आत्मा सदैव अकेला है, ऐसा ज्ञानी जानते हैं। भूमिकानुसार शुभ भाव आये, परन्तु अन्तर में एकाकीपने की प्रतीतिरूप परिणति निरन्तर बनी रहती है। संसार में जीवों की भूमिकानुसार शुभ भाव-करूणा आदि होने से सहज ही दया, दान, परोपकार रूप परिणमन चलता है, जो जीवों को संसार में भी सहयोगी हितकारी होता है। इस अपेक्षा, ''परस्परोपग्रहो जीवानां'' कहने में आता है।

ज्ञानी सम्यक्‌दृष्टि, सद्‌गुरू-परमात्मा, अपनी भूमिका अनुसार चलते हैं, जिससे जिन जीवों की पात्रता होनहार होती है, उनका भला हो जाता है। इस अपेक्षा निमित्त कहने में आता है, पर वस्तुत: ऐसा है नहीं। सभी जीव अपनी-

अपनी योग्यतानुसार ही परिणमन करते हैं। ऐसा वस्तु स्वरूप जानकर, वीतराग भाव धारण करना ही इष्ट प्रयोजनीय है।

जो न हो सके, वह कार्य करने की बुद्धि करना मूर्खता की बात है। अनादि से यह जीव जो नहीं हो सकता, उसे करने की बुद्धि करता है और जो हो सकता है, वह नहीं करता।

प्रश्न– हमें एक मात्र क्या करना चाहिए जिससे इस चतुर्गति दु:ख से छूटकर मुक्ति की प्राप्ति हो ?

इसके समाधान में श्री गुरू तारण तरण देव आगे गाथा कहते हैं–

गाथा–२४

न्यान सहाव सु समयं, अन्मोयं ममल न्यान सहकारं।
न्यानं न्यान सरूवं, ममलं अन्मोय सिद्धि संपत्तं ॥

शब्दार्थ– (न्यान सहाव) ज्ञान स्वभाव, शुद्ध चैतन्य ज्योति, केवलज्ञान मात्र, (सु समयं) स्वसमय शुद्धात्मा– अपना निज स्वभाव (अन्मोयं) आलम्बन करो, चिन्तवन करो,मनन करो, मंथन करो, अनुमोदना करो, लीन रहो (ममल) अनाद्यनिधन, शुद्ध (न्यान) ज्ञानमात्र (सहकारं) स्वीकार करो, उस मय रहो (न्यानं न्यान सरूवं) ज्ञान, मात्र ज्ञान स्वरूप है, अपने स्वरूप का बार–बार ज्ञान ही ज्ञान करो, स्मरण ध्यान करो (ममलं) ममल स्वभाव, ध्रुव तत्व शुद्धात्मा में (अन्मोय) लीन होने (सिद्धि संपत्तं) सिद्धि की सम्पत्ति, अनन्त चतुष्टय, रत्नत्रय, पंच परमेष्ठी पद, पंच ज्ञान, परमानन्द, परमात्म पद, मुक्ति की प्राप्ति होगी।

विशेषार्थ– निज शुद्धात्मा, अपना शुद्ध स्वरूप, शुद्ध चैतन्यमयी ज्ञान स्वभावी है, इसी सत्स्वरूप की अनुमोदना करो, इसी ममल ज्ञान स्वभाव में लीन रहो। अपने शुद्ध ज्ञान स्वभाव का बार–बार ज्ञान ध्यान, स्मरण, चिन्तन, मनन करो, लीन रहो, शुद्ध ज्ञान स्वभाव में लीन होना सम्यक्चारित्र है। हे साधक ! ममल स्वभाव में लीन हो जाओ, इस सम्यक्चारित्र से ही सिद्धि की सम्पत्ति, मुक्ति की प्राप्ति होती है।

पूर्ण गुणों से अभेद ऐसे पूर्ण आत्म द्रव्य पर दृष्टि करने से, उसी के आलम्बन से पूर्णता प्रगट होती है। अपने ज्ञान स्वभाव, अखंड द्रव्य का आलम्बन, वही अखंड एक परम पारिणामिक भाव का आलम्बन है। ज्ञानी का जोर–पुरूषार्थ सदा अखंड शुद्ध द्रव्य, ममल स्वभाव पर ही रहता है; इसलिये सब छोडकर

एक शुद्धात्म तत्व, स्व समय, ज्ञान स्वभाव, परम पारिणामिक भाव के प्रति दृष्टि रखो, उसी का निरन्तर स्मरण, ध्यान, चिन्तन, मनन, अवलोकन करो, उसी में लीन रहो। इसी से सिद्धि की सम्पत्ति, अनन्त चतुष्टय, रत्नत्रय, परमेष्ठी पद, पंच ज्ञान, परमानन्द, परमात्म पद, मुक्ति की प्राप्ति होगी।

जिसने भेदज्ञान पूर्वक निज शुद्धात्मानुभूति की है, उसका पुरूषार्थ तो एक मात्र उसमें लीन होने का चलता है फिर उसे बाह्य का कुछ रूचता नहीं है। बोलना, देखना, खाना, पीना, छूटने लगता है। चैतन्य चमत्कार स्वरूप स्व संवेदन ही साधक का लक्षण है। जो अन्तर की गहराई मे राग के एक कण, अंश को भी लाभ रूप मानता है, उसे आत्मा के दर्शन नहीं होते। निस्पृह आकिंचन, वीतराग होना कि मुझे कुछ नहीं चाहिये, मेरा कोई नहीं है, कुछ नहीं है। बस शुद्धात्मा, ध्रुव-ध्रुव-ध्रुव एक आत्मा की लगन लगे, इसी का ज्ञान-ध्यान-स्मरण-आलम्बन और ममल स्वभाव में लीनता-यही मुक्तिमार्ग है।

सम्यक्दृष्टि का यह पुरूषार्थ सहज है, हठ पूर्वक नहीं है। शुद्ध दृष्टि प्रगट होने के बाद वह एक ओर पडी रहे, ऐसा नहीं होता, वह तो सहज-सतत् ज्ञान धारा चलती ही रहती है। शुद्ध दृष्टि परम तत्व में अविचल है। प्रतिकूलता के समूह आयें, सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाये तथापि ज्ञानी-अपने ज्ञान स्वभाव में अविचल स्वरूप में स्थित रहते हैं, ऐसी सहज दशा है।

जिस प्रकार अज्ञानी को - यह शरीर ही मैं हूं, यह शरीर मेरा है, यह मेरा नाम है, ऐसा सहज ही स्मरण-ज्ञान-ध्यान रहता है। उसे याद नहीं करना पडता, इसी प्रकार ज्ञानी को मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा-ज्ञायक ही हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है, ऐसी सहज परिणति वर्तती रहती है, याद नही करना पडता, सहज पुरूषार्थ वर्तता रहता है। इसी साधना के सतत् अभ्यास से ज्ञान का अन्तर्मुहूर्त का स्थूल उपयोग छूटकर एक समय का सूक्ष्म उपयोग हो जाता है। वह ज्ञान अपने क्षेत्र में रहकर सर्वत्र पहुँच जाता है, लोकालोक को जान लेता है। भूत-वर्तमान-भविष्य की सर्व पर्यायों को क्रम पडे बिना एक समय में वर्तमानवत् जानता है। स्व-पदार्थ तथा अनन्त पर पदार्थों की तीनों कालों की पर्यायों को एक समय में प्रत्यक्ष जानता है, ऐसा अचिन्त्य महिमामयी केवल ज्ञान प्रगट हो जाता है।

जब तक अपना ज्ञानमयी सत्स्वरूप-ममल स्वभाव ख्याल में न आये, उसका यथार्थ ज्ञान श्रद्धान न हो, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे, और

कहाँ से प्रगट हो ? इसलिये अपने स्व समय शुद्धात्मा–ज्ञान स्वभाव का निर्णय कर उसका आश्रय आलम्बन–स्मरण–ध्यान करना ही साधक की साधना है। साधक को आश्रय तो आरम्भ से पूर्णता तक एक ध्रुव तत्व–शुद्धात्मा–ममल स्वभाव–ज्ञान स्वरूप का ही होता है। शुद्ध दृष्टि–ध्रुव तत्व अखंड ज्ञान स्वभाव के सिवाय किसी पर ध्यान नहीं देती। अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुण भेद पर नहीं, बस एक अखंड ध्रुव–ध्रुव–ध्रुव, ममल स्वभाव ही दृष्टि में निरन्तर झूलता है। बाह्य में सब कुछ हो, उसमें भक्ति उल्लास के कार्य हों तो भी उनमें आत्मा का आनन्द नहीं है। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द वही सच्चा आनन्द है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञान स्वभाव ममल भाव को ग्रहण करके जब साधक प्रमत्त–अप्रमत्त स्थिति में झूलते हैं, वह साधु पद मुनि दशा धन्य है। साधु को एकदम स्वरूप रमणता जाग्रत है। स्वरूप कैसा है, ज्ञान–आनन्दादि गुणों से भरपूर है। पर्याय में समता भाव प्रगट है। शत्रु–मित्र के विकल्प रहित है, निर्मानता है। ''देह जाय पर माया होय न रोम में'' सोना हो या तिनका सब समान है। चाहे जैसे संयोग हों, अनुकूलता में आकर्षित नहीं होते, प्रतिकूलता में खेद नहीं करते। ज्यों–ज्यों आगे बढते हैं, त्यों–त्यों सम रस भाव अतीन्द्रिय आनन्द विशेष प्रगट होता है। जहाँ आठवें गुण स्थान से क्षपक श्रेणी माडकर, ध्यान समाधि में लीन हुये, शुक्ल ध्यान होते ही अडतालीस मिनिट में देवता–जय–जय कार करते हुये आते हैं। बस, यही मुक्ति मार्ग है।

चतुर्गति के दु:ख से छूटने और मुक्त होने का एक ही उपाय है कि सहज ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त गुण समृद्धि से परिपूर्ण जो निज शुद्धात्म तत्व–ममल स्वभाव है, उसे अपूर्ण–विकारी और–पूर्ण पर्याय की अपेक्षा बिना लक्ष्य में लेना अपने ध्रुव स्वभाव का लक्ष्य करना, वह द्रव्य दृष्टि है, शुद्ध दृष्टि है, यथार्थ ज्ञान करके अपने ममल स्वभाव में एकाग्र होना, तब ही परमात्म रूप समयसार अनुभूत होता है। आत्मा का अपूर्व और अनुपम अतीन्द्रिय आनन्द अनुभव में आता है। आनन्दामृत के झरने झरते हैं। इससे संसार से दृष्टि हट जाती है, व्यवहार छूट जाता है, वीतरागता प्रगट होती है यही सम्यक्चारित्र मुक्ति मार्ग है।

जैसे सिद्ध भगवान किसी के आलम्बन बिना–स्वयमेव अतीन्द्रिय

ज्ञानानन्द स्वरूप में परिणमन करने वाले दिव्य सामर्थ्यवंत देव हैं, तादृश सभी आत्माओं का स्वभाव ज्ञानानन्दमयी है। ऐसा निरावलम्बी ज्ञान और सुख स्वभाव रूप मैं हूँ। ऐसा लक्ष्य में लेने पर ही जीव का उपयोग अतीन्द्रिय होकर उसकी पर्याय में ज्ञान और आनन्द खिल जाता है। पूर्व में कभी अनुभव में नहीं आई, ऐसी चैतन्य शांति वेदन में आती है। इस तरह आनन्द का अगाध सागर प्रतीति में, ज्ञान में और अनुभूति में आ जाता है। स्वयं का परम इष्ट परम सुख प्राप्त होता है और अनिष्ट रूप सारा जन्म-मरण का दुःख दूर हो जाता है।

जड़ शरीर की क्रिया, व्यवहार साधन से चतुर्गतिरूप संसार नहीं मिटता, अनादि अनन्त ऐसा जो एक निज शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, उसके स्व सम्मुख होकर आराधना करना, वही परमात्मा होने का सच्चा उपाय है।

जिसे मुक्ति चाहिये, संसार परिभ्रमण से छूटना है, उसे सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्ग ही स्वीकार करना होगा, निश्चय रत्नत्रय की साधना ही यथार्थ मोक्षमार्ग है। व्यवहार रत्नत्रय साधन है। साधक जीव प्रारम्भ से अंत तक निश्चय की ही मुख्यता रखकर व्यवहार को गौण ही करते जाते हैं। इससे साधक दशा में निश्चय की मुख्यता के बल से शुद्धता की वृद्धि होती है, अशुद्धता टलती जाती है। इस प्रकार निश्चय की मुख्यता के बल से पूर्ण केवलज्ञान होने पर, वहाँ मुख्य गौणपना नहीं होता और नय भी नहीं होते हैं।

अपने ज्ञान स्वभाव-शुद्ध स्वरूप को ध्येय बनाकर उसमें एकाग्रता का प्रयत्न करना, यही मुक्ति मार्ग है।

अपना स्वरूप ज्ञान स्वभावी है, यह शरीरादि रूप नहीं है, ऐसा दृढ निश्चय श्रद्धान-ज्ञान करके, ममल स्वभाव में रहना। इसी का बार-बार चिन्तन-मनन करना। "पर परजय हो दिष्टि न देई, सो ममल सुभाये" पर पर्याय पर दृष्टि न देना ही ममल स्वभाव है। "अप्पा अप्पम्मि रओ" आत्मा-आत्मा में लीन हो जाये, यही मुक्ति मार्ग है। इसी से केवलज्ञान प्रगट होता है, सिद्ध परम पद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- हम पूरा जोर लगाते हैं, पुरूषार्थ करते हैं कि अपने ममल स्वभाव में रहें परन्तु यह पर पर्याय में इष्ट-अनिष्टपना, कर्मोदय का भयभीतपना नहीं मिटता, इसके लिये क्या करें?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं–

गाथा–२५

इस्टं च परम इस्टं, इस्टं अन्मोय विगत अनिस्टं ।
पर पर्जावं विलियं, न्यान सहावेन कम्म जिनियं च ॥

शब्दार्थ– (इस्टं) परमात्मा, प्रयोजनीय, प्रिय, इष्ट, ज्ञान स्वभाव है (च) और (परम इस्टं) निज शुद्धात्मा, सिद्ध स्वरूप, परमात्मा पद (इस्टं) इसी इष्ट में, मूल लक्ष्य (अन्मोय) लीन रहो, आलम्बन लो, आश्रय करो (विगत) छूट जायेंगे (अनिस्टं) सारे अनिष्ट, रागादि विकारी भाव (विलियं) विला जायेंगे (पर) शरीरादि संयोग (पर्जावं) पर्यायी परिणमन, अन्तरंग में चलने वाले भाव (न्यान सहावेन) ज्ञान के बल से, ज्ञान स्वभाव की साधना से, ज्ञानोपयोग द्वारा (कम्म जिनियं च) कर्मों को जीतो, कर्मों को जीत जाओगे।

विशेषार्थ – निज शुद्धात्मा–ज्ञान स्वभाव ही इष्ट और परम इष्ट है। अपने इष्–चैतन्य मय, ज्ञान स्वभावी शुद्धात्म स्वरूप का आश्रय करो, आलम्बन लो, लीन रहो। इससे अनिष्टकारी समस्त रागादि विकार छूट जायेंगे, पर पर्यायें विला जायेंगी, ज्ञान बल लगाओ, ज्ञान स्वभाव की साधना करो। अपने ज्ञान–स्वभाव में रहकर कर्मों को जीतो। अब कर्मोदय से डरते क्यों हो ?

पर पर्याय की ओर की वृत्ति– चाहे वह शुभ हो, चाहे वह अशुभ हो, सब अनिष्ट ही है। स्व–स्वरूप की वृत्ति –अनुभूति ही इष्ट है। पर दृष्टि– पर भाव में आकुलता, चिन्ता, भय, दु:ख होते हैं। स्व दृष्टि–स्वभाव में– निराकुलता, सुख, शांति, आनन्द होता है। बहुत से जीव विकल्प का, पर भावों का अभाव करना चाहते हैं तथा स्थूल विकल्प अल्प हो जाने पर या अशुभ रूप से–शुभ रूप हो जाने पर विकल्प का अभाव मानते हैं परन्तु वास्तव में जिसका लक्ष्य, विकल्प का अभाव करने का है, उसके विकल्प का अभाव नहीं होता लेकिन जिसमें विकल्प का ही अभाव है, ऐसे शुद्ध चैतन्य को लक्ष्य में लेकर एकाग्र होने से विकल्प का अभाव हो जाता है। मैं इस विकल्प का निषेध करूं, रोकूं, बदलूं जिसका ऐसे विकल्प का निषेध करने की ओर लक्ष्य है। उसका लक्ष्य शुद्ध आत्मा की ओर स्व सन्मुख ही नहीं हुआ, उल्टे विकल्प की ओर ही झुका है अत: उसके तो विकल्प की ही उत्पत्ति होगी। शुद्ध आत्मा की ओर

ढलना ही विकल्प के अभाव होने की रीति है। उपयोग का झुकाव- अन्तर्मुख स्वभाव, अपने इष्ट की ओर होने से सारे अनिष्ट रूप विकल्प छूट जाते हैं।

निज शुद्धात्म स्वरूप में मिथ्यात्व व रागादि विभाव हैं ही नहीं, उसमें रूचि करने, तन्मय होने पर मिथ्यात्वादि टलता है। अपने इष्ट का आलम्बन लेने पर ही अनिष्ट से छुटकारा होता है। संयोगों का लक्ष्य छोड दे और निर्विकल्प निज स्वरूप का आश्रय ले।

ॐकार स्वरूप परमात्मा, सिद्ध स्वरूपी, ध्रुव तत्व मैं हूँ। ऐसा सत्श्रद्धान ज्ञान, दृढता, स्थिरता होने से समता, शांति, आनन्द होगा, सब दु:ख और अनिष्ट का नाश होगा।

दृष्टि का विषय द्रव्य स्वभाव है। इष्ट और परम इष्ट निज शुद्धात्मा है। उसमें तो अशुद्धता की उत्पत्ति ही नहीं है परन्तु समकिती को अन्तर शुद्ध स्वरूप की इष्टता और स्वानुभव होने पर भी अभी आसक्ति-शेष है। जो उसे दु:ख रूप अनिष्ट लगती है। रूचि और दृष्टि की अपेक्षा से भगवान आत्मा तो अमृत स्वरूप आनन्द का सागर है। जिसका प्रत्यक्ष अनुभव सम्यक्दृष्टि ज्ञानी करता है। ज्ञानी अपने इष्ट और परम इष्ट स्वरूप के आलम्बन द्वारा अन्तर स्वरूप में स्थिरता करता है, तब सारे अनिष्ट रूप रागादि परिणाम और पर पर्याय विला जाती हैं।

प्रश्न- जब आत्मा में रागादि विकारी भाव, पर पर्याय, कर्मादि हैं ही नहीं, तो फिर यह होते क्यों हैं ?

समाधान- शुद्ध निश्चय नय, द्रव्य स्वभाव-सिद्ध स्वरूप की अपेक्षा कुछ है ही नहीं, परन्तु अज्ञान दशा में संसारी, कर्म संयोग होने के कारण यह होते हैं। जब जीव भेदज्ञान द्वारा स्व-पर का यथार्थ निर्णय कर लेता है, वस्तु स्वरूप जान लेता है, अपने स्वरूप ममल स्वभाव में रहने की साधना करता है, तब यह छूट जाते हैं, संयोग सम्बन्ध टूटता जाता है। पूर्ण शुद्ध स्वभाव मे स्थित होने पर फिर यह होते ही नहीं हैं।

धर्मी को शुभ परिणाम भी अनिष्ट रूप लगते हैं, वह उनसे भी छूटना ही चाहता है परन्तु वे भूमिकानुसार आये बिना नहीं रहते, ये भाव आते हैं तब वह स्वरूप स्थिरता का पुरूषार्थ करता है। इससे कोई-कोई समय बुद्धि पूर्वक के सभी विकल्प छूट जाते हैं और वह सहज स्वरूप में स्थिर हो जात है। उस समय उसे सिद्ध परमात्मा जैसा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होत

है परन्तु स्थायी रूप से स्थिर नहीं रह सकते, इससे फिर इस चक्कर में रहना पडता है।

प्रश्न – ऐसी दशा में अब क्या करें ?

समाधान – प्रथम तो इस बात का, वस्तु स्वरूप का दृढ, अटल, श्रद्धान, विश्वास होना कि मैं ध्रुव तत्व, शुद्धात्मा हूँ। यह एक–एक समय की पर्याय, जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध, निश्चित अटल है। जैसा केवलज्ञानी के ज्ञान में झलका है, वैसा ही सब जीवों व सब द्रव्यों की एक–एक पर्याय, एक–एक परमाणु, एक–एक समय का परिणमन हुआ है, हो रहा है और होगा, इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा अनुभूति युत निर्णय स्वीकार होने पर अब अपने में स्वस्थ होश में अभय, अडोल, अकम्प, अटल, दृढ रहो। आनन्द परमानन्द में धर्म की जय–जय कार मचाओ। अपने इष्ट, परम इष्ट, सत्स्वरूप का आश्रय, आलम्बन लो, उसमें लीन रहो। निरन्तर यह ध्रुव तत्व शुद्धात्मा, टकोत्कीर्ण अप्पा, सिद्ध स्वरूपी, परम ब्रह्म परमात्मा, शुद्ध चैतन्य ज्योति, ज्ञान मात्र मैं हूँ। इसका स्मरण, ध्यान रखो और इसी उमंग, उत्साह में रहो, पर पर्याय कर्मादि की तरफ मत देखो **''न्यान सहावेन कम्म जिनियं च''** बस हमेशा ज्ञानोपयोग, ज्ञान स्वभाव की साधना करो और अपना ज्ञान भाव जाग्रत रखो। स्व–पर का निर्णय करते रहो कि मैं ध्रुव,ध्रुव,ध्रुव, सिद्धोहं, सिद्धरूपोहं, अहं ब्रह्मास्मि, सत्ता एक शून्य विन्द, पर की किसी की सत्ता, अस्तित्व ही मत मानो। द्रव्य दृष्टि ही रखो कि जैसा मैं सिद्ध, शुद्धात्मा–परमात्मा हूँ। ऐसे ही सब जीव आत्मा, छहों काय के जीव स्वभाव से सिद्ध, शुद्ध परमात्मा हैं तथा सब अपने में परिपूर्ण एवं स्वतंत्र हैं। एक जीव से दूसरे जीव का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इससे मोह, राग, द्वेष का विलय होगा, समभाव आयेगा तथा यह जो पौद्गलिक जगत शरीरादि दिखाई दे रहे हैं, यह सब द्रव्य दृष्टि से पुद्गल परमाणुओं का स्कंध रूप परिणमन अशुद्ध पर्याय है। जो सब क्षणभंगुर, नाशवान, असत् है। मूल में सब शुद्ध परमाणु मात्र हैं। इससे सारी भ्रम–भ्रांति मिट जायेगी और जो वर्तमान में कर्मोदय जन्य चक्र चल रहा है, इसमें सर्वज्ञ की सर्वज्ञता, त्रिकालवर्ती पर्याय का निर्णय करते हुए, अपने में निर्भय–निर्द्वंद मस्त रहो, यही कर्मोदय को जीतना है।

पर पर्याय को देखना, कर्मों की सत्ता, अस्तित्व मानना, रागादि भावों में चकराना, उन्हें महत्व देना, डरना, भयभीत होना ही अज्ञान है, इसी से

भयभीत भ्रमित रहते हो।

मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा, परम ब्रह्म परमात्मा हूँ। सिद्ध-मुक्त-शुद्ध हूँ और कुछ है ही नहीं, सत्ता एक शून्य विन्द, जगत का अस्तित्व मिटाओ। कर्म, कषाय, पर्याय आदि को मान्यता मत दो, कुछ मानो ही मत, बस मैं ही मैं हूँ। ध्रुव-ध्रुव-ध्रुव, ममल स्वभाव, सिद्धोहं, अलख-निरंजन की हुंकार भरो। अहं ब्रह्मास्मि का नारा लगाओ और अपने-ध्रुव धाम में डटे रहो तो यह सब अपने आप गल जायेंगे, विला जायेंगे और तुम जीत गये। अपने ज्ञानानन्द, निजानन्द, सहजानन्द, ब्रह्मानन्द में लीन रहो। धर्म की जय-जय कार मचाओ, यही वर्तमान पुरूषार्थ और इनको जीतने का उपाय है।

प्रश्न- हम अपने ध्रुव स्वभाव, मुक्त-सिद्ध स्वरूप का स्मरण ध्यान रखते हैं, इसी का चिन्तन-मनन-आराधन करते हैं। पर बीच में यह मन कर्मोदय जन्य भावों को लेकर आ जाता है, मोह माया में घुमाने लगता है, इससे भ्रमित-भयभीतपना होने लगता है ऐसे में क्या करें, इसका क्या उपाय है ?

समाधान - उपाय तो एक ही है कि अपने ध्रुव तत्व-ज्ञान स्वभाव में ज्ञान पूर्वक होश में रहो। अपने में दृढता, अटलता रखो, अडोल अकंप स्वस्थ होश में रहो, इनसे किसी से डरो मत। भेदज्ञान, तत्व निर्णय, वस्तु स्वरूप द्वारा निराकरण सफाई करो और ध्रुव-धाम में स्वस्थ मस्त रहो। सम्यक्चारित्र में-जीव का पुरूषार्थ और कर्मोदय पर्याय, चारित्र मोहनीय का द्वन्द युद्ध सारा खेल है। अब जीव की जैसी पात्रता, पुरूषार्थ काम करता है, वैसे कर्म क्षय होते जाते हैं तथा जैसा कर्मोदय सत्ता होती है, वैसी ही जीव की पात्रता-पुरूषार्थ काम करता है। ज्ञानी समता, शान्ति में ज्ञायक रहकर तमासा देखता है। तत् समय की योग्यतानुसार सारा परिणमन चलता है।

प्रश्न- पर इस दशा में बड़ी बैचेनी, घबराहट होती है, यह कुछ भी रूचता नहीं है, बस हमेशा निर्विकल्प-निजानन्द में रहें, ऐसी भावना होती है, इसका क्या उपाय है ?

समाधान- बात तो सही है और भावना भी सही है। अगर यह छटपटाहट न हो तो वह ज्ञानी ही नहीं है परन्तु दोनों हाथ लड्डू नहीं खाये जाते। जिस भूमिका में बैठे हैं, जो पात्रता है, वैसा ही परिणमन चलेगा। अगर नहीं रूचता तो पुरूषार्थ करो, निर्ग्रंथ, वीतरागी साधु बनो और ध्यान समाधि में निर्विकल्प-

निजानन्द में लीन रहो। घर, परिवार, मोह–राग के संयोग में रहते निर्विकल्प निजानन्द में स्थायी नहीं रहा जा सकता। यहाँ तो पात्रता और पुरूषार्थ के अनुसार ही रहना पड़ता है, ज्ञानी को सब निर्णय होता है अत: वह शान्त–समता में ज्ञायक रहता है।

आत्मा–स्पर्श, रस आदि गुणों से रहित और पुद्गल तथा अन्य चार अजीव द्रव्य एवं अनन्त जीवों से अत्यन्त भिन्न है। वर्तमान में अशुद्ध पर्याय से अज्ञान जनित, निमित्त–नैमित्तिक संबंध है। अब इन सबसे भिन्न रहने का पुरूषार्थ, अपने इष्ट–परमइष्ट ध्रुव स्वभाव–शुद्धात्मा का आलम्बन आश्रय ही है। जितना अपने ममल स्वभाव में रहने का पुरूषार्थ काम करता है, उतने ही रागादि विकल्पों से भिन्न रहा जाता है। मन हमारे अन्तर की कमजोरी को जानता है, हमारे अन्तर में जिस तरफ का राग–रूचि–चाह–लगाव–मोह–माया का सद्भाव होता है, वह उसी में घुमाता है, बार–बार सामने आकर बताता है।

सम्यक्दृष्टि का ज्ञान अति सूक्ष्म होता जाता है, वह राग और स्वभाव के बीच की संधि में ज्ञान पर्याय का प्रवेश होते, मन के बीच आते ही प्रथम बुद्धिगम्य भिन्नता करता है, अन्तर शोधन करना ही सच्ची साधना है।

इसका एक ही उपाय है कि पर्याय से भी भिन्न जो अपना ध्रुव स्वभाव है, उसका निरन्तर लक्ष्य बना रहे, उसी पर दृष्टि रहे तो फिर यह सब आने–जाने वाले, मन आदि भाव अपने आप विला जाते हैं। पर से अपनी पकड़ छूट जाये, उदासीनता, निरपेक्ष दशा हो जाये, निस्पृह, आकिंचन, वीतरागी होने पर यह कुछ होता ही नहीं है। वस्तु स्वरूप का यथार्थ निर्णय करते हुये, अपने ज्ञान स्वभाव में सजग रहना ही ज्ञान मार्ग की साधना है।

प्रश्न– चारित्र मोहनीय के साथ यह दर्शन मोहनीय की सम्यक् प्रकृति–वेदक सम्यक्त्व के रूप में चल–विचल–भयभीत–कम्पित करती है, इसके लिये क्या उपाय किया जाये तथा कर्मोदय से कैसे बचा जाये?

समाधान – दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय–यह सब मोहनीय कर्म की सत्ता है। यह जब तक अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान रूप रहती है, तब तक बाधक बनती है। संज्वलन कषाय रूप होने पर जीव का तीव्र पुरूषार्थ काम करने लगता है। कर्मोदय सत्ता पूर्व अज्ञान जनित दशा का परिणाम है, परन्तु सद्गुरू कहते हैं कि –

कम्म सहावं षिपनं, उत्पत्ति षिपिय दिस्टि सभावं।
चेयन रूप संजुत्तं, गलियं विलियं ति कम्म बंधानं ॥
॥ कमलबत्तीसी-६ ॥

इसी ग्रन्थ की छठवीं गाथा में पूर्व में सब निर्णय आ गया है। अब तो मन में दबी पडी अतृप्त कामनाओं का जब तक परिमार्जन, सफाई, शुद्धि नहीं होती, तब तक वह पेरती हैं, सत्ता में पडे हुये निधत्ति, निकाचित कर्म जब तक निकलते नहीं तब तक आगे नहीं बढ सकते। कर्मों को (१) ज्ञान पूर्वक शमन करना (२) शुद्धोपयोग द्वारा क्षय करना (३) भोग कर निर्जरित करने पर ही छुटकारा होता है।

ज्ञान पूर्वक शमन करना – कर्मों का गलना है।

भोग कर निर्जरित करना – कर्मों का विलाना है।

और क्षय होना मिट जाना है, इसमें पात्रता अनुसार ही पुरूषार्थ काम करता है।

जब तक मन पसरता है, तब तक सारे अशुभ भाव ही होते हैं। वस्तु स्वरूप का ज्ञान करने पर मन शान्त होता है। "सत्ता एक शून्य विन्द" की स्थिति होने पर मन शून्य हो जाता है। मैं ध्रुव तत्व-पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, शुद्ध प्रदेशी, सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा हूँ और यह सामने शुद्ध पुद्गल परमाणु रूप पुद्गल का विस्तार है। ऐसा ज्ञान पूर्वक निर्णय करना और स्वरूप में स्थित होने पर सब शून्य हो जाता है।

वेदक सम्यक्त्व-अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कषाय, राग का उदय यह सब मोहनीय की सत्ता है। अपनी सत्ता शक्ति जाग्रत करो, तो कर्म सत्ता सब क्षय हो जाती है। जब तक कंचन, कामिनी, कीर्ति रूप माया का आकर्षण रहेगा, तब तक ब्रह्मस्वरूप में लीन नहीं हो सकते। माया के चक्कर से छूटने पर ही आत्मा-परमात्मा होता है।

कर्मों की सत्ता शक्ति मानना ही अपनी कमजोरी है। अपनी स्व सत्ता शक्ति का जाग्रत होना, अपने स्व-स्वरूप का स्वाभिमान-बहुमान होना ही कर्मों को जीतना है।

प्रश्न- आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी परमब्रह्म परमात्मा है, पर वह ऐसे अपने स्वरूप में रहती क्यों नहीं है ?

समाधान- आत्मा-अनादि से अपने स्वरूप को भूला, अज्ञान के कारण शरीरादि पर में (१) एकत्व (२) अपनत्व (३) कर्तृत्व (४) चाह (५) लगाव

होने से अपने ज्ञानानन्द स्वभाव में न रहकर, ऐसी दशा में रह रहा है।

प्रश्न– इससे छूटने का उपाय क्या है ?

समाधान– सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र की शुद्धि होने पर, परमानन्द में हो सकता है। सम्यक्‌दर्शन होने पर– पर से एकत्व छूटता है। सम्यक्‌ज्ञान होने पर–पर से अपनत्व कर्तृत्व छूटता है। सम्यक्‌चारित्र होने पर चाह और लगाव छूटता है। इससे आत्मा–अपने ज्ञानानन्द स्वभाव में रहता हुआ पूर्ण शुद्ध, मुक्त परम ब्रह्म परमात्मा हो जाता है, जो हमेशा परमानन्द में रहता है।

प्रश्न– सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि का उपाय क्या है ?

समाधान– भेदज्ञान पूर्वक अपने स्वरूप की अनुभूति होने पर बुद्धि पूर्वक यह स्वीकार करना कि मुझे आत्मानुभूति सम्यक्‌दर्शन हो गया। मैं सिद्ध के समान–ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, यह सम्यक्‌दर्शन की शुद्धि है।

सम्यक्‌दर्शन की शुद्धि, ऐसा निर्णय स्वीकार होने के बाद ज्ञान की शुद्धि करना, सामने जो कर्मोदय संयोग पुद्‌गल आदि के सम्बंध मे यह क्या है ? कैसे हैं ? कहाँ से क्या होता है ? आदि संशय विभ्रम विमोह से रहित वस्तु स्वरूप, स्व–पर का यथार्थ ज्ञान होना कि मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ तथा यह एक–एक समय की पर्याय और जगत का (समस्त जीव द्रव्यों का) त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध, निश्चित, अटल है, इससे मेरा कोई संबन्ध नहीं है। ऐसा अनुभूति युत निर्णय होना सम्यक्‌ज्ञान की शुद्धि है।

इसके बाद दर्शन उपयोग, दृष्टि की शुद्धि करना । चक्षु–अचक्षु दर्शन द्धारा जो शरीरादि पौद्‌गलिक जगत दिखता है, अन्तर मे भाव–विभाव आदि मन चलता है, इनके सबध में दृष्टि शुद्ध होना चाहिए। द्रव्य दृष्टि होना कि मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा, शुद्ध प्रदेशी सिद्ध के समान परमात्मा हूँ। इसी प्रकार छहो काय के अनन्त जीव भी सिद्ध के समान शुद्धात्मा–परमात्मा हैं। किसी के प्रति कोई मोह, राग, द्वेष न होना, समभाव रहना तथा यह शरीरादि अचेतन पदार्थ सब शुद्ध परमाणु है, जो स्कन्ध रूप, अशुद्ध पर्याय रूप परिणमन कर रहे हैं तथा सूक्ष्म कर्म रूप, पुद्‌गल कर्म वर्गणायें चल रही हैं। यह सब असत् अनृत, क्षण भंगुर, नाशवान हैं। यह सब परिणमन भ्रम और भ्रांति है। इसका कोई अस्तित्व नहीं है। मूल शुद्ध पुद्‌गल परमाणु हैं। इस प्रकार दृष्टि में इनका महत्व, आकर्षण, मान्यता, भ्रम, भ्राति, मिट जाना, कुछ भी अच्छा–बुरा न लगना, यह चारित्र की शुद्धि, स्वरूप रमणता रूप वीतराग दशा, परमानन्द है।

कमलश्री हे आत्मन् ! अपनी प्रभु सत्ता जगाओ। अच्छे उत्साह उमंग में स्वयं निर्विकल्प, निजानन्द में रहो। अब यह पर पर्याय को देखना, महत्व देना बन्द करो, अपने ध्रुव तत्व शुद्धात्मा को देखो, परमात्म स्वरूप में लीन रहो। अब किससे क्या मतलब है, है क्या ? सब धूल का ढेर, पुद्गल परमाणुओं का परिणमन है, जो सब असत् क्षणभंगुर, नाशवान, अपने क्रम से अपने में चलता, गलता-विलाता-क्षय होता जा रहा है।

जब तक तुम्हारी दृष्टि में इनका मूल्य, महत्व रहेगा, राग भाव काम करेगा, तब तक यही दशा रहेगी। ज्ञान, श्रद्धान, सब कर लिया। अनुभव प्रमाण, अनुभूति युत सब भेदज्ञान, तत्व निर्णय, वस्तु स्वरूप जान लिया। ज्ञानी, ज्ञायक हो गये और जो कुछ है ही नहीं, मात्र हवा लहरें हैं, उन कर्मादि को महत्व दे रहे हो, अस्तित्व मान रहे हो और अपना इष्ट, परम इष्ट, परमात्म-स्वरूप सत्ता शक्ति का प्रभुत्व, ज्ञानानन्द स्वभाव का स्वयं के परिपूर्ण, निष्काम-निर्विकल्प-निजानन्द-ध्रुव धाम मुक्ति श्री, सिद्धि की सम्पत्ति का कोई बहुमान, स्वाभिमान नहीं है। अपने अनन्त चतुष्टय, सर्वज्ञ स्वभाव, रत्नत्रय का कोई मूल्य महत्व नहीं है। परमानन्दमयी परमात्म पद की सत्ता का कोई गौरव नही बताते।

प्रभु ! अब यह सब देखना बन्द करो, अपनी निज सत्ता शक्ति देखो, इस जड पुद्गल शरीरादि कर्मों का क्या महत्व मूल्य करते हो, यह माया में क्यों चकराते हो, जो छल धोखा भ्रम मात्र है। अपने परमात्म सत्ता का सर्वज्ञ स्वरूप का बहुमान स्वाभिमान जगाओ, इसी आनन्द उत्साह में रहो। मुक्ति श्री के शाश्वत अतीन्द्रिय सुख आनन्द-अमृत रस का पान करो। अब तो अपनी सत्ता - शक्ति जागृत हो गई और यह पंच ज्ञान, पंच परमेष्ठी पद, दश धर्म, रत्नत्रय, अनन्त चतुष्टय, सर्वज्ञ स्वभाव आदि अरहंत पद प्रगट होने वाला है। सिद्धि की संपत्ति मिलेगी जो सादि अनन्त काल तक भोगना, मुक्ति श्री तो स्थायी रहेगी, जिसका निरन्तर अतीन्द्रिय आनन्द परमानन्द भोगना है।

अब यह तो सब ज्ञान, श्रद्धान में आ ही गया है, स्वयं के अनुभव प्रमाण है। देख लो यह धर्म की महिमा, अतिशय कि ऐसे निकृष्ट काल, निकृष्ट कर्मोदय में कैसे निराकुल, नि:शल्य निश्चिन्त-निर्विकल्प आनन्द में रह रहे हो। वस्तु स्वरूप सामने दिख रहा है। ध्रुव धाम की सत्ता मिल ही गई। यह सम्यक्ज्ञान प्रकाश में वस्तु-स्वरूप स्पष्ट दिखने लगा, एकत्व, अपनत्व, कर्तृत्व, खत्म

हो गया, ज्ञायक प्रभु हो गये। कैसी परम सुख शांति में रह रहे हो। इसे स्वीकार कर दृष्टि की शुद्धि कर सम्यक् चारित्र में प्रवेश करो और परमानन्द में रहो।

अब कर्मोदय शरीरादि संयोग को कोई महत्व मत दो, इनकी सत्ता मत मानों। यह सब पर्यायी परिणमन तो त्रिकालवर्ती क्रमबद्ध, निश्चित, अटल है तथा सब क्षणभंगुर, नाशवान है। कब कैसा क्या होना है ? यह तो केवलज्ञानी ही जानते हैं तुम इस तरफ का लक्ष्य खत्म करो, दृष्टि हटाओ। अपने सर्वज्ञ स्वरूप, परम ब्रह्म परमात्मा-सच्चिदानन्द घन, ब्रह्म स्वरूप को देखो, इसी में लीन रहो यही इष्ट प्रयोजनीय है और इसी के आश्रय से यह सब कर्म, कषाय, पर्यायें, विलायेंगी, निर्जरित-क्षय होंगी। अपने में अटल, अभय, स्वस्थ-मस्त रहना ही कर्मों को जीतना है।

यही जिनेन्द्र परमात्मा के वचन हैं जिनवाणी में कहा है, इसे स्वीकार करो।

यही बात आगे गाथा में कहते हैं –

गाथा – २६

जिन वयनं सुद्ध सुद्धं, अन्मोयं ममल सुद्ध सहकारं।
ममलं ममल सरूवं, जं रयनं रयन सरूव संमिलियं ॥

शब्दार्थ – (जिन वयनं) जिन वचन, जिनेन्द्र परमात्मा की वाणी जिनवाणी (सुद्ध) शुद्ध है, सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है (सुद्धं) शुद्ध करने वाली है (अन्मोयं) आलम्बन लो, आश्रय लो, अनुमोदना करो (ममल) ममल स्वभाव (सुद्ध सहकारं) निश्चय से इसी का सहकार करो (ममलं) समस्त कर्म मलादि से रहित (ममल सरूवं) ममल स्वरूप शुद्धात्मा है (जं) जब, जो जहाँ (रयनं) रत्न के समान, (रयन सरूव) रत्नत्रय स्वरूप, सिद्ध स्वरूप (संमिलियं) मिलान हो जायेगा, मिल जायेगा, प्रगट हो जायेगा।

विशेषार्थ – निज शुद्धात्म स्वरूप में लीन रहना सम्यक्चारित्र, मुक्ति मार्ग आनन्द-परमानन्द दशा है। जिनेन्द्र परमात्मा के वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं। इनको स्वीकार करने से स्वयं शुद्ध-सिद्ध परमात्मा होते हैं। जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि हे भव्यो ! अपने शुद्ध चैतन्य ममल स्वभाव का आलम्बन लो, इसी का सत्य श्रद्धान ज्ञान कर इसी में लीन रहो, यही मुक्ति मार्ग है। यह अमृतमयी शुद्ध स्वभाव को स्वीकार करो। अब पर पर्याय, कर्म मलादि की

ओर मत देखो। कर्म मलों से रहित अपना यह ममलह ममल स्वरूप है अर्थात् आत्मा अनाद्यनिधन शुद्ध-सिद्ध परमात्मा के समान है। इसी के ध्यान में लीन रहो, इससे रत्न के समान रत्नत्रयमयी स्वयं का सिद्ध स्वरूप मिल जायेगा, अर्थात् प्रगट हो जायेगा स्वयं सिद्ध परमात्मा हो जाओगे।

सिद्धान्त- (१) राग द्वेष से बंध होता है। (२) बंध का क्षय, राग द्वेष के अभाव होने से मुक्ति होती है। इस जिनेन्द्र कथित सिद्धान्त की प्रतीति हो तो राग-द्वेष छोडो, यदि सर्व प्रकार से राग-द्वेष छूट जायें तो आत्मा का सर्व प्रकार से मोक्ष हो जाता है।

सर्व इन्द्रियों का संयम कर, सर्व पर द्रव्य से निज स्वरूप को भिन्न कर, योग को अचल कर, उपयोग से उपयोग की एकता करने से केवलज्ञान होता है।

सर्व जीवों के प्रति, सभी भावो के प्रति, अखंड एक रस वीतराग दशा रखना ही सर्व ज्ञान का फल है। आत्मा शुद्ध चैतन्य जन्म जरा-मरण से रहित असंग स्वरूप है। ममल स्वभावी शुद्ध सिद्ध परमात्मा है इसमें सर्वज्ञान समा जाता है, इसकी प्रतीति में सर्व सम्यक्दर्शन सभा जाता है। आत्मा की असंग स्वरूप से जो स्वभाव दशा का होना है, वह सम्यक्चारित्र है, उत्कृष्ट संयम और वीतराग दशा है, जिसकी सम्पूर्णता का फल-सर्व दुःख क्षय-मुक्ति है।

द्वादशांग का सार, निज शुद्धात्म स्वरूप में दृष्टि अभेद कर, तादात्म्य कर निर्विकल्प, सहज सम भाव में रहो। देह, मन, वाणी, कर्म, औदयिकादि क्षणिक भावों से भी पार सूक्ष्म, अति सूक्ष्म सामान्य द्रव्य स्वभाव परम पारिणामिक भाव ममल स्वभाव में जमे रहो, बस यही सिद्धि मुक्ति परमानन्द दशा है।

परिणमन स्वभाव के समय भी अपरिणामी भी साथ ही साथ है। अपरिणामी स्वभाव को नित्य पकडे रहो, यहाँ जमे रहो। इसके बिना, निस्तार नहीं है। परिणमन में से अस्तित्वपने की श्रद्धा हटाकर, त्रिकाली ज्ञान आनन्द आदि अनन्त गुणों के देहाकार असंख्यात प्रदेशी निजपने की श्रद्धा की पर्याय को एकाकार व्यापक करते ही नित्यपने का निज अस्तित्व का प्रति समय अनुभव होता है।

शुभाशुभ भाव से भिन्न ज्ञायक का, ज्ञायक रूप से अभ्यास करके ज्ञायक की प्रतीति दृढ करना, ज्ञायक को गहराई से पकड लेना, यही सादि अनन्त सुख प्राप्त करने का उपाय है। ऐसे ज्ञायक आत्मा को सबसे भिन्न, पर द्रव्य

से भिन्न, पर भावों से भिन्न जानना –पहिचानना, उसका अभ्यास करना ही मुक्ति मार्ग है। यही जिन वचन, जिनेन्द्र परमात्मा की देशना है।

समल पर्याय के चलते हुये ममल स्वभाव की साधना करने वाला ज्ञानी शूरवीर है।

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भंडार चैतन्य देव, अनादि अनन्त परम पारिणामिक भाव में स्थित है, यह पंचम भाव पवित्र है, महिमावंत है, इसका आश्रय करने से शुद्धि के प्रारम्भ से लेकर पूर्णता प्रगट होती है।

जो मलिन हो अथवा जो अंशत: निर्मल हो अथवा जो अधूरा हो अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो, अध्रुव हो, और त्रैकालिक परिपूर्ण सामर्थवान न हो, उसके आश्रय से शुद्धता प्रगट नहीं होती ; इसलिए औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औपशमिक भाव, अवलम्बन के योग्य नहीं हैं।

जो ममल है, पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक परिपूर्ण सामर्थ्यवान है, ऐसे अभेद एक परम पारिणामिक भाव का ही आश्रय करने योग्य है, इसी की शरण लेने योग्य है। इसी अपने ध्रुव ममल स्वभाव से सम्यक्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशायें प्राप्त होती हैं ; इसलिये द्रव्य दृष्टि करके अखड एक ज्ञायक वस्तु निज शुद्धात्म स्वरूप को लक्ष्य में लेकर उसका अवलम्बन करो। वही वस्तु के अखंड एक परम पारिणामिक भाव का आश्रय है।

आत्मा अनन्त गुणमय है परन्तु द्रव्य दृष्टि गुणों के भेदों को ग्रहण नहीं करती। वह तो एक अखंड त्रैकालिक ध्रुव स्वभाव को अभेद रूप से ग्रहण करती है, यह पचम भाव पावन है, पूज्यनीय है। इसके आश्रय से सम्यक्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, सुख और शांति आती है, वीतरागता होती है, पचम गति की प्राप्ति होती है।

हे शुद्धात्मा ! तू मुक्ति स्वरूप है, तुझे पहिचानने से पाँच प्रकार के परावर्तनों से छुटकारा होता है इसलिये तू सम्पूर्ण मुक्ति का दाता है, तुझ पर निरन्तर दृष्टि रखने से तेरी शरण में आने से जन्म-मरण मिटते हैं, यह जिन वचन है।

जीव अपनी लगन से ज्ञायक परिणति को प्राप्त करता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभाव-भाव से भिन्न हूँ। शरीरादि कर्मोदय से भिन्न हूँ, किसी भी पर्याय में अटकने वाला मैं नहीं हूँ। मैं अगाध गुणों से भरा हूँ, मैं ध्रुव हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं परम पारिणामिक भाव हूँ, इस प्रकार की तरंगें ज्ञानी

साधक को चलती हैं। इन्हीं विचारों से पूर्व कर्म बन्धोदय निर्जरित क्षय होते हैं। ममल स्वभाव में लीन होने पर स्वयं अरिहन्त सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

शुद्धात्मा को जाने बिना, भले ही क्रियाओं के ढेर लगा दो परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता, न मुक्ति होती। ज्ञान से ही आत्मा जाना जाता है और ज्ञान से ही मुक्ति होती है।

प्रश्न – मात्र ज्ञान करने से क्या होता है, जब तक तद्रूप आचरण न हो, तब तक कर्म भी क्षय नहीं होते इसलिये ज्ञान के साथ संयम तप करना भी आवश्यक है या नहीं ?

समाधान– जीवों को ज्ञान और क्रिया की खबर नहीं है। मैं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करता हूँ, कर सकता हूँ, ऐसे भ्रम में उलझे रहते हैं! बाह्य ज्ञान को, भंग भेद के प्रश्नोत्तरों को, धारणा ज्ञान को वे ज्ञान मानते हैं और पर द्रव्य के ग्रहण त्याग को, शरीरादि की क्रिया को, शुभाशुभ भाव को वे क्रिया मानते हैं। मुझे इतना आता है, मैं ऐसी कठिन क्रियायें करता हूँ , इस प्रकार के मिथ्या मद में संतोषित रहते हैं।

निज स्वरूप की अनुभूति के बिना, ज्ञान होता नहीं है तथा निज स्वभाव में रहना, निज स्वरूप में परिणमित होना, ज्ञान आनन्द आदि दशा में रहना, अपनी सुरत रखना, स्वभाव में लीन रहना, यह आत्मा की क्रिया–पुरूषार्थ व संयम–तप है। पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है ? जड के कार्य रूप तो जड ही परिणमित होता है। आत्मा से जड के कार्य कभी भी नहीं होते। शरीरादि के कार्य मेरे कार्य नहीं हैं और विभाव कार्य भी स्वरूप परिणति नहीं है। मैं तो ज्ञायक ध्रुव ममल स्वभावी हूँ। ऐसी साधक की परिणति होती है, इसी से कर्म क्षय होते हैं। इस प्रकार ज्ञान की अन्तरंग साधना चलती है। पर्याय की पात्रतानुसार तद्रूप बाह्य आचरण संयम–तप आदि भी होते हैं परन्तु ज्ञानी का लक्ष्य उस ओर नहीं होता। वह तो अपना पुरूषार्थ अपने ज्ञान, ध्यान, स्वभाव साधना का करता है, यही यथार्थ मुक्तिमार्ग है।

प्रश्न – यह कर्मोदय जन्य भाव, निमित्त संयोग तो बाधक बनते हैं, अपने स्वभाव की साधना स्मरण–ध्यान–ज्ञान करते हैं तो यह कर्मोदय जन्य भाव स्थिर ही नहीं रहने देते ? भयभीत भ्रमित करते हैं, इसके लिये क्या करें ?

इसके समाधान में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी आगे गाथा कहते हैं–

गाथा – २७

सेस्टं च गुन उवन्नं, सेस्टं सहकार कम्म संषिपनं ।
सेस्टं च इस्ट कमलं, कमलसिरि कमल भाव ममलं च ॥

शब्दार्थ- (सेस्टं च) श्रेष्ठ, इष्ट, सर्वोत्कृष्ट,ममल स्वभाव की साधना से (गुन उवन्नं) गुण प्रगट होते हैं। पंच परमेष्ठी, पंचज्ञान, दश धर्म, रत्नत्रय, अनन्त चतुष्टय आदि अनन्त गुण (सेस्टं सहकार) श्रेष्ठ परमात्म स्वरूप का आश्रय, सहकार–स्वीकार करने से (कम्म संषिपनं) सारे कर्म क्षय हो जाते हैं (सेस्टं) श्रेष्ठ, एक मात्र आधार (च) और (इस्ट) इस्ट प्रयोजनीय (कमलं) कमल स्वभाव है (कमलसिरि) कमल श्री (कमलावती) आत्मा (कमल भाव) निर्लिप्त, निर्विकारी भाव में रहो (ममलं च) ममल स्वभाव ही श्रेष्ठ इष्ट है, इसी की साधना करो।

विशेषार्थ - सर्वोत्कृष्ट, परम इष्ट अपना ममल स्वभाव है, इसकी साधना करने से श्रेष्ठ गुण, पंच परमेष्ठी पद, पंच ज्ञान, दश धर्म, रत्नत्रय, अनन्त चतुष्टय आदि अनन्त गुण प्रगट होते हैं। इसी श्रेष्ठ, परम इष्ट, निज परमात्म स्वरूप का आश्रय करने, उस मय रहने से सारे कर्म क्षय हो जाते हैं इसलिये हे कमल श्री ! अपना कमल भाव जाग्रत करो, जो ज्ञायक स्वभावी, निर्मल-निर्लेप परमात्म स्वरूप है। यही निज शुद्धात्मा श्रेष्ठ और इष्ट है। अपना आत्म स्वभाव कर्मों से सदैव भिन्न है, इसी की साधना करो। ममल स्वभाव में लीन रहना ही चारित्र साधु पद है, यही सम्यक्चारित्र है। अपना आत्म बल जगाओ, सत्पुरूषार्थ करो। स्वयं अभय, अटल, अडोल, अकम्प, अपने में स्वस्थ रहो फिर यह कर्मादि कोई भी भयभीत, भ्रमित नहीं करते, स्वयं ही क्षय हो जाते हैं।

कर्मों के उदय को, निमित्त, संयोग, मन, पर्याय आदि को नहीं देखना, यह तो सब अनिष्ट हैं। सर्वोत्कृष्ट, श्रेष्ठ, परम इष्ट तो अपना निज शुद्धात्म स्वरूप ममल स्वभाव है, उसका लक्ष्य रखो। आलम्बन लो, लीन रहो तो यह सम्पूर्ण कर्म क्षय हो जाते हैं। अपने स्वभाव में तो पर पर्याय, कर्मादि हैं ही नहीं, इनकी सत्ता मानना महत्व देना ही अज्ञान है।

आत्मा में जो पंच महाव्रत, संयम, तप, भक्ति आदि के परिणाम होते हैं, सो शुभ राग है, आश्रव बंध है। राग रहित व सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता रूप अपने परम पारिणामिक भाव ममल स्वभाव में रहना ही धर्म है।

इसी से संवर, निर्जरा और मोक्ष होता है। बाह्य क्रिया सुधरने से मेरे परिणाम सुधरेगे तथा मंद कषाय परिणाम से धर्म होता है। इस प्रकार के अभिप्राय की गन्ध भी अन्तर में रह जाने का नाम मिथ्या वासना है। ऐसी वासना रखकर बाह्य में पंच महाव्रत का पालन तथा दया, दानादि की चाहे जितनी क्रिया व मंद कषाय करे तो भी धर्म नहीं होता।

आत्मा में भेदज्ञान पूर्वक निज का अवलम्बन लेने पर जो आत्म धर्म होता है, वह अनुभव प्रकाश है, उस समय चारित्र गुण की मिश्र दशा होने पर आंशिक निर्मलता व आंशिक मलिनता होती है ? वह मलिनता कर्म के कारण से नहीं होती, स्वयं के मोह राग-अज्ञान के कारण होती है।

मोक्ष केवल एक अपने ही आत्मा की पर के संयोग रहित शुद्ध अवस्था का नाम है, तब उसका उपाय भी निश्चय नय से यही है कि अपने आत्मा का शुद्ध अनुभव किया जावे तथा श्री जिनेन्द्र परमात्मा-अरिहन्त सर्वज्ञ स्वरूप या सिद्ध परमात्मा के समान ही अपने को माना जावे तब अनादि की मिथ्या वासना का अभाव होगा।

शुद्ध निश्चय नय से सम्यक्दर्शन ज्ञान सहित अपने स्वरूप का चिन्तवन ध्यान करना कि मैं सिद्ध के समान परम निश्चल हूँ, योग की चचलता से रहित हूँ, मन-वचन-काय के पन्द्रह योगों से शून्य हूँ, मैं कर्म तथा नो कर्म का आकर्षण करने वाला नहीं, न मेरे मे अजीव तत्व है, न आश्रव तत्व है, न बध तत्व है, न संवर तत्व है, न निर्जरा तत्व है, न मोक्ष तत्व है। मैं तो सदा ही शुद्ध जीवत्व का धारी, एक जीव तत्व परिपूर्ण परमात्मा हूँ। सुख-सत्ता-चैतन्य (स्वानुभूति) - बोध यह चार ही मेरे प्राण हैं, जिनसे मैं सदा जीवित हूँ।

जैसे सिद्ध परमात्मा कृत - कृत्य हैं, वैसे ही मैं कृत-कृत्य हूँ। न वे जगत के रचने वाले है, न मैं जगत का रचने वाला हूँ। न वे किसी को सुख- दु:ख देते हैं, न मै किसी को सुख-दु:ख देता हूँ। वे जगत के प्रपंच से भिन्न-निराले हैं, मैं भी जगत के प्रपंच से भिन्न-निराला हूँ। वे असंख्यात प्रदेशी अखंड हैं, मैं भी असंख्यात प्रदेशी अखंड हूँ। सिद्ध भगवान सर्व गुणस्थान की श्रेणियो से बाहर हैं, मैं भी गुणस्थानों से दूरवर्ती हूँ। सिद्ध भगवान-स्वतंत्र मुक्त हैं, अपने में परिपूर्ण हैं, वैसे ही मैं भी अपने में स्वतंत्र मुक्त परिपूर्ण हूँ तथा ऐसे ही जगत के समस्त जीव आत्मा हैं। इस द्रव्य दृष्टि से देखने से मोह-राग-द्वेष का अभाव होकर समभाव आता है। शुद्ध दृष्टि ममल स्वभाव में रहने से अनेक

गुण प्रगट हो जाते हैं।

"जैसा ध्यावे, वैसा हो जावे"

(१) क्षमागुण – सिद्ध भगवान तृष्णा की दाह से रहित हैं, मैं भी तृष्णा की दाह से रहित हूँ। सिद्ध भगवान काम वासना से रहित हैं, मैं भी काम विकार से रहित हूँ। सिद्ध भगवान न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, न नपुंसक हैं, मैं भी न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ, न नपुंसक हूँ। सिद्ध भगवान क्रोध की कालिमा से रहित, परम क्षमावान हैं, मैं भी क्रोध के विकार से रहित परम क्षमावान हूँ, निन्दक पर समभाव का धारी हूँ।

(२) मार्दव गुण– सिद्ध भगवान कुल, जाति, रूप, बल, धन, अधिकार, तप, विद्या, इन आठ मदों से रहित – परम कोमल परम मार्दव गुणधारी हैं, मैं भी आठों मदों से रहित पूर्ण निरभिमानी व परम कोमल, मार्दव भाव का धनी हूँ।

(३) आर्जव गुण – सिद्ध भगवान मायाचारी की वक्रता से रहित परम सरल – सहज गुणधारी हैं, मैं भी कपट जाल से शून्य परम निष्कपट, सरल, आर्जव स्वभाव धारी हूँ।

(४) सत्यगुण– सिद्ध भगवान असत्य की वक्रता से रहित परम सत्य अमिट एक स्वभाव धारी हैं, मैं भी सर्व असत्य कल्पनाओं से रहित परम पवित्र, सत्य शुद्ध धर्म का धनी हूँ।

(५) शौच गुण – सिद्ध भगवान लोभ के मल से रहित परम पवित्र शौच गुण के धारी हैं, मैं भी सर्व लालसा से शून्य परम संतोषी व परम शुद्ध शौच स्वभाव का धारी हूँ।

(६) संयम गुण – सिद्ध भगवान मन व इन्द्रियों के प्रपंच से व अदया भाव से रहित पूर्ण संयम धर्म के धारी हैं, मैं भी मन व इन्द्रियों की चंचलता से रहित व परम स्व दया, पर दया से पूर्ण परम संयम गुण का धारी हूँ।

(७) तप गुण – सिद्ध भगवान आप से ही अपनी स्वानुभूति की तपस्या को निरन्तर तपते हुये परम तप धर्म के धारी हैं, मैं भी स्वात्माभिमुख होकर अपनी ही स्वात्म रमणता की अग्नि में निरन्तर आपको तपाता हुआ, परम इच्छा रहित तप गुण का स्वामी हूँ।

(८) त्याग गुण – सिद्ध भगवान परम शान्त व अभय दान को विस्तारते हुये, परम त्याग धर्म के धारी हैं, मैं भी सर्व विश्व में चन्द्रमा के समान परम शान्त अमृत बरसाता हुआ व सर्व जीव मात्र को अभय करता हुआ, परम

त्याग गुण का स्वामी हूँ।

(९) आकिंचन्य गुण - सिद्ध भगवान एकाकी-निस्पृह-निरंजन रहते हुये, परम आकिंचन धर्म के धारी हैं। मैं भी परम एकान्त में रहता हुआ, स्वभाव की साधना करता हुआ, पर के संयोग से रहित परम आकिंचन गुण का धारी हूँ।

(१०) ब्रह्मचर्य गुण - सिद्ध भगवान परम शील स्वभाव में अपने ब्रह्मभाव में रमण करते हुये, परम ब्रह्मचर्य धर्म के धारी हैं। मैं भी अपने ही शुद्ध स्वभाव में निर्विकारिता से स्थिर होता हुआ, ब्रह्म भाव का भोग करता हुआ, परम ब्रह्मचर्य गुण का स्वामी हूँ। सर्व श्रेष्ठ सत्ता धारी होते हुये भी, स्वभाव की व गुणों की अपेक्षा मेरे आत्मा की व सिद्ध परमात्मा की पूर्ण एकता है।

जो वह सो मैं, जो मैं सो वह, इस तरह जो योगी निरन्तर अनुभव करता है, वही मोक्ष का साधक-श्रेष्ठ गुणों का धारी होता है।

जो जीव भयानक संसार समुद्र में से निकलना चाहता है तो वह निज शुद्धात्मा को ध्यावे, उसी से कर्म ईंधन भस्म होगा।

कमल श्री ! अपने में अभय दृढ सख्त कठोर विज्ञान घन बनो। यह मन और राग के चक्कर में पिलपिले-ढीले रहने से काम चलने वाला नहीं है। जब अपना निर्णय-भेदज्ञान-तत्व निर्णय हो गया, अनुभव प्रमाण स्वीकार कर लिया कि मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ और यह एक-एक समय की चलने वाली पर्याय तथा जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है, अपना किसी से कोई सम्बंध है ही नहीं। तो अब अपने में इतने ही अटल-अडोल अकंप अभय स्वस्थ आनन्दमय रहो।

जब ज्ञान-श्रद्धान कर लिया, ज्ञानी हो गये, भेदज्ञान पूर्वक भिन्न न्यारे अपने ध्रुवधाम में आकर बैठ गये तो अब शरीरादि संसार कर्मोदय की ओर देखने की जरूरत ही क्या है ? उनका अपनी तत्समय की योग्यतानुसार अपने में परिणमन चल रहा है और चलेगा। अब किसी घटना, व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति को कोई महत्व देने की जरूरत नहीं है क्योंकि जो होना था-हुआ, हो गया। जो होना है वह हो रहा है और जो होना होगा वह होगा। जब सब त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध, निश्चित, अटल है तथा जिसका कोई अस्तित्व सत्ता है ही नहीं फिर उसकी तरफ देखने, उसे कोई महत्व देने राग-लगाव रखने की भी जरूरत क्या है ?

जब तुम अपने में परिपूर्ण परमात्मा हो, परमानन्द मयी अपनी स्वतंत्र

सत्ता है फिर किसी से प्रयोजन क्या है? अब तो इतने ही निस्पृह आकिंचन वीतरागी अपने में निर्भय, निर्द्वंद, प्रसन्न, आनन्दमय रहना है, तभी ज्ञानी होने की सार्थकता है और यह कर्म क्षय होंगे। मन तो बड़ा नीच निकृष्ट है, उसकी तरफ क्यों देखते हो ? सामने वेदक सम्यक्त्व, अप्रत्याख्यान कषाय, राग का सद्भाव है जो भयभीत भ्रमित करता है। अब अपनी सत्ता शक्ति का खेल है। धर्म–कर्म वरदान बने हैं, सब शुभ योग हैं। सद्गुरू की कृपा आशीर्वाद है , होनहार उत्कृष्ट है, काललब्धि आ गई, यह सम्यक्दर्शन ज्ञान की महिमा बरस रही है। जीवन में पूर्ण समता, शांति, निराकुलता, नि:शल्यता, निश्चिन्तता है ही, पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय है। बस यह थोडी सी कसर, अशुद्ध पर्याय में चल रही है, सो यह अपने उमंग, उत्साह में प्रसन्न, निर्द्वन्द्व रहने पर स्वयं के स्वाभिमान, बहुमान जागने पर, परमात्म शक्ति के प्रगट होने पर अपने आप शुद्ध हो जायेगी। अब इतनी दृढता, निर्भयता, हिम्मत से काम लेने की जरूरत है कि किसी भी कर्मोदय, पर्याय, भावादि से दबो,चिपटो मत, भयभीत, भ्रमित मत होओ, अपने में दृढ स्थित स्वस्थ मस्त रहो, यह मन के चक्कर में मत फंसो। अपना प्रभुत्व, परमात्म शक्ति जाग्रत रखो, यही श्रेष्ठ, इष्ट, प्रयोजनीय है।

ज्ञानी हो, ज्ञायक हो गये जरा और दृढता धरो। यह राग की फिसलन और खत्म करो। जब जगत में रहना नहीं है। किसी से कुछ लेना–देना नहीं है मतलब नहीं हैं, जो होना है वह निश्चित अटल है। शरीरादि की सब व्यवस्था, अनुकूलता, उसकी पात्रता–भाग्यानुसार है ही, हो रही है और होगी। जब एक–एक पर्याय, एक–एक परमाणु, एक–एक समय का परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है, उसे टाला–फेरा–बदला, रोका जा सकता नहीं है। जगत के सब जीव सब द्रव्यों का त्रिकालवर्ती परिणमन, क्रमबद्ध, निश्चित अटल है और स्वयं सच्चिदानन्द घन, परमब्रह्म परमात्मा, टंकोत्कीर्ण अप्पा सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा, ध्रुव तत्व अपने में अटल, अचल, परिपूर्ण, परमानन्दमयी, ममल स्वभावी हो, तो बताओ, अब क्या करना है? अब पर से, पर्याय से, संसार से तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है और बीच में चलते इस पूर्वबद्ध कर्मोदय जन्य चक्र से भी कोई मतलब नहीं है क्योंकि यह भी सब स्वतंत्र अपने–अपने में चल रहा है, हो रहा है और गलता–विलाता जा रहा है, क्षय होता चला जा रहा है।

अब तो अपनी ही दृढता, विज्ञान घन बनने और ध्रुव स्वभाव ध्रुव धाम में

ही अभय, स्वस्थ, अडोल, अकम्प रहने की बात है। जितने उत्साह, उमंग में प्रसन्न, कमल भाव में रहोगे, ममल स्वभाव की साधना करोगे, मुक्ति श्री से रमण करोगे, अतीन्द्रिय आनन्द भोगोगे, अमृत रस पिओगे, अपने ध्रुवतत्व शुद्धात्म स्वरूप ममल स्वभाव में लीन रहोगे, यह पर पर्याय-संसार को न देखकर अपने शुद्धात्म प्रकाश को देखोगे, शुद्ध दृष्टि रखोगे उतने परमानन्द में रहोगे और इसी से यह कर्मोदय, पर्याय गलेगी, विलायेगी। अपनी पर्याय में शुद्धि आयेगी, अपने अनन्त गुण प्रगट होंगे। मार्ग और साधना यही है। सब तुम्हारे अनुभव प्रमाण अनुभूति युत ज्ञान, श्रद्धान में है ही, अब तो सम्यक्चारित्र के लिये जोर लगाने सत्पुरूषार्थ करने की बात है। अब इस माया और राग से दृष्टि हटाओ। अपना ज्ञान-विज्ञान बल जाग्रत कर स्वयं में स्वस्थ आनंदित रहो।

प्रश्न - इतना जोर लगाने सत्पुरूषार्थ ज्ञान-ध्यान साधना करने के बाद भी यह मिथ्यात्व, कुज्ञान, शल्य, विषय-कषाय के भाव आते हैं, कर्मोदय भयभीत करता है, इसके लिये क्या किया जाये ?

इसके समाधान में सद्गुरू श्री जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज आगे गाथा कहते हैं -

गाथा-२८

जिन वयनं सहकारं, मिथ्या कुन्यान सल्य तिक्तं च।
विगतं विसय कसायं, न्यानं अन्मोय कम्म गलियं च ॥

शब्दार्थ - (जिन वयनं) जिनेन्द्र के वचनों को, अन्तरात्मा की आवाज को (सहकारं) स्वीकार करो (मिथ्या) झूठे, मिथ्यात्व (कुन्यान) कुज्ञान, विपरीत बुद्धि (सल्य) मन की मायाचारी (तिक्तं च) छूट जाती है (विगतं) विला जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं (विसय) पाँच इन्द्रियों के विषय भोग की कामना (कसायं) अन्तर वासना, क्रोध, मान, माया, लोभ (न्यानं अन्मोय) ज्ञान का आलम्बन लो, ज्ञान का आश्रय करो, ज्ञान भाव में रहो (कम्म गलियं च) कर्म गल जाते हैं।

विशेषार्थ - श्री जिनेन्द्र परमात्मा के वचन, अन्तरात्मा की आवाज स्वीकार करो, इससे मिथ्यात्व, कुज्ञान, शल्य आदि सब छूट जाते हैं फिर यह विषय-कषाय भी नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान स्वभाव का आलम्बन लो, ज्ञान भाव में रहो तो यह सब कर्म भी गल जाते हैं।

श्री जिनेन्द्र परमत्मा के वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं, शोभनीक, मंगलीक, जय-जयवंत, कल्याणकारी, महासुखकारी हैं। यह कहने मात्र से काम नहीं चलता, इसको स्वीकार करो। भगवान कहते हैं आत्मा आनन्द स्वरूप है उसके आनन्द की प्राप्ति होना – वही मांगलिक है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत् शाश्वत ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। पर्याय में उसकी प्राप्ति, प्रतीति होना ही मंगल है। इस मंगल से ही पाप-पुण्य, मिथ्यात्व, अज्ञान, शल्य विषय-कषाय गल जाते हैं नाश हो जाते हैं, तभी वह सही मंगल है।

भगवान ने कहा है – निज शुद्धात्मानुभूति करो, यही श्रेष्ठ इष्ट मुक्ति का मार्ग, आत्मा से परमात्मा होना है। अनेक प्रकार के शुभाशुभ भाव करने से कोई कार्य सिद्धि तो होती नहीं है। कार्य सिद्धि तो अनन्त-अनन्त आनन्द के सागर ऐसे शुद्धात्म स्वरूप की ओर ढलने, उसी में रमने-जमने से होती है, उधर क्यों नहीं झुकता ? अनेक प्रकार के विकल्प और क्रियाओं में उलझना तो अपने स्वरूप से भ्रष्ट होना है। जितना इन शुभाशुभ भाव को देखोगे, बाह्य क्रिया में उलझोगे, उतने ही स्वानुभव के मार्ग से भ्रष्ट होते जाओगे तथा इससे कोई कार्य सिद्धि होना नहीं है।

प्रथम आत्मा का निर्णय करके, स्वानुभव का प्रयत्न करना चाहिए। सम्यक्दृष्टि ऐसा जानता है कि शुद्ध निश्चय नय से मै मोह, राग-द्वेष आदि विकारी भावों से रहित शुद्ध चैतन्य ज्योति ज्ञायक स्वभावी भगवान आत्मा हूँ। ऐसे निर्णय की दृढ प्रतीति से ही अज्ञान, मिथ्यात्व, शल्य, विषय, कषाय छूट जाते हैं। केवल जिनवाणी का वाचन करने, बोलने, पर को बताने में लगे रहने से चिन्तन शक्ति घटती है। जिनवाणी को जीवन मे उतारना है। **धर्म चर्चा का विषय नहीं, चर्या का विषय है।** जितना शुभाशुभ विकल्प और क्रिया कांड में उलझना, बहना, उनमें बढते जाना, उतने ही स्वानुभव के मार्ग से भ्रष्ट होना है। द्वादशांग में एक स्वानुभूति करने का ही निर्देश है। सर्व शास्त्रों का सार आत्मानुभवन करना है और इससे ही सब मिथ्यात्व, अज्ञान, विषय-कषाय, कर्मादि गलते-विलाते, क्षय हो जाते हैं।

भगवान जिसके हृदय में विराजते हैं, उसका चैतन्य शरीर-राग, द्वेष रूपी जंग से रहित हो जाता है। भगवान सर्वज्ञ देव ऐसा कहते हैं कि आत्मा में शरीर, संसार या रागादि हैं ही नहीं, सर्व प्रथम ऐसा निर्णय कर आत्मा का अनुभव कर ले। इसके बजाय जो ऐसा मानते हैं कि प्रथम शुभ क्रिया कर,

कषाय मंद कर, आत्मा हल्का हो तब आत्मा का अनुभव होता है, वे जीव-देव, गुरू, शास्त्र के कथन का अनादर करते हैं। यह आत्मा ही जिनवर है, यही तीर्थंकर है। अनादि काल से जिनवर है, अनन्त केवलज्ञान की खानि है। निज आत्मा ही अमृत का कुंभ है, अमृत का सरोवर है, इसी में एकाग्र होने से, पर्याय में जिनवर के दर्शन होते हैं परमात्मा प्रगट होते हैं।

भगवान तू तो अनन्त गुणों का भंडार है, पुण्य-पाप रागादि भावों का भंडार नहीं है, यह तेरे में हैं ही नहीं। तू इन्हें अपने मानता है, यही मिथ्यात्व अज्ञान है। भगवान आत्मा ज्ञायक भाव रूप है और शुभाशुभ भाव अचेतन रूप हैं, मन की तरंगें हैं, कर्मोदय जन्य हैं। यदि ज्ञायक स्वरूप-शुभाशुभ भाव रूप हो, तो जो चेतन है, वह अचेतन हो जाये, स्व-पर प्रकाश पुंज-प्रभु तो शुद्ध ही है, पर जो राग से भिन्न होकर उसकी उपासना करे, उसी के लिये शुद्ध है। आत्मा कभी रागादि विकल्प रूप नहीं हुआ है अत: रागादि से भिन्न होकर निज शुद्ध स्वभाव की उपासना करने पर पर्याय में भी शुद्धता प्रगट होती है। जैसे राग की मंदता मोक्ष मार्ग नहीं है, जैसे व्यवहार सम्यक्दर्शन मोक्ष मार्ग नहीं है या मोक्ष का कारण नहीं है। वैसे ही उनके साथ प्रवर्तित पर सत्तावलंबी ज्ञान भी न तो मोक्षमार्ग है और न ही मोक्ष का कारण है। स्व सत्ता को अनुभव मे लेने की योग्यता वाला ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। ज्ञानानुभूति आत्मानुभूति यही मोक्ष का कारण है और इसी से सब कर्मादि क्षय होते हैं।

राग-द्वेषादि विकार भाव, उस ओर की परिणति ही दु:ख है। इससे मुक्त होने की इच्छा वाले मोक्षार्थी पुरूष को सर्व प्रथम आत्मा को जानना, जैसा जिनेन्द्र भगवान कहा है कि आत्मा चैतन्य रत्नाकर है, विकार की वृत्ति उससे भिन्न है। पुण्य-पाप रूप विकारों से भिन्न होकर सर्व प्रथम ज्ञायक स्वभावी सच्चिदानन्द प्रभु को जानो। तेरे ज्ञान की पर्याय में सदैव स्वयं आत्मा ही खुद अनुभव में आता है। अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आने पर भी तू उसे नहीं देखता ! क्यों ? क्योंकि पर्याय बुद्धि के वश हो जाने से परद्रव्यों के साथ एकत्व बुद्धि के कारण स्व द्रव्य को नहीं देख सकता। सद्गुरू और शास्त्र तो दिशा बतलाते हैं कि रागादि विकारी भाव रूप तू नहीं है अत: वहाँ से दृष्टि हटा और अपने ध्रुव स्वभाव में दृष्टि लगा क्योंकि स्थिर वस्तु में दृष्टि स्थिर हो सकती है। अस्थिर वस्तु में दृष्टि स्थिर नहीं हो सकती। ध्रुव स्वभाव स्थिर वस्तु है, वह स्वयं के परिणमन में भी नहीं आती अत: उस पर दृष्टि देने से दृष्टि स्थिर होती है। इस प्रकार जिनवाणी और सद्गुरू मार्ग दिखलाते हैं पर करना

तो स्वयं अपने को है, इसके बिना जन्म-मरण का अन्त आने वाला नहीं है।

जब यह आत्मा स्वयं रागादि विकारी भावों से भिन्न होकर अपने में एकाग्र होता है तब केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाली भेदज्ञान ज्योति उदित होती है और दर्शन, ज्ञान मय स्वभाव में अस्तित्व रूप जो आत्म तत्व है, उसमें एकत्व गत रूप से वर्तित हो, तभी वह आत्मा स्वसमय में प्रतिष्ठित होता है।

प्रभु को रागादि विकारी भावों से सम्बन्ध वाला कहना ही बडे खेद की बात है। रागादि से एकता तोडकर, कर्मादि को जीतकर स्वभाव में एकता करे, तो सच्चा जैन (जिन) कहलाये। शाश्वत लक्षण युक्त स्वभाव के साथ कृत्रिम भाव को जोडना, उन्हें अपना मानना, भयभीत भ्रमित होना, यह तो बड़े दु:ख रूप खेद की बात है। पवित्र वस्तु, अपवित्र रूप से परिणमित हो तो वह उसकी शोभा नहीं हैं। वस्तु, अकषाय स्वरूप है, उसमें मिथ्यात्वादि दोष नही हैं। विषय-कषाय कुछ हैं ही नहीं। उसका अकषाय भाव रूप परिणमित होना, वही उसकी शोभा है। चैतन्य का जो त्रिकाली स्वरूप है, उसका विचार करें, तो एक रूपता ही शोभनीय है। सत् शाश्वत ज्ञान और आनन्द स्वरूप भगवान एक रूप ज्ञान भाव मे रहे वही उसकी शोभा है। आत्मा,रागादि विकल्प रहित निर्विकल्प स्वरूप है अत: निर्विकल्प स्वरूप की श्रद्धा ज्ञान चारित्र मय एक रूपता होने पर यह सब विषय-कषाय, कर्मादि गल जाते हैं, क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न – हम इसके लिये बहुत जोर लगा रहे हैं, पूरा पुरूषार्थ कर रहे हैं, इसके बाद भी यह सब होते हैं, इसका क्या कारण है ?

समाधान – जैसे कोई तैरना सीखना चाहता है और घर में अच्छे गद्दे तकिये लगाकर हाथ-पैर पटकता है, क्या वह तैरना सीख जायेगा ? जैसे जिसके चारों तरफ आग जल रही हो, वह बीच में बैठा हुआ चाहे कि अच्छी शान्त, शीतल, ठंडी हवा का आनन्द मिले, क्या मिल सकता है ? नहीं, इसी प्रकार हम कहाँ, किस स्थिति में किस भूमिका में बैठे हैं और इसमें अतीन्द्रिय आनन्द में रहना चाहें, तो क्या यह सम्भव है ? जब तक पूर्व बन्ध, कर्मोदय संयोग, निमित्त-नैमित्तिक संबंध है तब तक उसी पात्रता, भूमिकानुसार ही सारा परिणमन चलेगा परन्तु ज्ञान मार्ग की यह विशेषता है कि इसके साधक को बडा आत्मबल, निर्भयता-दृढता होती है। वह फिर इन किन्हीं भी कर्मोदय, विभाव परिणामों को महत्व नहीं देता, परवाह नहीं करता, इनसे भ्रमित भयभीत नहीं होता, अच्छा बुरा नहीं लगता, अपने ज्ञान भाव में स्थिर रहता

है, इससे यह क्रमशः गलते–विलाते भूमिकानुसार क्षय होते जाते हैं।

प्रश्न– यहाँ एक भ्रम पैदा होता है कि बाह्य में संयम–तप, व्रतादि धारण करने की बात करते हैं तो वहाँ पहले ज्ञान करने की बात बताई जाती है, यहाँ पात्रता भूमिका की बात बताई जा रही है, इसका सही समन्वय–समाधान क्या है ?

समाधान – सम्यक्दर्शन पूर्वक सम्यक्ज्ञान होता है और सम्यक्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र होता है। जीव की पात्रता, पुरूषार्थ अनुसार सम्यक्चारित्र स्वयमेव होता है, करना नहीं पडता। जैसे–बीज बोने के बाद उसमें अंकुर, पत्ती, फल–फूल अपने आप ही लगते हैं, लगाना नहीं पडते। इसी प्रकार इस ज्ञान मार्ग में सम्यक्दृष्टि ज्ञानी को सम्यक्चारित्र स्वयमेव होता है, न होवे तो उसकी मुक्ति ही नहीं हो सकती। अब इसमें कुछ बातें हैं, जो ध्यान में रखना आवश्यक हैं।

(१) राग पूर्वक या कर्ता बुद्धि से कोई भी व्रत–संयम तपादि बंध के कारण हैं। जहाँ धारण करने का भाव है,वह राग भाव है, ज्ञानी को यह सब सहज में होते हैं। जैसे–जैसे वह अपनी अनुभूति मे डूबता है, वैसे–वैसे ही सब पाप, विषय–कषाय अपने आप छूटते जाते हैं, इसी का नाम व्रत–संयम–तप है और यह न हों ऐसा होता नही है।

(२) सम्यक्दृष्टि ज्ञानी को – १. कुछ भी करने का राग, २. मरने का भय, ३. भोगने की इच्छा नहीं होती, वह निःशंकितादि अंग पूर्वक निर्भय, निश्चिंत, निर्द्वंद होता है। जहाँ कर्मोदय पर्याय से भयभीतपना है, वहाँ अभी अज्ञान है। अभी सम्यक्ज्ञान शुद्ध नही हुआ।

(३) पूर्व कर्म बध की सत्ता स्थिति अनुभाग क्या है ? इसके ज्ञान पूर्वक ही वह आगे बढता है। कोई संसारी कामना–वासना, पूजादि लाभ का इच्छुक नहीं है अतः अपनी पात्रतानुसार ही आगे बढता है। सम्यक्चारित्र में पूर्व कर्म बधोदय और जीव के पुरूषार्थ का ही खेल है और इसमें पाच समवाय सहकारी हैं।

(४) जिसे चारों अनुयोग, पांच समवाय, दोनों नय का यथार्थ ज्ञान होता है, वह ज्ञानी है और वह समता–शांति में ज्ञायक रहता है, तत् समय की योग्यतानुसार सारा परिणमन चलता है, इससे न वह भयभीत है, न भ्रमित है, न कोई चाहना–कामना है, वह हर दशा में हर समय आनन्द में रहता है,

उसका नाम ज्ञानी है।

(५) शुद्ध अध्यात्म (ज्ञान मार्ग) में निश्चय नय की मुख्यता रहती है। शुद्ध निश्चय नय के अवलम्बन द्वारा ही चला जाता है। व्यवहार नय गौण रहता है। वह सहकारी रूप में साथ-साथ चलता है। जब तक संसार में संयोगी दशा है, तब तक बराबर दोनों के समन्वय पूर्वक ही चला जाता। सही समझ का नाम मुक्ति है, इसलिये सब भ्रम मिटाकर यथार्थ निर्णय करो।

प्रश्न – फिर इसमें लोगों को यह कहने में न आयेगा कि मात्र निश्चय नय आत्मा-शुद्धात्मा की ही चर्चा करते हैं, पाप-परिग्रह में लगे हैं, कोई व्रत-संयम-नहीं है, ऐसी चर्चा और ऐसे लोगों से क्या मतलब ?

समाधान- यहाँ एक सूत्र याद रखना **''निज हेर बैठो, नहीं तो रार करो''** अपने को देखो – स्वयं कैसे क्या हैं; क्योंकि जैसे स्वयं हैं, वैसा ही अपना होना है, पर से कोई अपेक्षा ही नहीं है। लोग पर्याय दृष्टि से देखते हैं और उन्हें जैसा दिखता है, वैसा कहते हैं। इसमें डरने और बुरा मानने की क्या बात है। हाँ, यदि हम निश्चय नय की बात कर रहे हैं और जीवन उससे शून्य है, कोई श्रद्धान, ज्ञान नहीं है, आत्म कल्याण की भावना नहीं है, धर्म के नाम पर धंधा कर रहे हैं, अपनी आजीविका चला रहे हैं, संसारी कामना-वासना की पूर्ति कर रहे है तो वह स्वयं के लिये भी दुर्गति का कारण है और इससे धर्म का घात होता है; परन्तु यदि इस शुद्ध नय की चर्चा करने, सुनने से, हमारी पर द्रव्य से भिन्नता, पर द्रव्य का अकर्तापना, रागादि भावों में हेय बुद्धि और अन्तर की चैतन्य ज्योति, परमात्म शक्ति की जाग्रति हो रही है, अनुभूति में आ रही है, उसके प्रति ज्ञान, श्रद्धान, स्वरूपाचरण चारित्र की जितनी विशेषता, सुधार होगा, यही सच्चा सुधार है और इससे पर्याय में शुद्धि आती है, व्यवहार मे भी उस रूप परिणमन होने लगता है।

जो आत्म श्रद्धान ज्ञान को यथार्थ किये बिना, त्याग तप, व्रत आदि करते हैं, जिन शासन में आत्म भान बिना, बाह्य त्याग आदि को अन्तर दाह कहा है।

हमें पर को नहीं देखना, स्वयं को देखना है और अपनी पात्रतानुसार आगे बढना है। ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना करने, आलम्बन लेने, उसमें लीन रहने से ही सारे विभाव परिणाम और कर्मबंध गलते, विलाते हैं, क्षय होते हैं।

जिनेन्द्र के वचनों को स्वीकार करते हुये हम अपना आत्मबल पुरूषार्थ

जाग्रत करें। ज्ञानोपयोग और ज्ञान भाव में अर्थात् हमेशा जाग्रत होश में रहने से यह सब पर्यायें और कर्मादि गलते-विलाते हैं।

प्रश्न - ज्ञानोपयोग के साथ और क्या करें, जिससे यह कर्म जल्दी क्षय हो जायें ?

इसके समाधान में श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य महाराज आगे गाथा कहते हैं -

गाथा-२९

कमलं कमल सहावं, षट् कमलं तिअर्थ ममल आनंदं।
दर्सन न्यान सरूवं, चरनं अन्मोय कम्म संषिपनं ॥

शब्दार्थ - (कमलं) कमल श्री, आत्मा (कमल सहाव) कमल स्वभावी, ज्ञायक स्वभावी, ज्ञातादृष्टा, साक्षी स्वभाव है (षट् कमलं) छह कमल के माध्यम से योग, ध्यान साधना करो (तिअर्थ) रत्नत्रय, द्रव्य गुण पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य (ममल) ममल स्वभाव (आनंदं) आनन्द में रहो (दर्सन) सम्यक्दर्शन (न्यान) सम्यक्ज्ञान (सरूवं) स्वरूपी (चरनं) सम्यक्चारित्र (अन्मोय) आलम्बन लो, लीन रहो (कम्म संषिपनं) संपूर्ण कर्म निर्जरित क्षय हो जायेंगे।

विशेषार्थ - हे कमल श्री ! आत्मा, कमल स्वभाव (ज्ञायक स्वभाव) है। जैसे-कमल पानी और कीचड में रहता हुआ भी कीचड पानी से निर्लिप्त न्यारा है, उसी प्रकार निज शुद्धात्मा, शरीरादि कर्मों से भिन्न निर्लिप्त, निर्विकारी न्यारा है। ऐसे रत्नत्रयमयी निज शुद्धात्मा का षट्कमल योग साधना पद्धति से ध्यान करो और ममल स्वभाव के आनन्द में आनन्दित रहो। सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान स्वरूपी शुद्धात्मा समयसार है। अब सम्यक्चारित्र का अवलम्बन लो, अपने समयसार स्वरूप शुद्धात्मा में लीन रहो, साधु पद धारण कर रत्नत्रयमयी शुद्ध भाव में लीन रहो, इससे सारे कर्म क्षय होंगे, और परमानन्दमयी परम पद परमात्म स्वरूप प्रगट हो जायेगा।

आत्मा में सहज भाव से दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण विद्यमान हैं। पर से भिन्न ज्ञायक स्वभाव का निर्णय करके बारम्बार भेदज्ञान का अभ्यास करते-करते मति श्रुत के (मन बुद्धि के) विकल्प टूट जाते हैं, उपयोग गहराई में चला जाता है, तदनुसार गहराई में भगवान आत्मा के दर्शन होते हैं।

ज्ञायक स्वभाव, कमल स्वभाव आत्मा का निर्णय करके मति श्रुत ज्ञान का उपयोग जो बाह्य में जाता है, उसे अन्तर में समेट लेना, बाहर जाते हुए उपयोग को कमल स्वभाव के आलम्बन द्वारा बारम्बार अन्तर में स्थिर करते रहना, यही सम्यक्चारित्र है, इसमें स्थिरता होना ही साधु पद है।

इसके लिये ज्ञान पूर्वक साधना करो, छह कमल से योग साधना की पद्धति है, इसका अभ्यास करना यह षट् कमल है।

षट् कमल साधना –

१. गुप्त कमल – लिंग और गुदा के बीच स्थान पर छह पंखुडी का कमल बनाकर छह अर्क स्थापित करो – कमलसी अर्क, चरनसी अर्क, करनसी अर्क, सुवनसी अर्क, हंससी अर्क, अवयासश्री अर्क ; और इनका बारम्बार चिन्तन मनन करो, इसकी सिद्धि होने पर कई विशेषतायें होती हैं, इसी को मूलाधार चक्र कहते है, जिससे कुंडली जागरण होता है।

२. नाभिकमल – साधक इस नाभि कमल पर भी छह पंखुडी बनाकर – दिप्तिसी अर्क, सुदिप्तिसी अर्क, अभयसी अर्क, सुर्कसी अर्क, अर्थसी अर्क, विन्दसी अर्क का जागरण करता है।

३. हृदय कमल – इस कमल की आठ पंखुडियां होती हैं, इन पर क्रमश:– नन्दसी अर्क, आनन्दसी अर्क, समयसी अर्क, सहयाररसी अर्क, हियरमनसी अर्क, अलखसी अर्क, अगमसी अर्क, रमनसी अर्क। इनका अभ्यास करने से हृदय कमल खिल जाता है।

४. कंठकमल – चार पंखुडी का कमल होता है जिसमें– सुई रंजसी अर्क सुई उवनसी अर्क, षिपनसी अर्क, ममलसी अर्क की साधना की जाती है।

५. मुख कमल – इसकी छह पंखुडियां होती हैं, उन पर–विक्तसी अर्क, सुई समयसी अर्क, सुनंदसी अर्क, हिययाररसी अर्क, जानसी अर्क, जिनसी अर्क की साधना, अभ्यास किया जाता है।

६. विंद कमल – इसकी छह पंखुडी होती हैं, जिनमें–लखनसी अर्क, लीनसी अर्क, भद्रसी अर्क, मै उवनसी अर्क, सहनसी अर्क पै उवनसी अर्क की साधना की जाती है। इसका विशद् विवेचन ममल पाहुड जी ग्रंथ में है।

इन षट्कमलों के माध्यम से मन, वचन, काय को एकाग्र कर ध्यान समाधि लगाना, अपने आत्म प्रदेशों को एक कमल में केन्द्रित करना, इससे शून्य समाधि की स्थिति भी बनती है तथा पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ रूपातीत

ध्यान की साधना अभ्यास करो इससे मन शान्त होता है, उपयोग स्थिर शून्य होता है, आत्मानुभूति की स्थिति बनती है। यही धर्म, शुक्ल ध्यान हो जाता है, जिससे सारे कर्म क्षय हो जाते हैं, केवलज्ञान प्रगट होता है।

योग की साधना निम्न प्रकार होती है -

योग के अंगों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश, विवेक का जागरण जीवन पर्यन्त के लिये हो जाता है।

योग के आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

(१) यम - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह; यही यम-जाति, देशं, काल, और निमित्त की सीमा से रहित सार्वभौम होने पर महाव्रत हो जाते है।

(२) नियम - शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और परमात्मा के प्रति समर्पण-यह पांच नियम हैं।

इन यम - नियम में बाधा पहुंचाने वाले वितर्क होते हैं, जो साधक को विचलित करते हैं, उस समय सावधान रहना चाहिये।

वितर्क - कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि अवगुणों द्वारा, लोभ, क्रोध, मोह, काम (माया) के भाव, मन्द लहर, तीव्र उद्वेग, तीव्रतर तूफान के रूप में उपस्थित होते हैं, इनको दूर करने के लिये -त्याग, वैराग्य, अनित्यादि भावना को दृढ करते रहना चाहिये, इन यम, नियम की सही स्थिति होने पर साधक को विशेष उपलब्धि होती है-

१. अहिंसा की दृढ स्थिति हो जाने पर -इसके निकटवर्ती हिंसक जीव भी बैर भाव से रहित हो जाते है।

२. सत्य की दृढ स्थिति होने पर - जिसको जो कुछ कह दे वह सत्य होता है।

३. अचौर्य की दृढ स्थिति होने पर -धन रत्न आदि उसके चरणो मे लोटते हैं।

४. ब्रह्मचर्य की दृढ स्थिति होने पर - उसके मन-बुद्धि-इन्द्रिय, शरीर मे अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है, वह अजेय हो जाता है।

५. अपरिग्रह की दृढ स्थिति होने पर -अर्थात् मूर्च्छा भाव खत्म होने पर- पूर्व जन्म, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान प्रगट हो जाता है।

६. शौच का अन्तरंग, बहिरंग पालन करने से -अन्त: करण की शुद्धि,

मन में प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना और आत्म साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

७. तप से – रिद्धि–सिद्धि की प्राप्ति होती है।

८. स्वाध्याय से –अपने इष्ट की प्राप्ति, परमात्मा के दर्शन होते हैं।

९. परमात्मा के प्रति समर्पण से –समाधि, निर्विकल्प दशा की प्राप्ति होती है।

(३) आसन – निश्चल (हलन चलन रहित) सुख पूर्वक एकाग्र बैठने का नाम आसन है। पद्मासन, सुखासन आदि आसन की सिद्धि होने पर, शरीर में गर्मी–सर्दी आदि द्वंदों का प्रभाव नहीं पडता।

द्वंद चित्त को चंचल बनाते हैं।

(४) प्राणायाम – श्वास और प्रश्वास की गति का रुक जाना प्राणायाम है। इसके रेचक, पूरक, कुम्भक आदि भेद हैं।

विशेष – बाहर और भीतर के विषयों का त्याग कर देने से अपने आप होने वाला– चौथा प्राणायाम है। इससे मन भी शान्त हो जाता है। प्राणों की गति भी रुक जाती है तथा श्वास आदि का पता ही नही चलता।

(५) प्रत्याहार – अपने विषयों के सम्बंध से रहित होने पर इन्द्रियों का जो चित्त के स्वरूप मे तदाकार सा हो जाना है वह प्रत्याहार है।

जब साधन काल मे साधक इन्द्रियों के विषयों का त्याग करके चित्त को अपने ध्येय में लगाता है, उस समय जो इन्द्रियों का विषयों की ओर न जाकर चित्त में विलीन सा हो जाना हे, यह प्रत्याहार सिद्ध होने की पहिचान है।

यदि उस समय भी इन्द्रियां पहले के अभ्यास से इसके सामने बाह्य विषयो का चित्र उपस्थित करती रहें, तो समझना चाहिये कि प्रत्याहार नहीं है।

इन्द्रियों का सर्वथा वश में हो जाना ही प्रत्याहार है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार–इन पांच बहिरंग साधनों की सही साधना होने पर – धारणा, ध्यान,समाधि यह तीन अंतरंग साधन होते हैं, जिनकी पूर्णता होने पर उसका नाम संयम हो जाता है।

(६) धारणा– बाहर या शरीर के भीतर कहीं भी किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है। नाभि चक्र, हृदय कमल आदि षट् कमल शरीर के भीतरी देश हैं तथा बाह्य किसी वस्तु, चिन्ह, आदि बाहर के देश हैं, इनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम धारणा है।

(७) ध्यान– जहाँ चित्त को लगाया जाय, उसी मे वृत्ति का एक तार चलना

ध्यान है। जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाय, उसी में चित्त एकाग्र हो जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का न उठना ध्यान है।

(८) समाधि- जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वही ध्यान ही समाधि सा हो जाता है।

ध्यान करते-करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, उसके अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है। उसकी ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती। उस समय उस ध्यान का नाम ही समाधि हो जाता है, यही निर्वितर्क समाधि कहलाती है।

विवेक, ज्ञान होने पर ही कैवल्य प्राप्त होता है, वह चाहे किसी भी निमित्त से किसी भी प्रकार हो, सम्यक्ज्ञान महत्वपूर्ण है।

जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित है, निशंक, निर्भय, और आशा रहित है तथा जिसका मन वैराग्य से युक्त है वही ध्यान में सुनिश्चित भली भाँति स्थिर होता है।

चाह मात्र मन की निर्मात्री है।

मनुष्य मन से छूटना चाहता है, मन से छूटने की चाह ही मन को बनाये है क्योंकि सभी चाह मन को बनाती हैं। तुम सिर्फ देखते रहो,दृष्टा बनो, चुनाव मत करो, यह अच्छा है, यह बुरा है, यही राग है। जो मन को सक्रिय और जीवित रखता है।

चुनाव रहित सजगता में मन का निर्माण नहीं होता, मन के शान्त हो जाने का नाम ही ध्यान है, कर्ता के क्षीण हो जाने से कर्म क्षीण हो जाते हैं।

ध्यानी योगी अपनी आत्मा को शरीर तथा समस्त बाह्य संयोगों से भिन्न देखता है, शरीर मरता है इसलिये शरीर के साथ जुडे तो भय रहेगा, मन बदलता है, मन के साथ जुडे, तो जीवन में कभी थिरता नहीं होगी, मन और शरीर के पार जो छिपा है- साक्षी चैतन्य, उससे जुड़े रहो तो फिर सब शाश्वत है।

हे साधक ! तू न तो शरीर से कोई चेष्टा कर, न वाणी से कुछ बोल और न मन से कुछ चिंतवन कर, इस प्रकार योग का निरोध करने से तू स्थिर हो जायेगा, तेरी आत्मा, आत्मरत हो जायेगी, यही परम ध्यान है।

जैसे चिर संचित ईंधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है, वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि अपरिमित कर्म ईंधन को क्षण भर में भस्म कर डालती है।

जैसे पूर्णमासी के पूर्ण चन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है, उसी प्रकार ममल स्वभावी, सिद्ध स्वरूपी आत्मा, पूर्ण चैतन्य चन्द्र को स्थिरता पूर्वक निहारने से अन्तर चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है, उस दशा में अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्य देव आश्चर्यकारी आनन्द तरंगों में डोलता है, इससे पूर्व बद्ध कर्म सब निर्जरित क्षय हो जाते हैं।

जब तक तत्व प्राप्ति – सम्यक्दर्शन – सम्यक्ज्ञान का दृढ निश्चय नहीं होता, तब तक अच्छे–अच्छे साधकों को अंत: करण में भी कुछ न कुछ दुविधा विद्यमान रहती है।

इसलिये सर्व तत्व ज्ञान का सिरमौर, मुकुट मणि, परम पारिणामिक भाव निज शुद्धात्म तत्व, ज्ञायक स्वभाव, वह स्वानुभूति का आधार है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान रूप समयसार है, उसमें स्थित होना ही सम्यक्चारित्र है। सम्यक्चारित्र की शुद्धि पूर्वक वृद्धि साधु पद है, यही मोक्ष मार्ग है, इसी से सारे कर्म क्षय होते हैं।

तत्व ज्ञान होने पर तत्काल अंतर में शरीरादि कर्मों से सम्बंध विच्छेद हो जाता है। कर्म का बंध शरीरादि कर्म संयोग से एकत्व होने पर ही होता है, इसलिये शरीरादि कर्मो से सम्बंध विच्छेद होने पर उसके किंचित् भी पापादि कर्म नहीं रहते।

ऐसे निज शुद्धात्म तत्व का आश्रय करने से ही अतीन्द्रिय आनन्द मय स्वानुभूति होती है। यदि साधक का यह दृढ निश्चय हो जाये कि मुझे एक परमात्म पद के सिवाय कुछ नहीं चाहिये तो वह वर्तमान में ही मुक्त हो जाता है। समस्त आशाओं और इच्छाओं से रहित होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाना ही मुक्ति है; परन्तु यदि पर पर्याय पर दृष्टि रहेगी, पर वस्तु में सुख भोग और जीने की भी इच्छा रहेगी तो इच्छा कभी पूरी नहीं होगी और मृत्यु के भय से भी बचाव न होगा तथा कषाय रागादि भावों से भी छुटकारा नहीं होगा इसलिये मुक्त होने के लिये इच्छा रहित होना आवश्यक है।

इसी बात को आगे की गाथा में और स्पष्ट करते हैं –

गाथा - ३०

संसार सरनि नहु दिस्टं, नहु दिस्टं समल पर्जाव सभावं ।
न्यानं कमल सहावं, न्यानं विन्यान कमल अन्मोयं ॥

शब्दार्थ - (संसार सरनि) संसार परिभ्रमण, चार गति पंच परावर्तन रूप संसार चक्र (नहु दिस्टं) मत देखो (समल पर्जाव) समल पर्याय, कर्मोदय जन्य विकारी परिणमन (नहु दिस्टं) मत देखो (सभावं) स्वभाव को, निज स्वरूप को देखो (न्यानं) ज्ञान मयी (कमल सहावं) कमल स्वभाव, ज्ञायक स्वभाव (न्यानं विन्यान) ज्ञान-विज्ञान, भेदविज्ञान पूर्वक (कमल) ज्ञायक स्वभाव आत्मा (अन्मोयं) आलम्बन लो, आश्रय करो, लीन रहो।

विशेषार्थ- हे कमल श्री (आत्मा) ! चार गति पंच परावर्तन रूप ससार के परिभ्रमण को मत देखो, निज आत्मा का ध्यान करो। यह रागादि रूप जो भी समल पर्याय (कर्मोदय जनित विकारी परिणमन) है, इसको भी मत देखो, अपने शुद्ध चिद्रूप निज स्वभाव का स्मरण रखो।

निज शुद्धात्मा ज्ञान स्वभावी कमल के समान प्रफुल्लित निर्लिप्त निर्विकारी न्यारा मात्र ज्ञायक स्वभावी है। भेद विज्ञान पूर्वक इसी ज्ञान विज्ञान मयी ममल स्वभाव मे लीन रहो, इसी से अपने परमात्म पद की प्राप्ति होगी, यही सम्यक्चारित्र है। भूल यह होती है कि हम परिस्थितियों की ओर तो देखते है, पर निज स्वरूप की ओर नही देखते। अपने सत्स्वरूप की ओर न देखने के कारण ही हम आने-जाने वाली परिस्थितियो से मिलकर सुखी-दु:खी, भयभीत होते हैं; वस्तुत: हमे अपने स्वरूप पर सदा दृष्टि रखना चाहिये।

वास्तव मे प्रत्येक प्राणी स्वतंत्र, अपने स्वरूप से असग ही है। शरीरादि पर मे अपनत्व मान कर सुख की इच्छा से उनमे आबद्ध हो जाता है। मन मे चाह पैदा होने लगती है। यह होना, यह नहीं होना और इसी से राग-द्वेष होने लगते हैं, इन भावों का होना ही ससार सरनि का बहना है।

साधक का सम्बन्ध नित्य-निरन्तर रहने वाले ध्रुव स्वभाव के साथ रहता है, प्रति क्षण परिवर्तन शील पर्याय के साथ नहीं, इसलिये उसकी स्थिति स्वाभाविक ही समता में रहती है। वास्तव में होता वही है, जो होने वाला है। जो नहीं होने वाला है, उसे चाहे या न चाहे, वह नहीं होगा, ऐसी समता का आना ही द्वन्दातीत स्थिति है।

अपने को कर्मो का कर्ता मान लेना तथा कर्म फल में हेतु बनकर

सुखी–दु:खी होना ही दर्शन मोहांध है। पाप–पुण्य हमें करने पडते हैं, इनसे हम कैसे छूट सकते हैं, इस प्रकार की धारणा बना लेना ही अज्ञान से मोहित होना है। जीव स्वरूप से अकर्ता तथा सुख–दु:ख से रहित है, केवल अपनी मूर्खता के कारण वह कर्ता बन जाता है और कर्म फल के साथ संबंध जोडकर सुखी–दु:खी होता है।

जिन पुरूषों ने अपने ज्ञान के द्वारा अज्ञान को नष्ट कर दिया है अर्थात् यह सब पर पर्याय, संसार–सरनि रूप भाव आने–जाने वाले, छूटने वाले हैं और स्वय सत्स्वरूप शाश्वत रहने वाला है। ऐसा अनुभव करके असत् पर्याय से सर्वथा संबध विच्छेद कर दिया है, उनका भेदविज्ञान द्वारा ज्ञान, विज्ञानघन होता हुआ केवलज्ञान स्वरूप प्रकाशित हो जाता है।

भव बंधन से मुक्ति का पथ पूर्ण रूप से ज्ञान, वैराग्य पर निर्भर है।

पदार्थ और क्रिया रूप संसार से अपना संबंध मानने के कारण, मनुष्य मात्र मे पदार्थ पाने और कर्म करने का राग रहता है कि मुझे कुछ न कुछ मिलता रहे और मै कुछ न कुछ करता रहूँ। इसी को ''पाने की कामना'' और ''करने का राग'' कहते है। शरीर से जो क्रियायें होती हैं , वाणी से जो कथन होता है और मन मे जो सकल्प–विकल्प होते है, यह सब कर्मोदय जन्य परिणमन है। जीव आत्मा इन सबसे भिन्न चैतन्य ज्योति ज्ञायक स्वभावी है। ऐसा तत्व ज्ञान, भेदविज्ञान होने पर तत्काल स्वत: सिद्ध परम शांति की अनुभूति हो जाती है, जिससे – १. जीने की इच्छा, २. मरने का भय, ३. पाने की कामना, ४. करने का राग, सर्वथा समाप्त हो जाता है।

राग–द्वेष को मिटाने के लिये यह विचार करना चाहिये कि अपने न चाहने पर भी अनुकूलता–प्रतिकूलता आती है, संयोग–वियोग होता है, क्योंकि अनुकूलता–प्रतिकूलता, सयोग–वियोग, हानि–लाभ, जीवन–मरण यह सब पूर्व कर्म उदयानुसार प्रारब्ध के फल स्वरूप आते–जाते होते रहते हैं, फिर इनके आने–जाने, होने मे कुछ भी इंच्छा, चाह क्यों करें और इन्हें अच्छा–बुरा भी क्यों माने ? अपना आत्म स्वरूप तो इन सबसे पृथक् स्वतंत्र, शाश्वत, अविनाशी है। अपने में पर का कर्तृत्व, भोक्तृत्व है ही नही, यह निर्णय करना ही राग–द्वेष को मिटाना है, यही साधक का प्रमुख कर्तव्य है।

संसार, शरीर, पर पर्याय को न देखकर अपने सत्स्वरूप ममल स्वभाव को देखना, उसमें रत रहना ही सम्यक्चारित्र है वही मुक्ति मार्ग है।

कर्म, करण और उपकरण (शरीर, इन्द्रिय, मन आदि कर्म और करण कहलाते हैं) कर्म करने में उपयोगी सामग्री उपकरण कहलाती है। ये तीनों ही उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं। संसार सरनि, समल पर्याय और परसंयोग, कर्मादि यह सब क्षणभंगुर, असत् और नाशवान हैं, इनकी ओर देखना और अपना मानना ही अज्ञान है।

साधक को इन तीनों से संबंध विच्छेद करना होता है। इनसे संबंध विच्छेद तभी होता है, जब साधक ''अपने लिये कुछ नहीं करेगा'',''अपने लिये कुछ नहीं चाहेगा'', और अपना कुछ नहीं मानेगा; कारण कि मेरा सत्स्वरूप शाश्वत, अविनाशी ज्ञान विज्ञान मयी ममल स्वभाव है और यह जो कुछ है , सब असत् नाशवंत है। इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि कर्मोदय जन्य हैं इसलिये इनसे होने वाला ज्ञान, परिणमन प्रकृति जन्य है। शास्त्रों को पढ सुनकर, इन मन-बुद्धि के द्वारा जो पारमार्थिक ज्ञान होता है, वह ज्ञान भी एक प्रकार से प्रकृति जन्य है। परमात्म तत्व का ज्ञान, इस कर्मोदय जन्य ज्ञान की अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण है ; अतएव परमात्म तत्व निज शुद्धात्म स्वरूप को निज ज्ञान से ही जाना जा सकता है। अपनी ज्ञानानुभूति द्वारा अपने कमल स्वभाव ज्ञायक भाव में रहना, ज्ञानीपना है और ज्ञान-विज्ञान मयी ममल स्वभाव में लीन रहना सम्यक्चारित्र है, इसी से पूर्व कर्म बंधोदय क्षय होते हैं।

शरीरादि वस्तुयें जन्म से पहले भी हमारे साथ नहीं थीं और मरने के बाद भी नहीं रहेंगी तथा इस समय भी उनका प्रतिक्षण हमसे संबंध विच्छेद हो रहा है, इन मिली हुई वस्तुओं का सदुपयोग करने का ही अधिकार है, अपनी मानने का अधिकार नहीं है। इन्हें अपनी और अपने लिये मानना ही वास्तव में बंधन रूप अज्ञान है।

नाशवान वस्तुओं, संसार सरनि, समल पर्याय, कर्म संयोगादि को अपनी और अपने लिये न मानना ही ज्ञान-विज्ञान है। इससे ही आत्मा परम पवित्र होता है। इस ज्ञान-विज्ञान से जड के साथ माने हुये सम्बंध का सर्वथा अभाव हो जाता है। इस ज्ञान-विज्ञान से आत्मा, सच्चिदानन्द घन परमात्मा हो जाता है फिर नित्य निरन्तर निर्लिप्त, निर्विकारी रहता है। कृत-कृत्य पूर्ण आप्त, स्वयं सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

कर्म बंधन से छूटने का वास्तविक उपाय-योग अर्थात् समता पूर्वक अपने स्वभाव में रहना है।

संसार में आशा या इच्छा के रहने के कारण ही शरीर, इन्द्रियां, मन आदि वश में नहीं होते, जिसे शरीरादि से भिन्न अपनी सत्ता का स्पष्ट विवेक है, वह ज्ञानी है। जिसे इन तीनों बातों का दृढ निश्चय है कि मेरा कुछ नहीं है, मेरे लिये कुछ नहीं चाहिये, मेरे लिये कुछ नहीं करना है, वह निर्विकारी न्यारा ज्ञायक अपने ज्ञान स्वभाव, ममल भाव में रहता है अत: संयोगों का लक्ष्य छोड दे और निर्विकल्प एक रूप वस्तु है, उसका आश्रय ले। त्रिकाली ज्ञायक ध्रुव-ध्रुव-ध्रुव ही मैं हूँ, ऐसा आश्रय, आलम्बन कर। गुण-गुणी के भेद का लक्ष्य छोडकर एक रूप गुणी की दृष्टि कर, तुझे समता होगी, आनन्द होगा, कर्मों का नाश होगा। एक चैतन्य वस्तु ध्रुव है, उसमें दृष्टि देने से तुझे मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा यही सम्यक्चारित्र है।

मोक्ष का कारण सम भाव अर्थात् वीतरागता है। यह वीतरागता शुद्ध द्रव्य को लक्ष्य में लेने से होती है। शुद्धात्मा, ममल स्वभाव के आश्रय बिना वीतरागता नहीं होती। सम भाव का कारण तो वीतराग स्वभावी भगवान आत्मा है। उसका आश्रय करना व पर का आश्रय छोडना ही सम्यक्चारित्र है, यही वीतरागता मुक्ति मार्ग है।

ज्ञान के अभ्यास से भेदविज्ञान होता है व भेदविज्ञान के अभ्यास से केवलज्ञान होता है। जैसे जमीन बिना वृक्ष नहीं ऊगता, वैसे ही मैं अखंड चैतन्य ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ, ऐसी प्रतीति बिना चारित्र नहीं होता, चारित्र अर्थात् स्थिर नहीं होता। शुद्ध चैतन्य स्वरूप की प्रतीति होने के बाद अन्तर में लीनता हो, यही सम्यक्चारित्र है।

ज्ञान-विज्ञान से निज स्वरूप शक्ति को जानना। ज्ञान लक्षण व लक्ष्य रूप आत्मा अपने ज्ञान में भाषित होता है, तब सहज आनन्द की धारा बहती है, यही अनुभूति सम्यक्चारित्र है।

प्रश्न – फिर इसमें बाह्य संयम,नियम, व्रत, प्रतिज्ञा आदि होते हैं या नहीं ?

समाधान – भूमिकानुसार संयम-नियम-व्रत-प्रतिज्ञा आदि सब होते हैं। सम्यक्दर्शन होने के बाद व्रतादि के शुभ विकल्प आते ही हैं तथा प्रतिज्ञा लिये बिना आसक्ति का नाश नहीं होता। आनन्द स्वभाव में लीन रहूँ, ऐसी धर्मी की भावना होती है, बगैर वीतरागता के वह स्थिति बनती नहीं है परन्तु प्रतिज्ञा आदि तत्व ज्ञान पूर्वक होना चाहिए। प्रथम तो स्वभाव का ज्ञान

श्रद्धान होना चाहिए क्योंकि बगैर जड के वृक्ष टिकता नहीं है। शुद्धात्मा को जाने बिना भले ही क्रियाओं के ढेर लगा दो परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता। ज्ञान से ही आत्मा जाना जा सकता है। यथार्थ दृष्टि होने के पश्चात् साधक अवस्था बीच में आये बिना नहीं रहती। साधु पद से ही सिद्ध पद होता है। आत्मा का भान करके स्वभाव में एकाग्रता होती है, तब ही परमात्म स्वरूप समयसार अनुभूत होता है। आत्मा का अपूर्व और अनुपम आनन्द आता है। आनन्द के निर्झर झरते हैं।

प्रश्न - यह तो सब समझ में आता है, सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है परन्तु यह पूर्व बद्ध कर्म कैसे क्षय होते हैं, इसका उपाय बताइये ?

इसके समाधान में सद्गुरू आगे गाथा कहते हैं -

गाथा-३१

जिन उत्तं सद्दहनं, सद्दहनं अप्प सुद्धप्प ममलं च।
परम भाव उपलब्धं, परम सहावेन कम्म विलयंति॥

शब्दार्थ - (जिन उत्त) जिनेन्द्र परमात्मा के कहे हुये वचनो पर (सद्दहन) श्रद्धान करो, अटल दृढ विश्वास रखो (सद्दहनं) श्रद्धान करो (अप्प) आत्मा (सुद्धप्प) शुद्धात्मा (ममलं च) ममल स्वभावी है (परम भाव) परम पारिणामिक भाव, शुद्ध ध्रुव स्वभाव (उपलब्धं) उपलब्ध होओ, प्रगट करो, प्राप्त होना (परम सहावेन) परम स्वभाव से, परम पारिणामिक भाव मे रहने से (कम्म विलयंति) कर्म विला जाते है, क्षय हो जाते है।

विशेषार्थ - जिनेन्द्र परमात्मा के कहे हुये वचनों पर श्रद्धान करो कि मै आत्मा शुद्धात्मा ममल स्वभावी हूँ, ऐसी श्रद्धा सहित स्वानुभूति से परम पारिणामिक भाव, शुद्ध चैतन्य स्वरूप परम स्वभाव मे रहने से केवलज्ञान प्रगट होगा।

अपने चैतन्य स्वरूप परम ज्ञान स्वभाव मे लीन होने से समस्त कर्म विला जाते हैं, श्री गुरूदेव स्वयं कहते हैं -

तं जहं जहं हो कम्म उवनो, समल सुभाये।
सो न्यान अन्मोयह विलियो, ममल सुभाये॥
कम्म सहावं षिपनं, उत्पत्ति षिपिय दिस्टि सभावं।
चेयन रूव संजुत्तं, गलियं विलियं ति कम्म बंधानं॥

सर्वोत्कृष्ट महिमा का भंडार चैतन्य देव निज शुद्धात्मा, अनादि अनन्त परम पारिणामिक भाव में स्थित है। उसका आश्रय ज्ञान श्रद्धान उसी मे लीनता करने से सम्यक्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सर्व दशायें प्रगट होती हैं।

शुद्धात्म स्वरूप में दोष विकार, विषमता या कर्मादि हैं ही नहीं। जितने भी दोष विभावादि विषमतायें आती हैं, वे सब पर पर्याय से राग पूर्वक सम्बंध मानने से आती हैं। शुद्धात्म स्वरूप कर्मादि पर पर्याय के सम्बंध से सदा निर्लिप्त न्यारा परम पारिणामिक भाव स्वरूप है।

अपने को कर्मों का कर्ता मानना तथा कर्म फल में हेतु बनकर सुखी–दु:खी होना ही अज्ञान से मोहित होना है। जीव का जन्म कर्मों के अनुबंध से होता है। जैसे –जिस परिवार में जन्म लिया है, उस परिवार के लोगों से ऋणानुबंध है अर्थात् किसी का कर्ज चुकाना है और किसी से वसूल करना है। यह लेन–देन का व्यवहार अनेक जन्मो से चला आ रहा है, इसे बन्द किये बिना जन्म–मरण से छुटकारा नहीं मिल सकता। इसके लिये अपने परमात्म स्वरूप पूर्ण शुद्ध सिद्ध दशा का बोध जागे। उस पर दृढ अटल विश्वास हो और अपने पारिणामिक भाव में रहा जाये, किसी से भी कोई मोह, राग, द्वेष न हो, पर पर्याय का लक्ष्य–पक्ष न रहे। अपने में अटल–अचल ध्रुव स्वभाव में लीनता होने से सारे पूर्व बद्ध कर्म क्षय हो जाते हैं।

सामान्यत: शरीर और इन्द्रियों की क्रियाओं को ही कर्म माना जाता है एवं शरीर और इन्द्रियों की क्रियायें बंद होने पर कर्मों से छुटकारा मान लेते हैं परन्तु भाव के अनुसार ही कर्म की संज्ञा होती है। भाव बदलने पर कर्म की सज्ञा भी बदल जाती है। जैसे शरीरादि शुभ क्रिया रूप परिणमन दिखाई देता है। यदि कर्ता का भाव अशुभ है तो वहाँ अशुभ कर्म बंध हो जाता है।

शुभ भाव और शुभ क्रिया से, शुभ कर्म का बंध होता है।

अशुभ भाव और अशुभ क्रिया से पाप कर्म का बंध होता है।

शुद्ध भाव और निष्क्रिय दशा से कर्म का बंध नहीं होता, पूर्व बद्ध कर्म निर्जरित क्षय हो जाते हैं।

मनुष्य जन्म, मनुष्य शरीर जीवन की परम संसिद्धि है। यदि हम स्वरूप साक्षात्कार, सम्यक्दर्शन की उपेक्षा करते हैं तो प्रकृति के नियमों के अनुसार हमें न चाहते हुये भी चारों गतियों में चक्कर लगाना पड़ेंगे, नाना प्रकार के दु:ख भोगना पड़ेंगे।

इन्द्रियों से ऊपर मन है, मन से ऊपर बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है अत: आत्मा का लक्ष्य होना चाहिए। सम्यक्दर्शन (स्वरूप साक्षात्कार) आत्मा की दिव्य महिमा की अनुभूति है। जिसके होने पर सारे संसार के बंधन टूट जाते हैं। कर्म संयोग छूट जाते हैं, पूर्व बद्ध कर्म निर्जरित और क्षय हो जाते हैं तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव ने जो कहा है, उसका श्रद्धान करो। भगवान कहते हैं प्रत्येक जीव आत्मा स्वभाव से शुद्धात्मा ममल स्वभावी है, उसका जो जीव अवलम्बन ले, श्रद्धान करे, उसे उस ध्रुव ममल स्वभाव में से शुद्धता प्रगट होती है। तीन काल और तीन लोक में शुद्ध निश्चय नय से मैं आत्मा शुद्धात्मा परमात्मा ममल स्वभावी ध्रुव तत्व हूँ। ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द घन भगवान आत्मा हूँ, ऐसी दृढ प्रतीति, श्रद्धा अनुभूति ही शुद्ध दृष्टि है। मैं ऐसा हूँ तथा सभी जीव भी भगवान स्वरूप हैं, परमात्म स्वरूप हैं। द्रव्य दृष्टि से सभी जीव ऐसे हैं, ऐसे आत्म स्वरूप का श्रद्धान अनुभव होना तथा पुद्गल द्रव्य भी शुद्ध परमाणु रूप है। यह जो दिखाई दे रहा है, यह सब अशुद्ध पर्याय का परिणमन है, जो असत् क्षण भंगुर नाशवान है, इसका नाम सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान है और इस द्रव्य दृष्टि के आधार से समभाव पूर्वक अपने स्वरूप में स्थिर रहना सम्यक्चारित्र है।

स्व या पर जब किसी द्रव्य, किसी गुण व किसी पर्याय मे हेर फेर करने की बुद्धि न रही, तब वह सच्ची श्रद्धा और ज्ञान हुआ, तब ज्ञान, ज्ञान में ही जम गया, अर्थात् मात्र वीतरागी ज्ञाता भाव ही रह गया, ऐसे साधक की अल्प काल में मुक्ति होती है।

प्रभु ! तू स्वयं चिन्मय, परमात्म स्वरूप है। जिन स्वरूप आत्मा शुद्धात्मा है। वीतराग, अकषाय, ममल स्वभावी आत्मा है। परम पारिणामिक भाव वाला है, ऐसा श्रद्धान कर और अपने परम ज्ञान स्वभाव में रह तो यह सारे कर्म विला जाते हैं। तू स्वयं अनन्त शक्तियों से व्याप्त भगवान आत्मा, अचिन्त्य शक्तिमय और सामर्थ्यवान है, इसका भरोसा दृढ अटल श्रद्धान, विश्वास करे तो भव भ्रमण छूट जाये।

भगवान सर्वज्ञ देव जिनेन्द्र परमात्मा ऐसा कहते हैं कि आत्मा में शरीर, संसार, रागादि भाव, कर्म बंध है ही नहीं। आत्मा तो ममल स्वभावी, स्वयं जिनवर, तीर्थंकर सर्वज्ञ परमात्मा है। सारे कर्म मलादि से रहित शुद्ध चैतन्य है। सर्वप्रथम ऐसा निर्णय कर, आत्मा का अनुभव कर, ऐसा श्रद्धान, ज्ञान,

अटल विश्वास कर और अपने स्वरूप में ज्ञान भाव में स्थित रह तो बता फिर कर्मादि कहाँ हैं ?

कर्मादि की सत्ता मानना, उनसे भयभीत होना, यही अज्ञान बंधन का कारण है। एक समय की निर्मल पर्याय को जो सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय है, रत्नत्रय कहा है। उसके फल स्वरूप केवलज्ञान पर्याय प्रगंट होती है, जो महारत्न है। ऐसे अनन्त गुण और उनकी अनन्त पर्यायों का धारक आत्म द्रव्य तो महारत्नों से भरा हुआ सागर है, जिसकी महिमा वचनातीत है। ऐसे निज स्वभाव का विश्वास और दृष्टि करो।

अकर्तृत्व जिसका स्वभाव है, वह यदि विकार का कर्ता हो तो साधकता ही नहीं हो सकती है। जो ममल स्वभाव शुद्धात्मा है, उसमें कर्म रागादि मल मानना ही मिथ्या श्रद्धान, मिथ्याज्ञान है।

आत्मा शाश्वत है, शुद्ध है, परम पारिणामिक भाव वाला ममल स्वभावी शुद्धात्मा है। उसकी ओर देखने से सम्यक्दर्शन, ज्ञान होता है। जो आत्मसम्मुख होते हैं, वे विकार से विमुख हुये बिना नहीं रहते। मैं निर्विकार हूँ, शुद्ध चैतन्य, ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूँ। यदि ऐसा कहें और विकार से विमुख न हों, तो वह मात्र धारणा है। राग से, कर्म से तथा शरीरादि पर से चैतन्य की एकता नहीं है, ऐसा भेदविज्ञान पूर्वक श्रद्धान कर। जिसने स्वभाव की दृष्टि की, उसके विभाव कर्मादि का अभाव होना ही चाहिए। यदि विभाव का अभाव न हुआ तो अभी स्वभाव दृष्टि ही नहीं हुई।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द से परिपूर्ण स्वभाव है। इस स्वभाव के साधन से ही जीव की मुक्ति होती है।

प्रश्न –स्वभाव तो परिपूर्ण शुद्ध ममल स्वभावी है परन्तु पर्याय में तो अशुद्धि है और उसमें निमित्त पूर्व बद्ध कर्मोदय हैं। पूर्वकर्म बन्धोदय के क्षय होने पर पर्याय में शुद्धि होने पर, पूर्ण परमानन्द दशा बढ़ेगी इसका उपाय बताइये ?

समाधान – जब यह निर्णय कर लिया कि मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा ममल स्वभावी हूँ तथा एक–एक समय की पर्याय एवं जगत (सब जीव सब द्रव्यों) का त्रिकालवर्ती परिणमन, क्रमबद्ध निश्चित अटल है, इससे मेरा कोई सम्बंध नहीं है। ऐसा अनुभूति युत, श्रद्धान ज्ञान में आ गया तो अब अपने ममल स्वभाव में रहो। इसी से पर्याय में शुद्धि आयेगी,इसी से पूर्व बद्ध

कर्म क्षय होंगे।

प्रश्न– इसमें ही गड़बड हो जाती है, जब वेदक सम्यक्त्व के कारण मोह के भाव–अप्रत्याख्यान कषाय के अशुभ भाव, राग का उदय चलता है तो भयभीतपना, कंपन होने लगता है, इसके लिये क्या करें ?

समाधान– दृढता, निर्भयता से काम लो, अपने ज्ञान श्रद्धान पर अभय, अटल, अडोल, अकंप रहो। यह तो शूरवीर क्षत्रियों का मार्ग है । यहाँ बनियापना, ढील ढाल नहीं चलती, "गाढो धरे ते पावे ढीले न पावे" दृढता हिम्मत से अपना पुरूषार्थ करो। जब भेदज्ञान तत्व निर्णय हो गया, वस्तु स्वरूप जान लिया, ज्ञान श्रद्धान की शुद्धि हो गई तो अब क्या है। बेधड़क, अलमस्त रहो, जब जो होना है, वह निश्चित, अटल है, नहीं होना तो कोई कर नहीं सकता। जब एक–एक पर्याय, एक–एक परमाणु का, एम–एक समय का परिणमन क्रमबद्ध–निश्चित अटल है। जैसा केवलज्ञानी के ज्ञान में झलका है, वैसा ही त्रिकालवर्ती परिणमन चल रहा है। जो होना था हो गया, जो होना है हो रहा है, जो होना होगा वह होगा, जब सब निश्चित है, सर्वज्ञ की सर्वज्ञता स्वीकार है। तुम स्वयं केवलज्ञान स्वभावी ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हो फिर कोई विकल्प भ्रम भय की बात ही नहीं है। इतनी अटलता, अभयता, अपने में रखना पडेगी, अपने ज्ञान बल को जाग्रत रखो, स्वयं स्वस्थ होश में सावधान रहो।

प्रश्न – क्या इसके लिये और कोई उपाय है, यह कुछ न होवे ?

समाधान – हाँ,क्षायिक सम्यक्दर्शन और वीतरागी साधु होने पर फिर यह कुछ नहीं होंगे।

प्रश्न – ऐसी तो पात्रता, परिस्थिति, इतना आत्मबल ही नहीं है ?

समाधान – तो बस समता, शांति से ज्ञायक भाव में ज्ञान स्वभाव में डटे रहो। जब यह सब निर्णय हो गया, मुक्ति प्राप्त होना तय हो गया, तो इसी आनन्द उत्साह में धर्म की जय–जयकार मचाते, समता शांति से ज्ञायक भाव में डटे रहो। जब मुक्ति होना है, वह भी निश्चित है तो समता शांति से शुद्ध दृष्टि समभाव में ज्ञायक रहो। अपने ध्रुव तत्व शुद्धात्मा का स्मरण ध्यान रखो और ध्रुव धाम में डटे रहो। अब न कर्मों की परवाह करना है, न जगत की परवाह करना है। न किसी से कुछ लेना देना है। अपने में निस्पृह, आकिंचन वीतरागी बनो। अभय स्वस्थ मस्त रहो। सहजानन्द में परमशान्त समता में ज्ञायक रहते चले चलो। अब तो सब काम, कर्मों का क्षय, पर्याय की शुद्धि,

पात्रता की वृद्धि , साधु पद अपने आप सहजता से होता हुआ चला चलेगा। तुम स्वस्थ सावधान अपने में अभय मस्त, ज्ञानी ज्ञायक रहो। सम्यक्चारित्र पकड में आ गया, निश्चिंत रहो।

इसी बात को और स्पष्ट करते हुये सद्गुरू उपसंहार रूप में अन्तिम गाथा कहते हैं–

गाथा – ३२

जिन दिस्टि उत्त सुद्धं, जिनय ति कम्मान तिविह जोएन।
न्यानं अन्मोय विन्यानं, ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च॥

शब्दार्थ – (जिन उत्त) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है (दिस्टि सुद्धं) जिनकी दृष्टि शुद्ध हो गई (जिनय ति कम्मान) तीनों प्रकार के कर्मों को जीत लेते हैं (तिविह जोएन) त्रिविध योग से, तीनों प्रकार की (मन–वचन–काय की) एकाग्रता (न्यानं अन्मोय) ज्ञान स्वभाव में लीन, स्वभाव का आलम्बन, ज्ञानोपयोग की निरन्तर सक्रियता (विन्यानं) विज्ञान घन, विज्ञानमयी, भेद विज्ञान की साधना (ममल सरूवं च) ममल स्वरूप में रहते, लीन होकर, आत्म ध्यान में रत (मुक्ति गमनं च) मोक्ष मार्ग पर चलते, मुक्ति प्राप्त करते हैं।

विशेषार्थ – जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि जो सम्यक्दृष्टि ज्ञानी जिनकी दृष्टि शुद्ध हो गई है, वह त्रिविध योग सहित, समस्त कर्मों को जीत लेते हैं अर्थात् उनके सारे कर्म क्षय हो जाते हैं।

ज्ञानी हमेशा ज्ञान विज्ञान मयी सत्स्वरूप का अवलम्बन रखते हैं और आत्म ध्यान में रत रहते हैं तथा साधु पद से अपने ममल स्वभाव में लीन होकर ब्रह्मानन्द मयी मुक्ति पद प्राप्त करते हैं।

ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
इहि परमामृत जन्म जरा, मृतु रोग निवारण॥
कोटि जन्म तप तपें, ज्ञान बिन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति तें सहज टरें ते॥

सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों ही आत्मा के गुण हैं। आत्मा का स्वभाव यथार्थ प्रतीति का धारी है। निज को निज, पर को पर, यथार्थ श्रद्धान करने वाला है और सर्व लोकालोक के द्रव्य, गुण, पर्यायों को एक साथ जानने वाला है। चारित्र गुण से परम वीतराग है। रत्नत्रय स्वरूप यह आत्मा – अभेद दृष्टि

सें एक रूप है। शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल है, परम निरंजन – निर्विकार, परम ज्ञानी, परम शान्त, परमानन्द मयी है। इस तरह बार–बार अपने आत्मा को ध्यावे –तब परिणामों में थिरता होने पर स्वयं आत्मानुभव प्रगट होता है, यही मोक्षमार्ग है।

आत्मानुभव के साथ उसी समय अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। इसी अमृत रस का पान करते हुए आत्मानुभव में लीन साधु क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर अरिहन्त परमात्मा होकर अनन्त सुख को भोगने वाला, अनन्त चतुष्टय धारी हो जाता है, चारों घातिया कर्म क्षय हो जाते हैं।

जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है – यह आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य; अनन्त सुख का धारी परमात्म स्वरूप है। यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होकर भी आत्मज्ञ और आत्मदर्शी है। यह ज्ञेय की अपेक्षा सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहलाता है। शुद्ध सम्यग्दर्शन का धारी होकर निरन्तर आत्म प्रतीति मे वर्तमान है। सर्व कषाय भावों के अभाव से परम वीतराग, यथाख्यात चारित्र से विभूषित है। स्वयं के आनन्द को स्वय को देता है। अनन्त दान करने वाला है। निरन्तर स्वात्मानन्द का भोग करना ही अनन्त लाभ है। स्वात्मानन्द का ही निरन्तर भोग है। अपने आत्मा का ही बार–बार उपभोग है। गुणों के भीतर परिणमन करते हुये कभी भी खेद नही पाता, यही अनन्त वीर्य है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मों से रहित होकर अनन्त सुख का समुद्र है।

शुद्ध दृष्टि ज्ञानी, अभेद नय से एक अखंड आत्मा को ध्याता है। स्वानुभव में लीन रहता है, यही आत्म समाधि–निश्चय रत्नत्रय की एकता है, यही मोक्ष मार्ग है।

शुद्ध दृष्टि, ज्ञान–विज्ञान का आलम्बन लेकर ऐसा निर्णय करता है कि मेरा कोई सम्बन्ध न अन्य आत्माओं से है, न पुद्गल के कोई परमाणु या स्कंध से है, न धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य से है, न मेरे मे ज्ञानावरणादि आठ कर्म हैं, न शरीरादि नो कर्म है, न रागादि भाव कर्म है, न मेरे में इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा है, न मैं इन्द्रिय सुख को सुख जानता हूँ। मैं अतीन्द्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय सुख को ही सच्चा सुख मानता हूँ सो वह मेरा सुख मेरे पास है। जैसे कोई प्रवीण पुरूष अपने भीतर होने वाले रोगों को पहिचान कर, उनसे अहित जानकर उन रोगों से पूर्णपने उदासीन हो जाता है। वैसे ही

सम्यक्दृष्टि ज्ञानी जीव कर्मों के संयोग से होने वाले रागादि भाव व शरीरादि संयोगों को रोग व आत्मा के लिये हानिकारक जानकर उनसे पूर्ण वैरागी हो जाता है; तथा इन रोगों को मिटाने के लिये सत्ता में बैठे कर्मों को नाश करने के लिये व नवीन रोग के कारण से बचने के लिये शुद्धात्मानुभूति ही एक परम औषधि है, जिसका वह सेवन करता है। निर्ग्रंथ पद में रहकर दिन रात स्वानुभव का अभ्यास करता है। यदि तद्भव मोक्षगामी होता है तो क्षपक श्रेणी चढकर शीघ्र ही चार घातिया कर्मों का क्षय करके केवलज्ञानी हो जाता है।

आत्मा का आत्मा के भीतर, आत्मा के द्वारा ही पर के आलम्बन रहित रमण करना, निश्चय सम्यग्चारित्र है। निमित्त साधन अन्तरंग चारित्र का मोहकर्म का उपशम है। बाहरी साधन श्रावक का एक देश और साधु का सकल चारित्र है। इस तरह जो कोई निश्चिंत होकर आत्मा का सतत् अनुभव करता है, वही परमानन्द का पान करता हुआ कर्मों का संवर व उनकी निर्जरा करता हुआ मुक्ति को प्राप्त करता है।

शुद्ध दृष्टि, ज्ञान-विज्ञान के द्वारा ऐसा निर्णय कर समभाव में रहता है कि यह आत्मा सत्पदार्थ है। कभी न जन्मा है न कभी नाश होगा। स्वत: सिद्ध है,किसी ने इसको पैदा नहीं किया, न यह किसी को पैदा करता है। यह लोक अनादि काल से है। छह द्रव्यों के समूह को लोक कहते हैं। वे सब द्रव्य अनादि से अनन्त काल तक सदा ही सत्स्वरूप रहने वाले हैं। अनन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य हैं, असंख्यात कालाणु हैं, एक धर्मास्तिकाय है, एक अधर्मास्तिकाय है, एक आकाश अस्तिकाय है। आत्मा स्वरूप से सब समान परमात्म स्वरूप हैं तथापि हर एक आत्मा की सत्ता अपने में परिपूर्ण स्वतंत्र है। दूसरी आत्मा की सत्ता से अत्यन्त भिन्न है। आत्मा में न आठ कर्मों का बंधन है, न इसमें रागादि विकारी भाव हैं, न कोई स्थूल औदारिकादि शरीर हैं, आत्मा शुद्ध स्फटिक मणि के समान परम निर्मल है। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणों का सागर है। यह आत्मा न किसी का उपादान कारण है न किसी का निमित्त कारण है।

संसार दशा में आत्मा, शरीर नाम कर्म के उदय से चंचल होकर मन, वचन, काय के द्वारा - योगों में परिणमन करता है तथा कषाय के उदय से शुभ-अशुभ उपयोग होता है। यह योग या उपयोग ही लौकिक कारणों में निमित्त है। जैसे - कुम्हार घडा पकाता है तो मिट्टी, घडे का उपादान कारण

है। कुम्हार का मन, वचन, काय योग और अशुद्ध उपयोग निमित्त कारण है।

शुद्धात्मा में न योग का कार्य है, न कोई शुभ-अशुभ उपयोग है। आत्मा स्वभाव से अकर्ता - अभोक्ता है। न पर भावों का कर्ता है, न पर भावो का भोक्ता है, आत्मा स्वभाव से अपने शुद्ध परिणति का कर्ता है व सहज शुद्ध सुख का भोक्ता है। यह आत्मा परम पदार्थ परमात्मा है, मैं ऐसा ही हूँ ऐसे दृढ निश्चय श्रद्धान सहित अपने ममल स्वभाव में रहना ही मुक्ति है।

आत्मा के श्रद्धान ज्ञान में बारम्बार रमण करना, बार-बार भावना भाना यही चारित्र है। जहाँ आत्मा आप से आप में स्थिर हो जाता है, वहाँ रत्नत्रय की एकता है यही मोक्षमार्ग है।

आत्मा का मनन निश्चिन्त होने पर ही होता है, जब किसी प्रकार की कोई चिन्ता न रहेगी, तब ही मन, वचन, काय की एकाग्रता होती है। संकल्प - विकल्प से रहित होकर ही आत्मा के शुद्ध स्वभाव का मनन, ध्यान होता है। अतएव निर्ग्रंथ पद धारण करके निराकुल हो जाना आवश्यक है। निर्वाण का उपाय एक शुद्धात्मानुभव ही है। जहाँ मनन के विकल्प या विचार सब बन्द हो जाते हैं। काय स्थिर होती है, वचन नहीं रहता, वहाँ ही स्वानुभव का प्रकाश होता है, इसी को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। यही आत्म स्वभाव है यही यथार्थ में मोक्ष का मार्ग है। यही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की एकता है, यही राग द्वेष रहित वीतराग भाव है, यही परम समता है, यही एक अद्वैत भाव है। यही संवर, निर्जरा तत्व है; अतएव ज्ञानी का अपने ज्ञान विज्ञान द्वारा ममल स्वभाव में स्थित रहना बाह्य के सब संयोग शान्त शून्य हो जाना मुक्ति है।

प्रत्येक पदार्थ सर्वत्र, सर्वकाल अपने ही स्व चतुष्टय - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में प्रतिष्ठित रहता है, पर चतुष्टय में नहीं। इस एक महा सिद्धान्त का निर्णय हो जाये तो तीन लोक, तीन कालवर्ती समस्त पदार्थों की यथार्थ प्रतीति हो जाये और स्वतंत्र ज्ञानानन्द स्वभाव सम्मुख होने की रूचि व स्थिरता हो जाये।

पदार्थ-द्रव्य रूप से नित्य है और पर्याय रूप से अनित्य है। ऐसी नित्यानित्यता तो पदार्थ का स्वरूप है, ज्ञान ऐसा जानता है। संयोग के कारण अनित्यता है ऐसा नहीं है, पर अपने कारण से ही अनित्यता है अर्थात्

पलटते रहना तो पर्याय का स्वभाव है, सो पर के कारण से नहीं है। इस प्रकार ज्ञेय का स्वरूप जानना ही सम्यक्ज्ञान का कारण है। आत्मा की शान्त शून्य स्थिति को अनुभव कहते हैं। आत्मा में शान्ति और आनन्द शक्ति रूप से अनादि अनन्त विद्यमान है। ऐसे आत्मा का पुण्य पाप रागादि भाव कर्मादि से रहित अनुभव हो उसे धर्म कहते हैं। अकषाय परिणाम के प्रकाश को, अनुभव प्रकाश कहते हैं।

जड की क्रिया जड के कारण से होती है। धर्मी को अपने ही कारण से शुभ राग के काल में शुभ राग आता है परन्तु वह धर्म नही है। शुभ राग के अवलम्बन से धर्म नहीं होता। निजावलोकन मात्र, चिदानन्द ध्रुव शुद्धात्मा का जितना अनुभव हो उतना ही धर्म है। मोक्षमार्ग तो वीतराग भाव है तथा वीतराग विज्ञान हित का कारण है। निज स्वभाव रूपी साधन द्वारा ही परमात्मा हुआ जाता है। गृहस्थाश्रम में परमात्म दशा प्राप्त नहीं होती। ज्ञानानन्द के साधन द्वारा दिव्य शक्ति प्रगट करो। जिनकी दशा जीवन मुक्त हुई है, वे अरिहन्त देव हैं। इनके चार घातिया कर्मो का अभाव हो चुका है और अन्तर समाहित निज अनन्त शक्ति प्रगट हुई है। वे तीन काल, तीन लोक को एक-एक समय मे प्रत्यक्ष जानते हैं। निज शुद्ध स्वरूप ध्रुव तत्व शुद्धात्मा ही साधने योग्य है, इसी की साधना से सिद्ध पद प्रगट होता है।

ज्ञान विज्ञान के द्वारा मैं कौन हूँ ? मेरा क्या है ? जड और चेतन क्या है ? कर्म प्रकृति और परमात्म स्वरूप क्या है ? यह सब जानने की शक्ति आ जाती है एवं परम शांति की प्राप्ति होती है। परिस्थिति को बदलना अपने वश की बात नहीं है। बाहरी परिस्थिति शरीरादि संयोग का परिणमन कर्म उदयानुसार ही होता है। ऐसे भेदविज्ञान द्वारा समता भाव मे आ जाना ही योग है। मन, वचन, काय से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर अपने स्वरूप की साधना में रत रहना ही त्रिविध योग है। अपना स्वरूप स्वत: सिद्ध है, उसके लिये कुछ करना ही नहीं है। सम्यक्दृष्टि ज्ञानी साधक सच्चे देव गुरू धर्म शास्त्र का श्रद्धानी, निज शुद्धात्मानुभूति से युक्त शुद्ध दृष्टि, समभाव द्वारा ममल स्वभाव की साधना से सिद्धि मुक्ति सिद्ध पद पाता है, यही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र की परिपूर्णता है।

इस प्रकार सम्यक्चारित्र की शुद्धि कर वृद्धि करते हुये, परमानन्द मयी परमात्म पद को पाना ही मानव जीवन की श्रेष्ठता है, इसी में आत्मा का कल्याण है। सम्यक्चारित्र का यथार्थ स्वरूप श्रीगुरू तारण स्वामी ने अपने जीवन के अनुभव के आधार तथा जिनेन्द्र परमात्मा और जिनवाणी के प्रमाण से संक्षेप में प्रतिपादित किया, विचार मत के तीन ग्रंथों - श्री मालारोहण में सम्यक्दर्शन, श्री पंडित पूजा में सम्यक्ज्ञान और श्री कमल बत्तीसी में सम्यक्चारित्र का स्वरूप बताया है। जो भव्य जीव इनका श्रद्धा भक्ति पूर्वक आत्म कल्याण की भावना से स्वाध्याय मनन कर रत्नत्रय मयी ज्ञान गुण माला को धारण करेंगे, वह संसार के जन्म-मरण के चक्र से छूटकर सिद्ध परमात्मा होंगे।

* शत् शत् नमन *

सद्गुरू की परम कृपा आशीर्वाद से, स्वयं की भली होनहार से, यह छह माह की सहज मौन साधना करने का शुभ योग मिला, जिसमें ज्ञानोपयोग में निमित्त यह तीन ग्रंथों की टीका की, जो अपने समय का सदुपयोग और आत्म बल बढाने में सहकारी हुये, इससे जिस जीव का भला हो, यह उसकी पात्रता की बात है परन्तु अपना भला हो गया, वस्तु स्वरूप समझ में आ गया। इसके लिये परम गुरू परमात्मा जिनेन्द्र देव भगवान महावीर स्वामी, सद्गुरू श्री जिन तारण-तरण मंडलाचार्य जी महाराज को श्रद्धा भक्ति पूर्वक शत् शत् नमन है।

अल्पज्ञता, प्रमादवश जो भूल-चूक हुई हो, सद्गुरू ज्ञानी जन क्षमा करें।

बरेली ज्ञानानन्द

दिनांक : २६.५.९१

卐 जय तारण तरण 卐

श्री कमलबत्तीसी जी
सार सिद्धांत

(१) सम्यक्चारित्र छाया वृक्ष तुल्य है, जो संसार रूपी मार्ग में भ्रमण करने से उत्पन्न हुई थकान को दूर करता है।

(२) सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान के सम्पूर्ण होने पर भी चारित्र की पूर्णता न होने पर परम मुक्ति नहीं हो सकती।

(३) जैसे सम्यक्दर्शन के बिना ज्ञान, अज्ञान होता है। वैसे ही सम्यक्ज्ञान के बिना, चारित्र भी चारित्राभास होता है।

(४) शंकादि मलों को दूर करने में, कर्मों का क्षय करने वाली आत्म शक्ति में उत्कर्षता लाने में और इन्द्रादि पद प्राप्त कराकर, मोक्ष रूप फल प्राप्त करने में, सम्यक्दर्शन को जिसका मुख उत्सुकता से देखना पडता है, उस सम्यक्चारित्र का माहात्म्य आश्चर्यकारी है।

(५) परिणामों की विशुद्धि के लिये पाप-परिग्रह आदि का त्याग करना चाहिये।

(६) जब तक किसी बात का संकल्प पूर्वक त्याग नहीं किया जाता, तब तक उसे न करने से ही उसके फल से छुटकारा नहीं होता। संकल्प पूर्वक त्याग न करना ही इस बात का सूचक है कि उस ओर की प्रवृत्ति में राग है।

(७) सर्व अर्थो की सिद्धि के लिये शान्त मौन रहना ही हितकर है। असत्य बोलने की तरह, असत्य सुनने से भी यत्नपूर्वक बचना चाहिये।

(८) ब्रह्म अर्थात् अपनी शुद्ध-बुद्ध आत्मा में चर्या अर्थात् बाधा रहित परिणति को ब्रह्मचर्य कहते हैं, इसे जो निरतिचार पालते हैं, वह परमानन्द को प्राप्त करते हैं।

(९) अध्यात्म तत्व का उपदेश सुने बिना न अपनी आत्मा का बोध होता है, न श्रद्धा। श्रद्धा के पश्चात् ही आत्मा के प्रति रूचि बढती है, तभी उसमें रमणता होती है।

(१०) इन्द्रियों में – रसना इन्द्रिय। कर्मों में – मोहनीय कर्म। व्रतों में–ब्रह्मचर्य व्रत और गुप्तियों में – मनो गुप्ति, यह चार बड़ी साधना और अभ्यास से वश में होते हैं।

(११) सात तत्वों के सम्यक् परिज्ञान पूर्वक आत्म तत्व की उपलब्धि रूप सम्यक्दृष्टि होना चाहिये। बिना आत्म ज्ञान के घर छोडकर मुनि बनना उचित नहीं है।

(१२) असली परिग्रह तो शरीर ही है, उससे भी जो ममत्व नहीं करता, वही परम निर्ग्रन्थ है।

(१३) कर्म जन्य रागादि भावों से आत्मा की भिन्नता को जानकर, आत्मा के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान और ज्ञान तथा राग और द्वेष की निवृत्ति रूप साम्य भाव को धारण करना, यही सम्यक्चारित्र है।

(१४) मोह और क्षोभ से रहित परिणाम ही साम्य भाव है, निश्चय से यही चारित्र धर्म है।

(१५) जिसका पुण्य और पाप कर्म बिना फल दिये स्वयं झड जाता है, वह योगी है, उसका निर्वाण होता है, वह पुन: आस्रव युक्त नहीं होता।

(१६) प्राणी मात्र में मैत्री, गुणी जनों में प्रमोद, दु:खी जीवों पर दया भाव और अविनयी जीवों पर माध्यस्थ भाव रखने से सभी व्रत अत्यन्त दृढ होते हैं।

(१७) जिस योगी का चित्त ध्यान में उसी तरह विलीन हो जाता है, जैसे नमक पानी में लय हो जाता है, उसके शुभ और अशुभ कर्मों को जला डालने वाली आत्म शक्ति रूप अग्नि प्रगट होती है।

(१८) राग-द्वेष और मोह के त्याग, आगम के विनय पूर्वक अभ्यास तथा धर्म और शुक्ल ध्यान से मनोगुप्ति होती है।

(१९) आत्म ध्यान ही मुक्ति का एक मात्र परम साधन है।

(२०) व्रतों का धारण, समितियों का पालन, कषायों का निग्रह, मन वचन काय की प्रवृत्ति का त्याग और पांचों इन्द्रिय पर विजय, इसे संयम कहते हैं।

(२१) ज्ञेय और ज्ञाता में अथवा ज्ञेय युक्त ज्ञाता में, सर्वज्ञ भगवान के द्वारा जैसा कहा गया है और जैसा उनका यथार्थ स्वरूप है तदनुसार प्रतीति होना सम्यक्दर्शन है और तदनुसार अनुभूति होना सम्यक्ज्ञान है।

(२२) जो सांसारिक सुख से विरक्त होता है वही चारित्र में प्रयत्नशील होता है।

(२३) मोक्षमार्ग में नित्य उद्यमशील साधुओं के लिये-शारीरिक, वाचनिक, मानसिक ताप की शांति के लिये, तप रूपी समुद्र में अवगाहन

करना चाहिये।

(२४) तप का मूल–सम्यक्दर्शन है, तना–दश धर्म हैं, शाखा–बारह भावना हैं, पत्र–पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति हैं, पुष्प–केवलज्ञान है, हवायें सुगंध–बाईस परीषह जय हैं। फल–घाति, अघाति कर्म का क्षय सिद्ध पद है।

(२५) जिसमें द्रव्य रूप से नित्य और स्पष्ट ज्ञान के द्वारा जानने योग्य, चराचर जगत के अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायाकार प्रतिबिम्बित होते हैं, उस परम ब्रह्म स्वरूपमय होने के लिये जो तत्पर होते हैं, उन्हें सन्त कहते हैं।

(२६) बाह्य विषयों का त्याग–द्रव्य त्याग है और अन्तरवर्ती, विषय सम्बन्धी विकल्पों का त्याग–भाव त्याग है। दोनों प्रकार से त्याग करने वाले विश्वपूज्य होते हैं।

(२७) जो योगी शरीरादि से हटकर आत्मा को आत्मा में ही स्थिर करता है और व्यवहार प्रवृत्ति–निवृत्ति से दूर रहता है, उसको स्वात्मा के ध्यान से वचनातीत आनन्द होता है।

(२८) मेरा कुछ भी नही है, इस प्रकार के भाव को आकिंचन कहते है। इस आकिंचन भाव को भाने से ज्ञायक स्वभाव आत्मा का अनुभव होता है।

(२९) पहले किये हुये शुभाशुभ कर्म, अपना समय आने पर जब उदय को प्राप्त होते हैं, तब किसी चेतन इन्द्रादि के द्वारा और अचेतन मंत्र आदि के द्वारा या दोनों के द्वारा रोके नहीं जा सकते।

(३०) आत्मा के द्वारा आत्मा में आत्मा का पर के आकार से रहित रूप से संवेदन होता है, उसे ही स्वसंवेदन कहते हैं। जो स्व संवेदन से सिद्ध है, उसे ही अनुभव सिद्ध कहते हैं।

(३१) कर्म से और कर्म के कार्य रागादि भावों से भिन्न चैतन्य स्वरूप आत्मा को नित्य भाना चाहिये। उससे नित्य आनन्द मय मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।

(३२) मन के एकाग्र होने से स्व संवेदन के द्वारा आत्मा की अनुभूति होती है, उसी अनुभूति से जीवन मुक्त दशा और अन्त में परम मुक्ति प्राप्त होती है।

सम्यक्चारित्र सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

प्रश्न – सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ क्यों है ?

समाधान – जीव का अनादि अज्ञान मिथ्यात्व कारण है, काल लब्धि होनहार कार्य है। रत्नत्रय की प्राप्ति बडे ही सौभाग्य से होती है अत: उसे पाकर सतत् सावधान रहने की जरूरत है। एक क्षण का भी प्रमाद बाधक है, पूर्व संस्कार भ्रम में डालते हैं।

प्रश्न – निश्चय–व्यवहार रत्नत्रय की प्ररूपणा क्यों की गई है ?

समाधान – निश्चय से वस्तु का जो स्वभाव है वही धर्म है। जैसे आत्मा का चैतन्य स्वभाव ही उसका धर्म है किन्तु संसार अवस्था में वह चैतन्य स्वभाव तिरोहित होकर गति इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणाओं में, चौदह गुणस्थानों के द्वारा विभाजित होकर नाना रूप हो गया है। यद्यपि द्रव्य दृष्टि से वह एक ही है, इसी कारण भगवान जिनेन्द्र देव ने जो धर्मोपदेश दिया है, वह व्यवहार और निश्चय से व्यस्थापित है।

प्रश्न – क्या मुक्ति भी दो प्रकार की होती है ?

समाधान – नहीं, परमानन्द दशा को मुक्ति कहते हैं और वह एक सी, एक ही होती है, कहने में भेद आता है। जैसे जो साधक अपनी इन्द्रियों और मन के प्रसार को संयमित कर, आत्मा के द्वारा आत्मा में – आत्मा का अनुभव करके कृत् – कृत्य अवस्था को प्राप्त करता है, उसे प्रथम जीवन्मुक्ति, पश्चात् परम मुक्ति होती है, इसे भाव मोक्ष, द्रव्य मोक्ष भी कहते हैं।

प्रश्न – व्यवहार चारित्र से क्या लाभ है ?

समाधान – संयम तप आदि करने से ज्ञानावरण आदि कर्मो की, शरीराशक्ति की, राग द्वेष की और विषयों की चाह की हानि होती है, उनमें कमी आती है तथा एकाग्र चित्त होकर आत्मा का स्मरण ध्यान होता है। दु:ख को सहन करने की शक्ति आती है, सुख में आसक्ति नहीं होती, धर्म की प्रभावना होती है, ब्रह्मचर्य में निर्मलता आती है।

प्रश्न – मनुष्य भव की सार्थकता क्या है ?

समाधान – प्रथम – भेदज्ञान पूर्वक निज शुद्धात्मानुभूति, सम्यक्दर्शन करना तथा आर्यता, कुलीनता आदि गुणों से युक्त इस उत्तम मनुष्य पर्याय का सार – मुनि पद धारण करना, जिनवाणी की शिक्षा धारण करना, विनय सम्पन्न होना, समाधिस्थ होना है।

प्रश्न – स्वाध्याय करने से क्या लाभ है ?

समाधान – स्वाध्याय से तर्कणाशील बुद्धि का उत्कर्षण होता है। परमागम की स्थिति का पोषण होता हे। मन इन्द्रियों और चारों संज्ञाओं की अभिलाषा का निरोध होता है। संशय का छेदन होता है। क्रोधादि कषायों का भेदन होता है। दिनों दिन तप में वृद्धि होती है। संवेग भाव बढता है। परिणाम प्रशस्त होते हैं। समस्त अतिचार दूर होते हैं। अन्यथा वादियों का भय नहीं रहता तथा जिन शासन की प्रभावना करने मे मुमुक्षु समर्थ होता है।

प्रश्न – आत्म ध्यान की विशेषता क्या है ?

समाधान – जो अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न अनुभव करता है, तीनों गुप्तियों का पालन करता है, बाह्य अर्थ की तो बात ही क्या, अपने शरीर से भी निस्पृह है वह सम्यक्ध्यान में लीन योगी उत्कृष्ट व्युत्सर्ग का धारक और पालक है।

प्रश्न – विराग भाव किसे कहते हैं ?

समाधान – सम्यक्दर्शन, आत्मा की ऐसी परिणति है कि सम्यक्दृष्टि की सामान्य मनुष्यों की तरह क्रिया मात्र में अभिलाषा नहीं होती, जैसे प्रत्येक प्राणी को अपने अनुभूत रोग में उपेक्षा भाव होता है, वह उसे पसन्द नहीं करता, उसी तरह सम्यक्दृष्टि का सब प्रकार के भोगों में उपेक्षा भाव होता है। सम्यक्दृष्टि पूर्व सचित कर्मो के उदय से प्राप्त हुये भोगों को भोगता है तो भी तत्संबंधी राग भाव का अभाव होने से वह उसका भोक्ता नही है। यह स्वामित्व (कर्तृत्व) का अभाव भेदज्ञान होने पर ही होता है तथा इस ज्ञान के साथ ही विषयों की ओर से अरूचि हो जाती है, उसे विराग भाव कहते हैं।

प्रश्न – बंध और मोक्ष का आधार क्या है ?

समाधान – राग और द्वेष से की गई प्रवृत्ति और निवृत्ति से जीव के बंध होता है और तत्व ज्ञान पूर्वक की गई उसी प्रवृत्ति और निवृत्ति से मोक्ष होता है।

प्रश्न – राग द्वेष आदि आत्मा में ही होते हैं, वह चेतन–अचेतन, जड़ में होते नहीं हैं फिर इन्हें – पर अचेतन कैसे माना जाये ?

समाधान – ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक गुण है और राग द्वेष आदि वैभाविक अवस्था है, अत: न ज्ञान राग है, न राग ज्ञान है, ज्ञान तो स्व–पर प्रकाशक है किन्तु राग का वेदन तो होता है परन्तु उसमें पर स्वरूप का वेदन नहीं होता वह अचेतन है, पर है और ज्ञान चिद्रूप है।

प्रश्न – जीव के जो राग–द्वेष रूप भाव होते हैं, क्या वे स्वयं होते हैं या उनका निमित्त कारण है ?

आत्मा की निर्विकारी शुद्ध दशा वह ही धर्म है। उसका कर्ता आत्मा स्वय ही है। वह धर्म - वीतराग देव, गुरू, शास्त्र आदि कहीं बाहर से नहीं आता, परन्तु निज शुद्ध ज्ञायक आत्मा के ही आश्रय से प्रगट होता है। आत्मा ज्ञान और आनन्द आदि निर्मल गुणों की शाश्वत खान (भंडार) है। सत् समागम से श्रवण, मनन के द्वारा उसकी यथार्थ पहिचान करने पर आत्मा में से जो अतीन्द्रिय आनन्द युक्त निर्मल अंश प्रगट होता है वह ही धर्म है। अनादि - अनन्त एक रूप चैतन्य मूर्ति भगवान आत्मा वह अंशी है, अपने शुद्ध अखड परम पारिणामिक भाव स्वरूप निज आत्म द्रव्य का ही निरन्तर अवलम्बन वर्तता है, यही उसका इष्ट - आराध्य है। इसी (शुद्धात्म स्वरूप) के ही आधार से धर्म कहो - या शान्ति कहो - या मुक्ति कहो, सब प्रगट होता है। किसी पर परमात्मा या परावलम्बन से धर्म नहीं होता, पर के आश्रय से पर को इष्ट आराध्य मानने से कभी मुक्ति नहीं होती।

प्रश्न - जब परमात्मा या परावलम्बन से धर्म या मुक्ति नहीं होती, तो यह सिद्ध स्वरूप, सिद्ध परमात्मा अरिहन्त परमात्मा की बात क्यों करते हो ? देव, गुरू, शास्त्र को क्यों मानते हो ?

उत्तर - जगत में सर्वश्रेष्ठ, परमहित रूप, परम मंगल स्वरूप तथा परमशरण रूप ऐसा सिद्ध पद सर्वथा अभिनन्दनीय है। सिद्ध पद की प्राप्ति के उपाय बताने वाले सद्गुरू वीतरागी संत होते हैं जो स्वयं उस मार्ग पर चलते हैं तथा सिद्ध पद प्राप्ति का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रत्नत्रय स्वरूप निज शुद्धात्मा है ; जिसको अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा है, सद्गुरू उसका पालन करते हैं और बताते हैं, शास्त्र (जिनवाणी) में वह लिखा है, इसलिये देव गुरू शास्त्र के प्रति बहुमान भक्ति भाव आता है।

अरिहन्तादि का स्वरूप वीतराग विज्ञानमय होता है, इसी कारण से अरिहन्त सिद्ध आदि स्तुति योग्य महान हुये हैं। पंच परमेष्ठी का मूल स्वरूप तो वीतरागी व विज्ञानमय है। इसका ज्ञान ही परमइष्ट है। शक्ति से तो सभी आत्मायें शुद्ध हैं, परन्तु रागादि विकार अथवा ज्ञान की हीनता की अपेक्षा से जीव संसारी दीन-हीन बना है। अपने ज्ञान में विवेक प्रगट हुआ तो जिसके निमित्त से बात समझ में आई - उन वीतरागी देव, गुरू, शास्त्र का स्मरण कर नमस्कार करते हैं, उनके उपकार नहीं भूले जाते।

प्रश्न- देव स्वरूप जो अरिहन्त सिद्ध परमात्मा हैं वह इष्ट आराध्य और नमस्कार करने योग्य हैं या निज शुद्धात्म तत्व इष्ट आराध्य है ?

उत्तर – देव स्वरूप – अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा इस बात के साक्षी और प्रमाण हैं कि आत्मा ही परमात्मा है। जगत का कोई भी भव्य जीव अपने सत्स्वरूप का श्रद्धान ज्ञान और साधना करके आत्मा से परमात्मा हो सकता है ; इसलिये निज स्वरूप शुद्धात्म तत्व ही इष्ट आराध्य है, इसी के आश्रय से कर्मक्षय – पर्याय की शुद्धि और मुक्ति होती है। पर के इष्ट – आराध्यपने से पराधीनता कर्म बंध होता है।

प्रश्न – तारण पंथ में देव पूजा की विधि क्या है ?

उत्तर – अध्यात्म में सदैव निश्चयनय ही मुख्य है। व्यवहार के आश्रय से कभी अंशमात्र भी धर्म नहीं होता, अपितु इसके आश्रय से तो राग–द्वेष के विकल्प ही उपजते हैं। शुद्ध निश्चयनय से जिसने अपने सत्स्वरूप को जान लिया है कि सिद्ध के समान केवलज्ञानी अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा के समान मैं भी अनन्त चतुष्टय का धारी परमात्मा हूँ। तब वह अपनी वर्तमान पर्याय में जो अशुद्धि है, पूर्व में अज्ञान दशा में जो कर्मों का बंध हो गया है, उनको क्षय करने के लिये अपने परम पारिणामिक भाव ममल स्वभाव ध्रुव तत्व का आश्रय लेता है। अपने देवत्व स्वरूप की साधना – आराधना स्मरण ध्यान कर निज गुणों को प्रगट करता है, इसी से पूर्व कर्म बन्धोदय निर्जरित क्षय होते हैं। यही ज्ञान मार्ग की सच्ची देव पूजा विधि है। पूर्व में जो ज्ञानीजन सिद्ध मुक्त हुये हैं वह भी इसी साधना से सिद्ध हुए हैं। अपनी कमी को दूर कर पूर्णता को प्राप्त करना ही सच्ची पूजा है।

प्रश्न – तारण पंथ में देव दर्शन का क्या विधान है ?

उत्तर– अध्यात्म में निश्चय से निज शुद्धात्मा ही देव होता है, जो इस देहालय में विराजमान है। तारण पंथी आंख बन्द करके अपने शुद्धात्म देव का दर्शन करता है और देव के स्वरूप को बताने वाली जिनवाणी को नमन करता है।

प्रश्न– यह भक्ति आराधना तो व्यक्तिगत अंतरंग है, इसका समाज से क्या संबंध है ? इसे दूसरा क्या जाने, फिर और सब जीव कैसा क्या करें ?

उत्तर – धर्म मुक्तिमार्ग तो व्यक्तिगत होता ही है। इसमें एक जीव का दूसरे जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है। जो जैसा करेगा, उसका वैसा फल वही भोगेगा, परन्तु अध्यात्म दृष्टि बनाकर ज्ञान मार्ग की साधना सभी जीव कर

सकते हैं, इसमें कोई विरोध भी नहीं है। उपलब्धि – स्थिति अपनी पात्रता और पुरुषार्थ के अनुसार होगी ; लेकिन लक्ष्य और उपाय एक सा किया जाता है, किया जा सकता है। जैसे और सारे व्यवहारिक धन्धा, खेती आदि कार्य भी एक साथ एक से किये जाते हैं , वहां भाग्य अनुसार उपलब्धि होती है ; परन्तु यदि शुद्ध कारण है तो शुद्ध कार्य होगा – सम्यक् सही मार्ग है तो अपनी मंजिल लक्ष्य पर अवश्य पहुंचेगा। यदि विपरीत होगा, तो उसका परिणाम भी विपरीत होगा। यह बात सोचने समझने निर्णय करने का सौभाग्य मनुष्य को मिला है। मन, बुद्धि का होना ही मनुष्य की विशेषता है। इसमें जाति–पांति, नीच–ऊँच, छोटे–बडे, गरीब–अमीर की बात ही नहीं है। यह स्वतंत्रता हर मनुष्य को है कि वह अपने स्वरूप के बारे में सोचे समझे, अपने भविष्य का निर्णय करे।

प्रश्न – इस बात से तो बडा विरोध पैदा होता है, संसार में सभी अपनी साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार पूजा–विधान आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, यदि वह सब गलत है, तो फिर कैसे काम चलेगा ?

उत्तर – यह कोई वाद–विवाद का विषय नहीं है। यह तो अपनी अन्तर मान्यता का विषय है। कौन क्या करता है ? इससे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। संसार में तो सभी तरह के जीव हैं और सब कुछ होता है। यहां तो जिसे मुक्त होना है, संसार में नहीं रहना है, सत्य वस्तु स्वरूप समझने की भावना है उसके लिये यह बात है। संसार में कौन – क्या करता है ? उसकी वह जाने। यह जैन दर्शन, जिनेन्द्र परमात्मा भगवान महावीर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

प्रश्न – यह पूजा आराधना, दानादि के शब्द तो बड़े भ्रम में डालते हैं इनमें मन उलझता है, क्योंकि इनकी जो व्यवहारिक मान्यता और क्रिया है, वह तो सब विपरीत है। इसके लिये क्या किया जाये, इसका सही अभिप्राय क्या है ?

उत्तर– व्यवहारी जन को व्यवहारी भाषा के द्वारा ही समझाया जाता है। जो जीव जिस भाषा को जानता है, उसी भाषा में बोला जाये, तभी वह समझता है, अन्यथा नहीं समझता। इसी प्रकार ज्ञान मार्ग, अध्यात्म साधना में उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ज्ञानी शब्दों को नहीं मर्म पकडते हैं। मर्म पकड़ने वाला ही धर्म को उपलब्ध होता है। क्रिया का शुभ अशुभ, पुण्य पाप कर्म से सम्बंध है। धर्म से क्रिया का कोई सम्बन्ध ही नही हैं, क्योंकि वस्तु स्वभाव तो निष्क्रिय, निरपेक्ष पूर्ण शुद्ध है। वहाँ शब्द भाषा का प्रयोजन ही

नहीं है। शब्दों द्वारा वस्तु स्वरूप बताया जाता है, वस्तु तो अनुभव गम्य है। वर्तमान में जो व्यवहारिक क्रियायें, सामाजिक मान्यतायें चल रही हैं, उन्हीं का सही गूढ रहस्य, सच्चा मर्म बताना, संतों का काम है। जो समझे माने उसका भला, जो न समझे, न माने उसका भी भला, उन्हें किसी से कोई राग द्वेष होता ही नहीं है।

प्रश्न– भगवान की दिव्य ध्वनि में क्या आया है ?

उत्तर– एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करता तो नहीं, परन्तु स्पर्श भी नहीं करता, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध होती है। आत्मा मात्र ज्ञायक परमानन्द स्वरूप है, यह भगवान सर्वज्ञ देव की दिव्य ध्वनि में आया है।

प्रश्न – हम लोग ज्यादा पढे लिखे नहीं है। तत्व आदि को न याद कर सकते, न विशेष समझ सकते, ऐसे में क्या करें, फिर हमारा क्या होगा ?

उत्तर – लिखना पढना आता है या नहीं आता, बुद्धि का क्षयोपशम है या नहीं, इससे धर्म का, ज्ञान मार्ग का कोई संबंध नहीं है। मैं ध्रुव स्वभावी शुद्धात्म तत्व जीव आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ। यह समझ में आता है, तो सब समझ में आ गया। यदि अपने स्वरूप का भान नहीं होता, तो बाहर में कितना ही पढा लिखा हो, सब शास्त्र याद हों, तो भी व्यर्थ हैं – और एक अपना ज्ञायक स्वभाव पकड में आ गया तो सब कुछ जान समझ लिया। इसके लिये बुद्धिपूर्वक अपने ज्ञान का उपयोग संपूर्ण शक्ति लगाकर भेदज्ञान एवं तत्वनिर्णय में लगाना चाहिये।

अन्य कुछ आये या न आये, लिखना भी न आये, कुछ याद भी न रहे, उससे क्या प्रयोजन है ? बस "तुष मास भिन्नम्" अनुभव में आ जाये, वह केवलज्ञानी होकर मुक्ति पाता है। इस शरीरादि से भिन्न मैं एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा हूँ, यह शरीरादि मैं नहीं और यह मेरे नहीं हैं, बस ऐसा अनुभव प्रमाण जानने में आ जाये, निर्णय हो जाये तो सब कुछ जान लिया, ज्ञानी हो गये।

प्रश्न– यह कैसे समझ में आवे कि जीव को सम्यग्दर्शन हो गया, यह ज्ञानी है और मुक्ति के सुख में मगन है ?

उत्तर – भाई ! यह पर की अपेक्षा समझने की बात नहीं है। यह तो निज की अपेक्षा की बात है, कौन कैसा है, उसकी वह जाने ; जो जैसा करेगा, वह

उसका फल भोगेगा। हमें तो अपने को देखना चाहिए, सद्गुरू तो अपनी बात बता रहे हैं, जैसे – इतने तीर्थंकर परमात्मा हो गये, उनको जान लेने से, अपने को क्या लाभ है। जब तक स्वयं वैसे नहीं होते, तब तक अपने को क्या मिलता है ?

अरे ! सम्यग्दृष्टि जीव को छह खंड के राज्य में संलग्न होने पर ज्ञान मे तनिक भी ऐसा भाव नहीं आता कि यह मेरे हैं। छियानवे हजार अप्सरा जैसी रानियों के वृन्द में रहने पर भी उनमें तनिक भी सुखबुद्धि नहीं होती तथा कोई नरक की भीषण वेदना में पडा हो तो भी अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन की अधिकता नहीं छूटती है। इस सम्यग्दर्शन का क्या महात्म्य है ? संसारी जीव को इस मर्म को बाह्य दृष्टि से समझना बहुत कठिन है।

प्रश्न – जब आत्मा का रागादि भावों और शरीरादि से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर यह पाप विषय – कषाय को छोड़ने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि निर्विकल्प अनुभव में निरन्तर ही रह सकते नही; इसलिए उन्हें भी शास्त्राभ्यास, व्रत, नियम, संयम के भाव उठते हैं। ऐसे शुभ राग को निर्विकल्प अनुभव की अपेक्षा हेय कहा है, निर्विकल्प अनुभव मे रहना तो सर्वोत्तम है परन्तु छद्मस्थ का उपयोग निचली दशा में आत्म स्वरूप में अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पाता। अत: ज्ञान की विशेष निर्मलता हेतु शास्त्राभ्यास में बुद्धि लगना योग्य है तथा चारित्र की शुद्धि निर्मलता हेतु व्रत–नियम–संयम–तप में लगना, पाप, विषय–कषायों से हटना बचना श्रेयस्कर है। यदि कोई शुभाचरण रूप प्रवृत्ति का विरोध करे और अशुभाचरण रूप प्रवृत्ति करे तो वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

प्रश्न – बाह्य आचरण में मतभेद होने से विवाद और एक दूसरे के प्रति राग–द्वेष पैदा होते हैं, इसका क्या समाधान होगा ?

उत्तर – इसका कोई समाधान नहीं है क्योंकि व्यवहार आचरण किसी का एक सा नहीं हो सकता। सब जीवों के कर्मोदय, पात्रता, परिस्थिति, संस्कार भिन्न–भिन्न होते हैं। एक घर में दश जीव हैं, तो सब के बाह्य आचरण, खान–पान, रहन–सहन स्वभाव भिन्न–भिन्न होते हैं, दो भाई और बाप–बेटे का व्यवहार आचरण एक सा नहीं होता। अन्तरंग साधना में अनन्त ज्ञानियों का एक मत होता है और एक अज्ञानी के अनन्त मत होते हैं। व्यवहार आचरण खान–पान, रहन–सहन को लेकर धर्म के नाम पर इतने सम्प्रदाय और जातियाँ बनी हैं, जो धर्म के मूल को भूलकर बाहरी क्रिया कांड,

पूजा-पाठ, खान-पान को लेकर आपस में लड़ते बैर-विरोध में पड़े हैं, जिससे स्वयं का भी अहित हो रहा है और दूसरों का भी हो रहा है, पर जब तक सम्यग्ज्ञान न होवे वह भी क्या करें ? अज्ञान की महिमा भी अगम है, अज्ञान जो भी न कराये थोडा है, इसलिए इस विवाद में न पडकर अपने को स्वयं को देखना है, स्वयं का निर्णय करना है और स्वयं के अनुभव के आधार पर मुक्ति मार्ग पर चलना है, यहाँ संसार की अपेक्षा नहीं है।

प्रश्न - भगवान महावीर ने ऐसे एकान्त पक्ष का प्रतिपादन तो नहीं किया, उनके समवशरण में लाखों जीव, साधु, आर्यिका, श्रावक, श्राविका थे, अगर पहले निश्चय सम्यग्दर्शन की बात होती, शुद्धात्म तत्व की ही चर्चा उपदेश होता तो इतने जीव संयमी त्यागी साधु कैसे होते ?

उत्तर - भगवान महावीर ने ही द्रव्य की स्वतंत्रता और वस्तु का स्वरूप बताया है। उन्होंने ही निज शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय धर्म की व्याख्या की है। जगत तो पराधीन - पराश्रितपने की मिथ्या मान्यताओं में भ्रमित हो रहा है, स्वाधीनता और द्रव्य की स्वतंत्रता तो जैन दर्शन का मूल आधार है। किसी पर परमात्मा के आश्रय उसकी पूजा भक्ति करने या बाह्य क्रिया-कांड, पूजा - पाठ करने से कभी मुक्ति मिलने वाली नहीं है। मुक्ति तो अपने निज शुद्धात्म तत्व रत्नत्रयमयी ज्ञान गुणमाला कों उपलब्ध होने सम्यग्दर्शन होने पर ही होगी। इसमें व्यवहार रत्नत्रय बाह्य आचरण का निषेध नहीं है, पर मात्र इनके आश्रय मुक्ति नहीं होगी, इनसे तो पुण्य बंध और संसार का ही चक्र चलेगा। संयम, सदाचार का पालन करने का कभी किसी ने निषेध नहीं किया। भगवान महावीर के समवशरण में लोग गये, धर्म की देशना सुनी, आत्म कल्याण करने मुक्ति पाने की चर्चा सुनी और जिसको जैसा समझ में आया वह वैसा करने लगा। भगवान उसे भी रोक नहीं सकते, वह भी किसी का कुछ नहीं कर सकते क्योंकि यदि कुछ करते होते, तो भगवान आदिनाथ के समवशरण में यही भगवान महावीर का जीव मारीचि की पर्याय में बैठा था। भरत चक्रवर्ती का पुत्र और भगवान आदिनाथ का पोता था, तीर्थंकर होने की घोषणा भी कर दी, लेकिन मोक्षमार्ग में नहीं लगा सके। अज्ञान मिथ्यात्व के कारण ३६३ मत विपरीत चलाये, अनन्त पर्यायों में परिभ्रमण किया और सुलटने का काल आया तो सिंह की पर्याय में निज शुद्धात्मानुभूति हुई, सम्यग्दर्शन हुआ और दसवें भव में महावीर बने।

प्रश्न – जब केवलज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा हैं, उनके ज्ञान में त्रिलोक का त्रिकालवर्ती परिणमन प्रत्यक्ष झलक रहा है, कौन कैसा है, यह सब भगवान के ज्ञान में आ रहा है, फिर वे सभी बातें स्पष्ट नहीं बताकर वस्तु स्वरूप सिद्धान्त का ही निर्णय क्यों देते हैं ?

उत्तर – यह पवित्र जैन दर्शन का मार्ग अनेकान्त, स्याद्वादमयी है। द्रव्य की स्वतंत्रता एक –एक परमाणु और पर्याय का परिणमन स्वतंत्र है। जीव की पात्रता अनुसार उसका परिणमन, निमित्त, नैमित्तिक सम्बंध और पांच समवाय के आधार पर सब हो रहा है। इसमें कोई कुछ भी नहीं कर सकता। यहाँ आपने जो प्रश्न किया है उसका सैद्धान्तिक निर्णय और वस्तु स्वरूप बताया जा रहा है। कौन कैसा है, क्या कर रहा है, इससे तो भगवान को कोई प्रयोजन ही नहीं है। व्यक्तिगत बात करना राग–द्वेष का कारण है।

प्रश्न– यह बात, ऐसा निर्णय, ऐसा मार्ग तो हर जगह नहीं बताया और सब जीवों को इस बात का पता भी नहीं चलता, संसार में तो लोग जाति, सम्प्रदाय, मान्यतायें बांधे हुये हैं ?

उत्तर– जिस जीव की पात्रता पकती है, होनहार उत्कृष्ट होती है, काल लब्धि आती है, उसे सब निमित्त सहज में मिल जाते हैं। धर्म किसी जाति सम्प्रदाय से नहीं बंधा, जीव भी किसी बंधन में नहीं बंधे, यह सब संसार चक्र तो जीव की अज्ञानता के कारण चल रहा है। जब जीव जागता है तो फिर कोई जाति सम्प्रदाय मान्यता बाधक नहीं बनती, जीव की अन्तर भावना जागे तो कहीं से भी, कैसे भी आत्मोन्मुखी हो सकता है, इसके लिए एक मात्र सत्संग सहकारी है ।

प्रश्न– तारण पंथ की विशेषता क्या है ?

उत्तर– तारण पंथ शुद्ध अध्यात्मवादी मोक्षमार्ग है। जिनेन्द्र परमात्माओं द्वारा जो स्वतंत्रता का मार्ग बताया गया है, वही जैन धर्म की शुद्ध आम्नाय यह तारण पंथ है। तारण पंथ अर्थात् – संसार से तिरने का मार्ग।

प्रश्न – जब जैन धर्म अनादि से है फिर यह तारण पंथ की स्थापना का मूल कारण क्या है ?

उत्तर – जैन धर्म की शुद्ध आम्नाय अध्यात्मवाद ज्ञानमार्ग में जो व्यवधान आ गये थे, धर्म के नाम पर जडवाद एवं क्रियाकांड का पोषण हो रहा था, उसको तारण स्वामी ने सत्यधर्म, अध्यात्मवाद का शंखनाद कर दूर किया। भव्य जीवों को धर्म का सत्स्वरूप अपने आत्मा का बोध कराया। इन्हीं कारणों

से तारण पंथ की स्थापना हुई।

प्रश्न– श्री तारण स्वामी का संक्षिप्त जीवन परिचय क्या है ?

उत्तर– श्री तारण स्वामी आध्यात्मिक क्रांतिकारी वीतरागी संत थे, वे सोलहवीं शताब्दी में हुए थे, उनका जन्म मिति अगहन सुदी सप्तमी विक्रम संवत् १५०५ में पुष्पावती (वर्तमान बिलहरी) जिला – जबलपुर में हुआ था। उनकी माता का नाम वीर श्री देवी एवं पिता का नाम श्री गढाशाह जी था। बाल्यकाल से ही वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। ग्यारह वर्ष की बालवय में उन्हें सम्यक्दर्शन हो गया था। इक्कीस वर्ष की उम्र में उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया। आत्म साधनारत रहते हुए तीस वर्ष की उम्र में उन्होंने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। उनकी संयम, साधना, तप आराधना सेमरखेडी (सिरोंज, जिला – विदिशा, म.प्र.) के बियावान वन की गुफाओं में होती थी। वहा दो – दो, चार – चार दिन तक ध्यान समाधि में लीन रहते हुए अपने आपको पूर्ण निस्पृह, निर्ग्रन्थ वीतरागी बनाया और साठ वर्ष की आयु में निर्ग्रन्थ दिगम्बर वीतरागी साधु पद धारण किया।

साधु पद पर वे ६ वर्ष, ५ माह, १५ दिन तक रहे। इसमें भावलिंग पूर्वक छठे – सातवें गुणस्थान में झूलते हुये श्रेणी माडने का प्रबल पुरुषार्थ किया। काललब्धि और संहनन न होने से निसई जी मल्हारगढ में मिति जेठ वदी ६, विक्रम संवत् १५७२ में समाधि मरण पूर्वक सर्वार्थ सिद्धि को प्रयाण किया।

प्रश्न – श्री तारण स्वामी को सम्यक्दर्शन कब और कैसे हुआ ? इसका प्रमाण क्या है ?

उत्तर – श्री तारण स्वामी का जीव भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में राजा श्रेणिक के साथ रहा। वहां धर्म के सत्स्वरूप को सुना समझा, आत्मसात् किया और धर्म के विशेष बहुमान तथा सातिशय पुण्य को लेकर दो हजार वर्ष बाद पुष्पावती में पैदा हुए और नाना जी की मृत्यु का निमित्त मिलने पर भेदज्ञान पूर्वक सम्यक्दर्शन हो गया। इसका प्रमाण मालारोहण जी ग्रंथ एवं छद्मस्थवाणी ग्रंथ में उपलब्ध है। इस सम्बन्ध में श्री पंडित फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री बनारस वालों ने अपने अभिनंदन ग्रंथ में बहुत स्पष्ट और सप्रमाण लिखा है।

प्रश्न– श्री तारण स्वामी को क्षायिक सम्यक्त्व हुआ इसका प्रमाण क्या है ?

उत्तर – श्री तारण स्वामी भगवान महावीर स्वामी के पादमूल में रहे, धर्म का विशेष बहुमान किया तथा दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ किया। जो आगे काललब्धि आने पर क्षायिक सम्यक्त्व हो गया।

इसका प्रमाण श्री गोम्मटसार कर्मकांड, जयधवल, महाधवल, लब्धिसार – क्षपणासार तथा छद्मस्थवाणी में मिलता है।

प्रश्न – श्री तारण स्वामी सर्वार्थ सिद्धि को गये इसका प्रमाण क्या है ?

उत्तर – छठवें – सातवें गुणस्थान में झूलने वाले भाव लिंगी वीतरागी साधु सर्वार्थ सिद्धि जाते हैं। श्री तारण स्वामी भावलिंगी वीतरागी साधु थे, श्रेणी माडने का पुरुषार्थ किया लेकिन संहनन न होने से श्रेणी न माड सके इसलिए सर्वार्थ सिद्धि गये। इसका प्रमाण स्व. पंडित श्री कैलाशचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री बनारस द्वारा लिखित करणानुयोग प्रवेशिका में दिया है तथा छद्मस्थवाणी में भी लिखा है।

प्रश्न – तारण पंथ में मूर्ति पूजा क्यों नहीं करते ?

उत्तर – तारण पंथ अध्यात्मवादी ज्ञानमार्ग है, इसमें जड अचेतन या पर जीव तथा पर्याय का भी लक्ष्य नहीं रखा जाता, वहां मूर्ति पूजा आदि करने का प्रश्न ही नहीं है क्योंकि विपरीत मान्यता को ही मिथ्यात्व कहते हैं। जब तक गृहीत – अगृहीत मिथ्यात्व रहेगा तब तक आत्मदर्शन और मुक्ति नहीं हो सकती।

प्रश्न – मुगल शासकों के धार्मिक आक्रमण आदि की परिस्थितियों के कारण तारण स्वामी ने यह सब किया था या और कोई विशेष बात है ?

उत्तर – वीतरागी आध्यात्मिक संत किसी सामाजिक या राजनैतिक परिस्थिति से प्रभावित नहीं होते, वह तो सत्य धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं और अध्यात्मवाद से जीवों को कल्याण के मार्ग पर लगाते हैं। यह जो धर्म के नाम पर क्रियाकांड, चंदा – धंधा, पूजा – प्रतिष्ठा आदि होते हैं, उनका निर्मूलन अपने सत्स्वरूप के आश्रय से करते हैं, इसमे जो धर्म के नाम पर मनमानी – मायाचारी करते हैं, उनका सहज उन्मूलन हो जाता है। जैन धर्म तो द्रव्य की स्वतंत्रता का उद्घोषक शुद्ध अध्यात्मवादी ज्ञानमार्ग है, इसमें मूर्ति पूजा और बाह्य क्रिया कांड का तो कोई समावेश ही नहीं है।

श्री तारण स्वामी जैन धर्म के उपासक, जिनेन्द्र के अनुगामी थे, उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले इन मिथ्या आडंबरों का स्पष्टीकरण और धर्म से इनका उन्मूलन किया यही विशेष बात है।

प्रश्न – जैन धर्म में मूर्ति पूजा तो अनादि से है ?

उत्तर – जैन धर्म आत्म स्वभावाश्रित स्वाधीनता का मार्ग है। जहाँ ''सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:'' है वहां अपने शरीरादि की मान्यता और पकड छोडने पर ही आत्मानुभव सम्यक्दर्शन होता है तभी मुक्ति का मार्ग बनता है। जब तक शरीरादि जड पदार्थों में एकत्व अपनत्व रहेगा, वहाँ सम्यक्दर्शन हो ही नहीं सकता, वहां देव के नाम पर यह विपरीत अभिनिवेश कैसे हो सकता है ?

भगवान महावीर स्वामी के ६८३ वर्ष बाद तो जिनवाणी का लेखन हुआ, उस समय तक श्रुतज्ञान के बल से ही धर्म साधना और प्रभावना होती थी। समय की विपरीतता, पंचमकाल कलियुग के साथ ही धर्म का ह्रास एवं साम्प्रदायिकता और मतभेद पैदा हो गये। उसी समय आद्य शंकराचार्य द्वारा जैन धर्म को नास्तिक अनीश्वरवादी घोषित करने से जैन धर्मावलंबियों ने मूर्ति पूजा की स्थापना कर समाज को और जैन धर्म को बचाया, उस समय से यह विकृति निरतर बढती हुई बहुत ही निम्न स्तर पर पहुंच गई थी जिसका समय – समय पर आध्यात्मिक संत कुन्दकुन्दाचार्य, योगीन्दुदेव, मुनि रामसिह, महानंदिदेव, आदि ने स्पष्टीकरण किया, निषेध किया, इसी आध्यात्मिक परम्परा मे श्री गुरू तारण स्वामी ने इसका स्पष्टीकरण किया और अपने अनुयायियो को इस वितण्डावाद से दूर रखकर अध्यात्म साधना में लगाया।

प्रश्न – आप लोग षट् आवश्यक मानते हो या नहीं, फिर उसका पालन कैसे करते हो ?

उत्तर – हम लोग षट् आवश्यक को निचली भूमिका में आवश्यक मानते हुए उसका पूर्णत: पालन करते हैं और अपने जीवन को भी उसी रूप बनाते हैं। हम षट् आवश्यक को पुण्य बंध के कारण मानते हैं, धर्म नहीं मानते। श्री गुरू महाराज ने श्रावकाचार ग्रंथ में षट् आवश्यक की विवेचना गाथा क्रं. ३०७ से ३७७ तक, शुद्ध और अशुद्ध षट् आवश्यक का वर्णन किया है। हम लोग शुद्ध षट् आवश्यक को मानते हैं और पालन करते हैं और इसके लिये हमारे यहां मन्दिर विधि (भावपूजा) का इतना विशेष महत्व है कि उसमें यह षट्

आवश्यक की पूर्ति हो जाती है। इसी भावपूजा के अंतर्गत अध्यात्म आराधना में षट् आवश्यक और देव गुरू शास्त्र पूजा का सर्वांगीण विवेचन किया गया है, जिसे आम स्वयं पढकर देख सकते हैं ।

प्रश्न– गुरू महाराज के ग्रंथों की टीका करने, प्रकाशन कराने का क्या उद्देश्य है ?

उत्तर– गुरू महाराज के ग्रंथों के सत्यधर्म की देशना को लोग पढें, समझें और धर्म प्रभावना हो। तारण स्वामी और तारण पंथ की पूरे देश में जानकारी हो और सभी भव्य जीव मुक्ति के मार्ग पर लगें, सत्य धर्म को समझें, यही उद्देश्य है।

प्रश्न– जैन धर्म में इतने भेद साम्प्रदायिक प्रवृत्तियां चल रही हैं पूजा पाठ, साधना तथा व्रत संयम में इतना विरोधाभास चल रहा है, इसमें आप लोगों की क्या भूमिका है तथा इसका समाधान कैसे करते हैं ?

उत्तर– अध्यात्मवाद ज्ञानमार्ग में कोई साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं होता। मुक्तिमार्ग का पथिक किसी भी साम्प्रदायिक सामाजिक बाह्य क्रियाकाण्ड मे नहीं उलझता और आत्म साधना में इन चीजों का कोई महत्व भी नहीं होता। जैन धर्म तो एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा शुद्धात्मा का उपासक है। इसमें जबसे अज्ञान जनित बाह्य क्रिया कांड, जडवाद की मान्यता हुई तबसे यह साम्प्रदायिक भेदभाव पूजा पाठ, साधना और बाह्य आचरण में मतभेद विरोध और टकराव शुरू हो गया। श्री तारण स्वामी ने इन्हीं सब कारणों से भगवान महावीर की शुद्ध आम्नाय जो शुद्ध अध्यात्मवादी वीतरागता का मार्ग है, उसका प्रतिपादन किया। हम लोग भी उसी लक्ष्य को लेकर अपनी साधना करते हुए सत्य धर्म की प्रभावना कर रहे हैं। हम किसी साम्प्रदायिक भेदभाव में तथा पूजा-पाठ आदि क्रियाओं में उलझते ही नहीं हैं। सबके बीच आने - जाने और प्रवचन करने में हमारा एक ही लक्ष्य, सत्य धर्म की बात बताना और जीवों को अध्यात्म की ओर उन्मुख करने का उद्देश्य रहता है।

हम सबके बीच इस समन्वय के साथ चलते हैं कि जिस तरह एक परिवार में चार भाई होते हैं वह अपना धंधा पानी अलग - अलग करते हैं, खान-पान, रहन-सहन अलग होता है लेकिन परिवार की मर्यादा और धन कमाने का ही एक लक्ष्य रहता है। इसी तरह हमें भी जैन धर्म की मर्यादा रखते हुए

सत्य धर्म का, आत्म कल्याण का लक्ष्य रहना चाहिये। श्री गुरू महाराज ने ऐसा ज्ञान का मार्ग दिया है जहां सारे विरोधाभास अपने आप समाप्त हो जाते हैं, मुक्ति मार्ग में कोई भेदभाव होता ही नहीं है।

प्रश्न – जब तारण पंथ भी जैन धर्म से जुड़ा हुआ है फिर आप किस पक्ष किस सम्प्रदाय का समर्थन करते हैं ?

. उत्तर – तारण पंथ जिनेन्द्र अनुगामी जिन दर्शन से जुडा हुआ है। यह महावीर की शुद्ध आम्नाय है। इसमें कोई पक्षपात सम्प्रदायवाद है ही नहीं। यहाँ तो शुद्ध बात बताई जाती है कि –

एतत् संमिक्त पूजस्य, पूजा पूज्य समाचरेत् ।
मुक्ति श्रियं पथं सुद्धं, व्यवहार निश्चय शाश्वतं ॥

जैन धर्म में कोई भेद ही नहीं है। दिगम्बर – श्वेताम्बर सम्प्रदाय हैं और उनके भेद – प्रभेद जातियां हैं तथा निश्चय नय, व्यवहार नय पक्ष हैं और यह सब सामाजिक सांसारिक प्रवृत्तियां हैं, धर्म का इनसे कोई सम्बंध ही नहीं है। हम तारण पंथ अर्थात् मोक्षमार्ग और सत्य धर्म अर्थात् अपना शुद्धात्म स्वरूप उसके अनुयायी हैं। हम किसी पक्ष सम्प्रदाय का कोई समर्थन नहीं करते। यहां तो अनेकांत और स्याद्वाद को लेकर चलते हैं, यही जिन धर्म है जिसका तारण पंथ से सीधा संबंध है। हमारा किसी सम्प्रदाय से कोई संबंध नहीं है।

इस वर्ष भारत भ्रमण में बहुत अच्छे अनुभव आये, संसार और समाज का स्वरूप समझने को मिला। वर्तमान में जीव कैसे जी रहे हैं यह प्रत्यक्ष देखने को मिला। इन सब कारणों से वीतराग भाव की वृद्धि हुई, धर्म के प्रति बहुमान आया, साधना की दृढता बनी।

जगह–जगह सभी तरह के प्रश्न पूछे गये, उनमें से कुछ विशेष प्रश्नोत्तर आप सबकी जिज्ञासा हेतु लिखे हैं, आशा है आप संतुष्ट होंगे। वैसे, श्री मालारोहण, पण्डित पूजा, कमल बत्तीसी जी की टीकाओं में आपके सभी प्रश्न शंकाओं का समाधान हो जायेगा, आप श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करें।

अंत में, तारण तरण श्री संघ के इस वर्ष (सन् १९९९) के भ्रमण समापन अवसर पर आपका हार्दिक अभिनन्दन.....।

तारण स्वामी का शुभ संदेश
"तू स्वयं भगवान है।"

जागरण सूत्र

संकलन – ब्र. सहजानंद (बाबा)

१. पण्डित शास्त्र के पीछे दौडता है, संत के पीछे शास्त्र दौड़ते हैं। शास्त्र पढकर जो बोले वह पंडित है, सत्य पाकर जो बोले वह संत है। पंडित जीभ से बोलता है, संत जीवन से बोलता है ।

२. जागा हुआ हर आदमी राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर है। सोया हुआ हर आदमी कंस– कमठ और रावण है। जागो, चिता जल उठे इससे पहले अपनी चेतना जगा लो।

३. सत्ता के लिये दूसरों को मिटाना पडता है, सत्य के लिये स्वय को मिटाना पड़ता है। सत्ता शाश्वत नहीं, सत्य शाश्वत होता है। सत्ता 'अहं' की पोषक है और सत्य 'अर्हम्' की साधना है।

४. मन का रोग आधि है, तन का रोग व्याधि है, पद का रोग उपाधि है और इन तीनों रोगों की एक दवा समाधि है।

५. मनुष्य देह एक सीढी है, इस सीढी पर चढकर तुम प्रभु हो सकते हो और नीचे उतर कर पशु बन सकते हो, पशु बनना है या प्रभु ? निर्णय तुम्हारे हाथ में है।

६. भक्त प्रार्थना करता है और कमबख्त याचना करता है, आज मंदिरों मे भक्तों की नहीं, कमबख्तों की भरमार है।

७. धर्म लडना नहीं, लाड (प्रेम) करना सिखाता है, भारत की संस्कृति खिलाकर खाने की है, जो खिलाकर खाता है वह हमेशा खिलखिलाता है।

८. धर्म का संबंध जाति से नहीं, जीवन से है, आचरण से है। धर्म जीवन का अंतिम चरण नहीं, जीवन का मंगलाचरण है। धर्म पंथ नहीं, पथ देता है, जिस पर चलकर परमात्मा बना जा सकता है।

९. आज मनुष्य हंसना भूल गया है, यही कारण है कि दुनियां में इतने पाप हो रहे हैं। स्मरण रहे, हंसता हुआ आदमी कभी पाप नहीं करता, सारे पाप–उदासी, दु:ख व क्रोध के कारण होते हैं।

१०. राम का समग्र जीवन अनुकरणीय है, श्रीकृष्ण का उपदेश अनुकरणीय है। राम ने जो किया वह तुम्हें करना है, कृष्ण ने जो कहा है वह तुम्हें करना है। राम धर्मयुग है और कृष्ण युग धर्म है।

११. मृत्यु, जीवन का परम सत्य है। इस जीवन में पद, पैसा, पत्नी, परमात्मा

मिले या न मिले, मृत्यु जरूर मिलेगी। सफेद बाल निवृत्ति के प्रतीक हैं, सफेद बाल रूपी चावल परोस दिये जायें तो संसार से हाथ जोडकर सन्यास ले लेना चाहिये।

१२. मांगो उसी से जो दे दे खुशी से, कहे न किसी से। दान देना शान से, दान लेना आन से, दान का सदुपयोग हो, सबका कल्याण हो। पुण्य और दान छपाकर नहीं, छिपाकर करना चाहिये।

१३. जो दिया जाता है वह भाषण है, जो जिया जाता है वह प्रवचन है। आज देश को बातों के बादशाह नहीं, आचरण के आचार्य चाहिये।

१४. जो कीचड में कीडे की तरह जीता है वह अज्ञानी है और जो कीचड में कमल की तरह जीता है वह ज्ञानी है। धंधे में धर्म का समावेश जरूरी है किन्तु धर्म में धंधा नहीं होना चाहिये।

१५. मंदिर तुम्हारा ही रूप है, तुम्हारे देह मंदिर में वैदेही परमात्मा बैठा है उस परमात्मा को पहिचानना ही इस मंदिर की प्राण प्रतिष्ठा है।

१६. जो शुभ है, पुण्य है करने जैसा है, वह आज अभी इसी वक्त कर लो, समय का कोई भरोसा नहीं। बूढा आदमी दुनियां का सबसे बडा शिक्षालय है।

१७. आज समाज की स्थिति उस अधमरे व्यक्ति के समान है, जिसे न तो दफना सकते हैं और न ही जिससे कोई काम ले सकते हैं। यह समाज के लिये खतरनाक संकेत है, इस खतरे का समाधान समाज को सुसंस्कार देना है।

१८. सन्यास जीवन क्रांति की दास्तान है। सन्यास का अर्थ एक परिवार को छोड देना नहीं, वरन् पूरे संसार को परिवार बना लेना है। संसार से भागना नहीं, जागना सन्यास है।

१९. जब मन में कोई खोट होती है तभी तन पर लंगोट होती है। जो विकारों से परे है ऐसे शिशु और मुनि को वस्त्रों की क्या जरूरत है।

२०. धर्म और धन दोनों औषधि हैं ; लेकिन धर्म 'टॉनिक' है, केवल पीने की दवा है और धन 'मरहम' है वह बाहर से लगाने की दवा है, दोनों का सही प्रयोग जीवन को स्वस्थ बनाता है।

२१. हमें केवल तख्त पर एक नहीं होना है अपितु वक्त पर भी एक होना है। यदि देश के सभी धर्माचार्य तख्त और वक्त पर एक हो जायें तो समाज और देश का कायाकल्प हो सकता है।

भारत के महाप्राण : संत तारण तरण

आत्मा ही परमात्मा है, ''संसार के सभी प्राणी निज स्वभाव सत्ता से समान हैं, उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है, उनसे ऊँच-नीच का भाव रखना दुर्गति का कारण है, कोई भी मानव निज स्वभाव श्रद्धा और सत्पुरूषार्थ द्वारा भगवान बन सकता है। धर्म को किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता, धर्म किसी बाहरी क्रियाकाण्ड में नहीं है, धर्म आत्मा का स्वभाव है। अस्तु, प्रत्येक क्रिया आध्यात्मिक भावों से पूर्ण होना चाहिए। जो क्रिया अध्यात्म भावों से शून्य है वह आडम्बर मात्र है। कोई भी व्यक्ति मोह, माया, ममता, राग, द्वेष, अहंकार पर विजय प्राप्त कर अन्तरोन्मुखी वृत्ति के द्वारा परमात्म पद प्राप्त कर सकता है। सत्य को स्वीकार करना ही मानव का कर्तव्य है।''

सोलहवीं शताब्दी के परम आध्यात्मिक सत प्रथम युग चेतना के गायक, युग दृष्टा, जन-जन में स्वतंत्रता का सिंहनाद करने वाले श्री जिन तारण तरण स्वामी जी ने आज से ५५० वर्ष पूर्व सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर यह संदेश भारत्त की जनता को दिया था। उनकी देशना को सुनकर लाखों लोगों ने बिना किसी भेदभाव के वास्तविक धर्म को स्वीकार किया था।

संत तारण स्वामी का जन्म विक्रम संवत् १५०५ में अगहन शुक्ल सप्तमी को जबलपुर जिले के कटनी नगर से १४ कि.मी. दूर पुष्पावती नामक स्थान पर हुआ था। आपकी माता का नाम वीरश्री देवी और पिता का नाम श्री गढाशाह जी था। आप बाल ब्रह्मचारी थे।

भारत कृतज्ञ है कि उसकी गोदी में ऐसा महानतम नक्षत्र करूणा और ज्ञान का संदेश लेकर आया कि अपनी महानता से भारत को महान बना गया, मिथ्यात्व के गहन अंधकार में बाह्य क्रियाकाण्डों और आडम्बरों में उलझे जनमानस को अहिंसा और सहज विश्वासवर्द्धक स्वर्णिम किरणों सदृश्य पूंजीभूत ज्ञान का प्रकाश दिया। जैन जगत धन्य है कि जन-जन में समभाव, स्नेह, करूणा, क्षमता और संयम का प्रतिमान उपस्थित करने वाले संत श्री तारण स्वामी अपने आप में अनूठे व्यक्तित्व थे। इसी माटी में खेले इन्हीं नदियों का जल पीकर बडे हुए और अपने सद्विचारों से धरती को महान बना गये, उनका जीवन भारतीय जन मानस के लिए आलोकित प्रकाश स्तम्भ है।

आचार्य श्री का जीवन ज्ञान और संयम की प्रयोगशाला था, उनका उद्देश्य तरण तो था ही, साथ में विश्व के लोगों को जीने का उद्देश्य बतलाना भी

था। तारण स्वामी का जीवन भारतीय संस्कृति के लिए आध्यात्मिक विकास का प्रतीक है। हिंसा और अहिंसा, सत्य और असत्य, परिग्रह और अपरिग्रह के संघर्ष में जिस मार्ग का अनुसरण किया उसी मार्ग पर दृढता से बढते गये, एक बार भी पीछे मुडकर नहीं देखा। उन्होंने अपने शरीर को ब्रह्मचर्य की आग मे ऐसा तपा लिया था कि इच्छाओं को विराम मिल गया। ३० साल के अखण्ड तप में उनकी आत्मा पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रकाशमयी हो गयी। उनका चारित्र इतना भव्य था, उनकी वाणी सरल और सशक्त थी कि ५५० वर्षों से समता और आत्मोन्नति का पथ सिंचित करती आ रही है और अहिंसा सहित ज्ञान की संचित पूंजी का आवंटन भी। तारण स्वामी ने संदेश दिया था कि अतस् में उठने वाली मोह, राग, द्वेष की प्रवृत्तियों को जीतना ही सच्ची विजय है। तारण स्वामी के समय में देश में चारों ओर अन्याय, अत्याचार, अंधविश्वास और बाह्य क्रिया काण्डों का साम्राज्य था। बडा ही वीभत्स और करूण दृश्य उपस्थित था, सत्य कुचला जा रहा था, नारियो की पवित्रता दुतकारी जा रही थी। तारण स्वामी ने लोक स्थिति का अध्ययन किया, लोगों को अज्ञानता, स्वार्थपरता, भ्रम और उनका अधविश्वास देखकर तारण स्वामी के हृदय में करूणा उपजी, साथ ही पीडितो के दु:ख को देखकर उनके हृदय मे पूर्व संचित दया का अखण्ड स्रोत बह निकला।

उनका तप उनका ज्ञान ''तरण'' के लिए था पर उन्होंने जगत के जीवों को सत्य ज्ञान प्रदान करने का सकल्प किया, उन्होंने लोक उद्धार का सम्पूर्ण भार उठाने के पहले अपने को तौला। उसमें जो कमियाँ थीं, उन्हें तीस वर्ष तक श्रावक धर्म पालते हुए सेमरखेडी के बियावान जगल में तपश्चरण करते हुए पूरा किया। इसके बाद सब प्रकार से शक्ति सम्पन्न होकर सिहनाद किया, लोक मे प्रचलित सभी अधविश्वासों और पाखण्डों के विरूद्ध आवाज उठाई, इस सिंहनाद को सुनकर लोगों को अपनी भूल मालूम हुई, वास्तविक धर्म का ज्ञान हुआ, यथार्थ स्वरूप का परिचय हुआ, आत्मा-अनात्मा का भेद स्पष्ट हुआ, मिथ्या मान्यताओं से पर्दा उठा, इस आशा के साथ जाति भेद की कट्टरता मिटी, उदारता प्रगटी, लोगों के हृदय में समानता की भावना जागी।

उन्होंने लुकमानशाह जैसे सुल्तानों को प्रभावित किया, लक्ष्मण पाण्डे जैसे कितने ही दिग्गज विद्वानों को प्रबोधित किया, चिदानन्द चौधरी आदि कितने ही तिरस्कृत व्यक्तियों ने तारण स्वामी की देशना स्वीकार की और सब प्रकार से अनुयायी बनकर वास्तविक धर्म का मर्म प्राप्त किया। तारण स्वामी की आध्यात्मिक क्रांति के कारण उस समय का बहुत बड़ा समुदाय

अध्यात्मवाद की ओर अग्रसर हुआ। इस प्रभावना ने जहाँ दुखियों के हृदय मे शांति स्थापित की, करूणा की धारा बहाई, मानवता के पतन को रोका, वही नवीन युग का सूत्रपात भी किया।

गुरूदेव तारण स्वामी के अमृत तुल्य १४ ग्रंथों में किसी का विरोध नहीं है, उनके ग्रंथों में वास्तविक आत्मा के स्वरूप का चिंतन है। जैसा आत्मा का अनुभवन किया वैसा ही ग्रंथों में उतर आया। तारण स्वामी आये थे तो संदेश लेकर, अपरिमित ज्ञान, दया, करूणा, समता का भण्डार अपने हृदय मे सिंचित किये हुए। जैन धर्म का आज जो सुदृढ महल अवस्थित है उसका श्रेय तारण स्वामी की संकल्प शक्ति को ही है। तारण स्वामी का पथ कठिन अवश्य था किन्तु अति समतावादी सुन्दर और मनोरम। तारण स्वामी प्रतिपल विचार करते थे कि संयम का अपूर्व अवसर उपस्थित हुआ है अत: मोह, माया, ममता पर विजय प्राप्त कर अहंकार के पथ से ऊपर जीवन में निर्मलता का अनुसंधान करना है। इसी कारण तारण स्वामी पंथवाद के व्यामोह में नहीं फंसे। सभी जीवों को सत्य धर्म का उपदेश देना उनका लक्ष्य था और इस अभियान में वे सफल भी हुए। जाति-पांति से विमुख तात्कालिक भारत की सभी जातियों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। उनका जीवन देखकर वीतरागता भी कृतज्ञ थी। तारण स्वामी के चरण जिस ओर बढे, बढते ही गये कभी पीछे लौट कर नहीं देखा।

६० वर्ष की अवस्था तक तारण स्वामी इस ज्ञानयज्ञ में लगे रहे और एक बार पुन. सेमरखेडी के बियावान जंगल मे, जहाँ पहले तप, संयम और अध्ययन के फलस्वरूप वास्तविक स्वरूप की स्थापना का संकल्प लिया था, उसी स्थान पर श्रावकपद की निर्वृत्तिपूर्वक मुनिपद अंगीकार किया और इस पद की प्राप्ति के बाद पूर्ण रूप से संयमी बन गये। इसी क्रम में भ्रमण को अल्पविराम मिला और साधना की गहनता बढी। कुछ समय बाद तारण स्वामी संघ सहित मल्हारगढ ग्राम के विपिन में पधारे, आपको यहाँ अपार शांति प्राप्त हुई, आपने इस पावन स्थल पर कुछ समय तक महत् ध्यानाराधना की। अंत में, विक्रम संवत् १५७२ की जेठ वदी ६ को आपने इसी स्थान पर देह का परित्याग कर संसार भ्रमण की बहुत बडी भूमिका छोडकर सर्वार्थ सिद्धि पद प्राप्त किया और अमरता को प्राप्त हो गये।

आज ५५० वर्षों के बाद भी विश्व धर्म की धारा से समन्वय बनाये हुए, तारण पंथ अपना अविछिन्न रूप बनाये हुए है। सम्पूर्ण बाह्य क्रिया कांडों, अंधविश्वासों और रूढियों से विदा लेकर सामाजिक चेतना को आगे बढाने में

गुरूदेव तारण स्वामी का योगदान महत्वपूर्ण है। इतने वर्षों के बाद भी इसमें रूढता और परपरावादिता नहीं है। वैचारिक ताजगी और निर्मलता आज भी इतन गौरव से विद्यमान है। इसकी चिंतन पद्धति सहिष्णु क्रांतिनिष्ठ और प्रगतिशील है और युगो – युगो तक सत्य एव सम्यक्त्व के अन्वेषण में सहयोग करेगी। इसने धार्मिक अन्तर्विरोधो को सदैव एक रचनात्मक मोड़ दिया है और अपने स्वस्थ चिंतन प्रक्रिया के द्वारा क्षमादि धर्मों को स्थापित किया। तारण पथ ने प्रत्येक जीव की भगवान बन सकने की लुप्त होती स्वाधीनता और प्रतिष्ठा की रक्षा की है, तथा समाज को एक वैज्ञानिक गति प्रदान की है। इसमे किसी का विरोध नही, किसी की अवहेलना, असम्मान या तिरस्कार नहीं, अपितु अनेकांत की उदारपद्धति का बीजारोपण है।

यह तारण पंथ का आत्मधर्म है, इसी कारण आज भी स्मरणीय है, प्रगतिशील है, चिर नूतन है। इसमें अंध विश्वासों और रूढियों को कभी स्वीकार नहीं किया। वह सभी प्राणियों में परमात्मा की स्थिति मानता है और सत्य मार्ग का निरूपण करता है। परमात्म पद की प्राप्ति पुरूषार्थ साध्य है, किन्तु अप्राप्य नहीं है। १४ ग्रंथों में सर्वत्र लिखा है 'कथितं जिनेन्द्रैः' यह मैं नहीं कहता, जिनेन्द्र भगवान का कथन है। समझो, देखो, विचार करो और स्वीकार करो। संपूर्ण विश्व उनका ऋणी है कि तारण स्वामी की वाणी ने सारे देश की स्वाधीनता को जगाया, यह स्वतंत्रता की घोषणा आप जैसे निस्पृही सत के ही वश की बात थी। इस दृष्टि से तारण स्वामी सबसे प्रथम युग चेतना के गायक तथा आध्यात्मिक क्रांतिकारी संत थे।

तारण स्वामी ने डंके की चोट पर भारत में ऐसा उत्थान का मार्ग बतलाया जिसकी आज हमारे देश को सबसे बडी जरूरत है। तारण स्वामी के तीर्थक्षेत्र वर्तमान में अपनी आध्यात्मिक गरिमा से भारत को गौरव प्रदान कर रहे हैं।

जन्म स्थल : पुष्पावती (बिलहरी), जिला – जबलपुर (म.प्र.)
धर्म प्रचार केन्द्र : श्री सूखानिसई जी, जिला – दमोह (म.प्र.)
तप एवं दीक्षा स्थली : श्री सेमरखेडी जी, जिला – विदिशा (म.प्र.)
समाधि स्थल : श्री निसई जी (मल्हारगढ), जिला – गुना (म.प्र.)

तारण वाणी के मार्मिक सूत्र

- **चेतना लक्षणो धर्मो ।**
  आत्मा का चैतन्य लक्षण स्वभाव धर्म है।
- **आत्मा परमात्म तुल्यं ।**
  आत्मा परमात्मा के समान है।
- **अप्पं च अप्प तारं ।**
  अपना आत्मा ही स्वयं को तारने वाला है।
- **नीचे ऊँच दृश्यते, तद नीच-निगोद खांड़ो दृश्यते ।**
  जो मानव दूसरों में नीच-ऊँचपन की दृष्टि रखता है, वह उस संकुचित विचार के फलस्वरूप नीच गति को प्राप्त करता है।
- **इच्छा भोजन जसु उच्छाह, ऐसो सिद्ध स्वभाव ।**
  रूचिकर भोजन के प्रति जैसा उत्साह होता है, वैसा उत्साह अपने सिद्ध स्वभाव का जगाओ तो धर्म की प्राप्ति सहज होवे।
- **कम्म सहावं खिपनं ।**
  कर्मों का स्वभाव क्षय होने का है।
- **विकहा अधर्म मूलस्य ।**
  विकथायें (व्यर्थ चर्चायें) अधर्म की जड़ हैं।
- **चौरसी उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न अनंत भव ।**
  इस जीव ने चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण करते हुए अनंत भव बिताये हैं। मनुष्य जन्म में मुक्त होने का अवसर प्राप्त हुआ है।
- **देहस्थोपि अदेही च, ममात्मा परमात्मं ध्रुवं ।**
  देह में स्थित होते हुए भी मेरा आत्मा अदेही परमात्म स्वरूप ध्रुव है।
- **अप्पा परू न पिच्छई, मिच्छा दिट्ठी असुह भावस्य ।**
  मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वादि अशुभ भावों को करता रहता है, आत्मा और पर को नहीं पहिचानता।
- **दंसन दिट्ठि सदिट्ठं, कम्म मल मिच्छ दोष परिगलियं ।**
  जो जीव सम्यक् दर्शन की दृष्टि से देखता है उसके कर्म मल मिथ्यात्व आदि सकल दोष नष्ट हो जाते हैं।
- **न्यानं तिलोय सारं, नायव्वो गुरू पसाएन ।**
  सम्यक् ज्ञान ही तीन लोक में सार है, ऐसा श्री गुरू के उपदेश रूप प्रसाद से जानों।

- **न्यानं दंसन सम्मं, सम भावना हवदि चारित्तं।**
  सम्यक् दर्शन ज्ञान सहित रागादि के अभाव रूप जो सम भावना होती है, उसको सम्यक् चारित्र कहते हैं।
- **पूजा पूज्य समाचरेत्।**
  पूज्य के समान आचरण होना ही सच्ची पूजा है।
- **जह पज्जायं दिट्ठं, अप्पा समयं च मुक्त न्यानं च।**
  जैसे ही जीव पर्याय की दृष्टि करता है, उसी क्षण स्व समय आत्म स्वरूप के ज्ञान से छूट जाता है।
- **देवं अरूव रूवं, दर्सन मोहंध रूव देवं च।**
  पुद्गलादि के समस्त रूपों से अतीत, ज्ञान स्वभावी, अरूपी जिसका स्वरूप है वह सच्चा देव है, किन्तु दर्शन मोहांध जीव रूपी (मूर्तिक शरीर) को देव मानता है।
- **चलि चलहुन हो मुक्ति श्री तुम्ह न्यान सहाए।**
  हे भव्यात्मन्! चलो-मुक्ति श्री तुम्हारे ज्ञान स्वभाव में ही है, उसी में आचरण करो।
- **जिनवयनं सद्दहनं।**
  जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर श्रद्धान करो।
- **पण्डिय विवेय सुद्धं।**
  पंडित अर्थात् ज्ञानी वह है जो विवेक से (आत्म-अनात्म बोध से) शुद्ध होता है।
- **ममात्मा ममलं सुद्धं।**
  मेरा आत्मा त्रिकाल शुद्ध ममल स्वभावी है।
- **कमलं कलंक रहियं।**
  कमल के समान ज्ञायक ज्ञान स्वभावी आत्मा सर्व कर्म कलंक अर्थात् कर्म मल से रहित है।
- **न्यान बलेन इष्ट संजोए, भय षिपिय कम्म विलीजै।**
  ज्ञान के बल से अपने इष्ट (निज शुद्धात्मा) को संजोओ, इससे सभी भय क्षय हो जायेंगे और कर्म विला जायेंगे, क्षय हो जायेंगे।
- **जिन उत्तं सुध सारं, न्यानं अन्मोय विकल्पं विलयं।**
  जिनेन्द्र परमात्मा के कहे हुए वचनों का शुद्ध सार यही है कि अपने ज्ञान स्वभाव में लीन हो जाओ, इसी से संपूर्ण विकल्प विला जायेंगे और मुक्ति की प्राप्ति होगी।

आध्यात्मिक जयमाल एवं भजन

विषयानुक्रम

आध्यात्मिक भजन

❀ वन्दे श्री गुरु तारणम् ❀

आध्यात्मिक जयमाल एवं भजन

आत्मनिष्ठ साधक, आध्यात्मिक संत
पूज्य गुरुदेव
श्री ज्ञानानंद जी महाराज

आध्यात्मिक जयमाल

१. श्री तारण पंथ

जयमाल

१. मन शरीर से भिन्न सदा जो, एक अखंड निराला है ।
ध्रुव तत्व शुद्धातम कहते, चेतन लक्षण वाला है ।।
ऐसे निज स्वरूप को जाने, वही कहाता संत है ।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है ।।

२. निज स्वरूप का अनुभव ही तो, सम्यक्दर्शन कहलाता ।
स्व पर का यथार्थ स्वरूप ही, सम्यक्ज्ञान में झलकाता ।।
निज स्वभाव में रत हो जाना, सम्यक्चारित्र अन्त है ।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है ।।

३. निज स्वरूप को भूला चेतन, काल अनादि भटक रहा ।
चारों गति के चक्कर खाता, मोह राग में लटक रहा ।।
सद्‌गुरू तारण स्वामी जग को, दिया यही महामंत्र है ।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है ।।

४. सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण ही, मोक्षमार्ग कहलाता है ।
जीवमात्र का धर्म यही है, जैनागम बतलाता है ।।
धर्म साधना आतम हित में, हर व्यक्ति स्वतंत्र है ।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है ।।

५. जाति पांति व क्रिया कांड सब, सम्प्रदाय बतलाते हैं ।
अज्ञानी जीवों को इनमें, धर्म के नाम फंसाते हैं ।।
बाह्य प्रपच परोन्मुख दृष्टि, करती यह परतंत्र है ।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है ।।

६. सभी जीव भगवान आत्मा, सब स्वतंत्र सत्ताधारी।
पर्यायी परिणमन क्रमबद्ध, सबकी अपनी है न्यारी॥
कोई किसी का कुछ नहीं करता, कहते यह अंरिहंत हैं।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है॥

७. भेदज्ञान तत्व निर्णय करना, तारण पंथ आधार है।
मुक्ति सुख को देने वाला, समयसार का सार है॥
वस्तु स्वरूप जान कर ज्ञानी, बनता खुद भगवंत है।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है॥

८. द्रव्य दृष्टि के हो जाने पर, द्रव्य स्वभाव दिखाता है।
पुद्गल द्रव्य शुद्ध परमाणु, भ्रम में न भरमाता है॥
ध्रुव तत्व दृष्टि में रहता, बनता वह निर्ग्रन्थ है।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है॥

९. पराधीन पर के आश्रय से, मुक्ति नहीं मिलने वाली।
पर की पूजा क्रिया कांड सब, मन समझाना है खाली॥
निज चैतन्य देव को पूजो, बन जाओ अरिहंत है।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है॥

१०. जन जन का अध्यात्म धर्म है, निज स्वरूप को पहिचानो।
बाह्य परिणमन कर्माधीन है, इसको अपना मत मानो॥
ज्ञानानंद स्वभावी हो तुम, देखो खिला बसंत है।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है॥

दोहा

सोलहवीं सदी में हुए, सद्गुरू तारण संत।
शुद्ध अध्यात्म की देशना, चला यह तारण पंथ॥

जाति पांति का भेद तज, किया धर्म प्रचार।
ज्ञानानंद स्वभाव से, मच रही जय जयकार॥

२. ज्ञानी ज्ञायक

१. ध्रुव तत्व शुद्धातम हूं, परमातम सिद्ध समान हूं ।
निरावरण चैतन्य ज्योति मैं, ज्ञायक ज्ञान महान हूं ॥
वस्तु स्वरूप को जाना जिसने, ध्रुव ध्रुव ही कहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

२. कर्म उदय पर्याय से उसका, कोई न संबंध है ।
पर की तरफ न दृष्टि देता, स्वयं पूर्ण निर्बन्ध है ॥
पूर्व कर्म बन्धोदय जैसा, समता से सब सहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

३. खाना पीना सोना चलना, सब पुद्गल पर्याय है ।
अच्छा बुरा न पुण्य-पाप है, सुख दु:ख न हर्षाय है ॥
अभय अडोल अकंप निरन्तर, मन के साथ न बहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

४. करना-धरना छूट गया सब, जो होना वह होता है ।
किसी की कोई परवाह नहीं, क्या आता जाता खोता है ॥
अडीधक्क अपने मे रहता, सब कर्मों को हरता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

५. किसी दशा में किसी हाल में, कहीं रहे कैसा होवे ।
इससे उसे कोई न मतलब, अपने ध्रुव धाम सोवे ॥
सत्य धर्म की बात बताता, अहं ब्रह्मास्मि कहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

६. कर्मोदय पर्याय अव्रती, व्रती हो महाव्रती हो ।
जग में जय जयकार मचे या, सारी साख ही गिरती हो ॥
निर्भय मस्त रहे अपने में, जग अस्तित्व को ढहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

७. घर समाज परिवार से उसका, अब ना कोई नाता है ।
प्रेमभाव रहता है सबसे, सबसे हंसता गाता है ॥

निर्विकार निस्पृह है निज में, पर से कुछ न कहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

८. ध्रुव तत्व निज शुद्धातम का, जिसको दृढ श्रद्धान है ।
त्रिकाली पर्याय क्रमबद्ध, निश्चित अटल का ज्ञान है ॥
निर्विकल्प हो ध्यान समाधि, अपने आप में रहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

९. धन शरीर संसार से उसको, कोई न राग द्वेष है ।
कैसी क्या क्रिया होती है, कैसा उसका भेष है ॥
सहजानंद स्वरूपानंद हो, तत्वमसि ही कहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

१०. आगम अनुभव से प्रमाण कर, सार तत्व को जाना है ।
कथनी करनी छूट गई सब, ध्रुवतत्व पहिचाना है ॥
पर उसको पहिचान न सकता, स्वयं स्वयं को गहता है ।
ज्ञानानंद निजानंद रत हो, ज्ञानी ज्ञायक रहता है ॥

३. ध्रुवधाम

१ सिद्ध स्वरूपी शुद्धातम हो, अनन्त चतुष्टय धारी हो ।
परमानन्द मयी परमातम; पूर्ण मुक्त अविकारी हो ॥
न्यारे हो स्वराज्य लिया है, पाया निज ध्रुव धाम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

२. क्या होता आता जाता है, इससे कोई न मतलब है ।
क्रमबद्ध पर्याय से निश्चित, जरा न होवे गफलत है ॥
रावण का ही वध होना है, जय बोलो श्रीराम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

३. चारों तरफ धर्म की सेना, कर्म बने वरदान हैं ।
अभय स्वस्थ होकर के बैठो, जीत लिया मैदान है ॥
कुंभकरण वध हो ही गया है, जीता आतम राम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

४. दृढता धर कर मारे जाओ, धर्म की जय जयकार करो ।
अब संसार में नहीं रहना है, कर्मोदय से नहीं डरो ॥
सीता सती परम शान्ति का, सदा जपो तुम नाम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

५. क्या होना है क्या होवेगा, इसका तनिक न सोच करो ।
त्रिकाली परिणमन सब निश्चित, ध्रुव तत्व का ध्यान धरो ॥
पर घर काल अनादि भटके, अब यह मिला मुकाम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

६. कुछ ही समय की बात रही है, समता शान्ति धरे रहो ।
जल्दी काल लब्धि आना है, ॐ नमः सिद्धं ही कहो ॥
जग से अब क्या लेना-देना, सबको राम-राम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

७. ज्ञानानंद जीतता जाता, निजानंद बढता जाता ।
ब्रह्मानन्द सामने देखो, सहजानंद चला आता ॥
स्वरूपानंद में लीन रहो बस, यहीं पर अब विश्राम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

८. सर्वज्ञ प्रभु यह सामने बैठे, वस्तु स्वरूप को बता रहे ।
सिद्ध स्वरूप को देखो अपने, तारण स्वामी जता रहे ॥
ध्रुवतत्व शुद्धातम अपना, पूर्ण शुद्ध निष्काम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

९. पर का सब अस्तित्व मिटाओ, पर्यायी भ्रम जाल है ।
पर की तरफ देखना ही बस, यही तो जग जंजाल है ॥
निज घर रहो निजानन्द पाओ, पर घर में बदनाम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

१०. शून्य समाधि लगाओ अपनी, निर्विकल्प निर्द्वंद रहो ।
अपनी ही बस देखो जानो, और किसी से कुछ न कहो ॥
ज्ञानानंद सौभाग्य जगा है, जग से मिला विराम है ।
ध्रुवधाम में डटे रहो बस, इतना ही अब काम है ॥

४. ममल स्वभाव

१. सिद्ध स्वरूपी शुद्धातम है, पूर्ण शुद्ध निष्काम है ।
ध्रुव त त्व टंकोत्कीर्ण अप्पा, ज्ञायक आतम राम है ॥
वस्तु स्वरूप सामने देखो, मिला यह अच्छा दांव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

२. ममल स्वभाव में रहने से ही, परमानन्द बरसता है ।
कर्मों का क्षय होता जाता, सहजानंद हरषता है ॥
ज्ञान विराग की शक्ति अपनी, जितना उमंग उछाव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

३. भेदज्ञान तत्व निर्णय द्वारा, वस्तु स्वरूप को जाना है ।
ध्रुव तत्व शुद्धातम हूं मैं, निज स्वरूप पहिचाना है ॥
दृढता धर पुरूषार्थ करो नर, देखें कितना चाव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

४. शरीरादि सब ही भ्रांति है, मन माया भ्रम जाल है ।
इनके चक्र में उलझा प्राणी, रहे सदा बेहाल है ॥
अनुभव प्रमाण सब जान लिया है, ये तो सभी विभाव हैं ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

५. व्यवहारिक सत्ता को छोडो, धर्म का अब बहुमान करो ।
वीतराग निस्पृह होकर के, साधु पद महाव्रत धरो ॥
ध्रुव तत्व की धूम मचाओ, बैठो आतम नांव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

६. कर्मोदय सत्ता मत देखो, न संसार की बात करो ।
धर्म कर्म का सब निर्णय है, चित्त में इतनी दृढता धरो ॥
ढील-ढाल प्रमाद में रहना, ये ही जग भटकाव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

७. निज शुद्धात्म स्वरूप को देखो, ज्ञानानंद में मगन रहो ।
निजानंद की धूम मचाओ, तारण तरण की शरण गहो ॥

एक अखंड सदा अविनाशी, परम पारिणामिक भाव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

८. ममल स्वभाव में रहने लगना, मोक्षमार्ग पर चलना है ।
जीवन में सुख शांति आती, सब कर्मों का दलना है ॥
पर का लक्ष्य -पक्ष न रहता, मिटता भेदभाव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

९. संसारी व्यवहार का जब तक, मूल्य महत्व अधिकार है ।
निज सत्ता स्वरूप को भूले, चलता मायाचार है ॥
अपनी सुरत नहीं रहती है, शुद्ध दृष्टि अभाव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

१०. रूचि अनुगामी पुरूषार्थ होता, सब सिद्धांत का सार है ।
रूचि कहां की और कैसी है, इसका करो विचार है ॥
दृष्टि पलटते सृष्टि पलटे, फिर न कोई लगाव है ।
पर पर्याय पर दृष्टि न देना, ये ही ममल स्वभाव है ॥

५. मुनिराज

१. मै आतम शुद्धातम हूँ, परमातम सिद्ध समान हूँ ।
ज्ञायक ज्ञान स्वभावी चेतन, चिदानन्द भगवान हूँ ॥
ऐसे ज्ञान श्रद्धान सहित जो, चढता मुक्ति जहाज है ।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है ॥

२. ज्ञान ध्यान मे लीन सदा जो, तपश्चरण ही करता है ।
आर्त रौद्र ध्यानों को तजकर, धर्म शुक्ल ही धरता है ॥
जनरंजन मनरंजन से छूटा, छूटा सकल समाज है ।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है ॥

३. कलरंजन का काम नहीं है, न कोई मायाचारी है ।
सरल शान्त निस्पृह बालकवत्, छूटी दुनियांदारी है ॥
जग का सब अस्तित्व मिटाकर, बना वह जग का ताज है ।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है ॥

४. ध्रुव तत्व की लगन लगी है, मुक्ति श्री को पाना है।
अब जग से कोई काम नहीं है, परमातम बन जाना है॥
पाप परिग्रह छूट गये सब, छूटा सब भय लाज है।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है॥

५. आत्म ध्यान की साधना करता, परमानन्द में रहता है।
शान्त शून्य निर्विकल्प स्वयं मैं, किसी से कुछ न कहता है॥
जग में क्या होता जाता है, किसी से कुछ न काज है।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है॥

६. निस्पृह आकिंचन ब्रह्मचारी, उत्तम क्षमा का धारी है।
अर्घावतारण असि प्रहार में, समता शांति बिहारी है॥
परम अहिंसा धर्म का धारी, अनुपम शाह नवाज है।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है॥

७. पच महाव्रत पंच समितियां, तीन गुप्ति का पालक है।
दस सम्यक्त पंच ज्ञान रत, महावीर सम बालक है॥
अभय अडोल अकंप स्वयं में, करता आतम काज है।
ममल रवभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है॥

८. शुद्ध दृष्टि समदर्शी साधक, परम शान्त परमार्थी है।
ऊँच नीच का भेदभाव तज, स्वयं बना आत्मार्थी है॥
ध्यान समाधि ऐसी साधी, हिरण खुजाता खाज है।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है॥

९. दस चौदह परिग्रह का त्यागी, बन्धन रहित विरागी है।
क्रियाकाड पुण्य को तजकर, धर्मध्यान अनुरागी है॥
नमन सदा ऐसे साधु को, लिया स्वतंत्र स्वराज है।
ममल स्वभाव में रहने वाला, साधु वह मुनिराज है॥

१०. कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, ज्ञानानंद में रहता है।
पूर्व कर्म बंधोदय के, उपसर्ग परीषह सहता है॥
तारण तरण भवोदधि तारक, सद्गुरू परम जहाज है।
वीतराग निर्ग्रन्थ दिगम्बर, साधु वह मुनिराज है॥

६. सम्यग्ज्ञान

१. ओंकारमयी शुद्धातम ही, परम ब्रह्म परमातम है ।
सभी जीव भगवान आत्मा, स्वयं सिद्ध शुद्धातम है ।।
स्व-पर का सत्स्वरूप जानना, यही भेद विज्ञान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

२. अध्यात्म वाद का मूल यही तो, तत्व ज्ञान कहलाता है ।
आत्म ज्ञान का बोध जागना, भव से पार लगाता है ।।
जीवन का यह परम लक्ष्य है, बनना खुद भगवान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

३. शरीरादि से भिन्न सदा मैं, ज्ञायक ज्ञान स्वभावी हूँ ।
अलख निरंजन परम तत्व मैं, ममलह ममल स्वभावी हूँ ।।
अनुभूतियुत सम्यग्दर्शन, जग में श्रेष्ठ महान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

४. निज अज्ञान मोह के कारण, जीव बना संसारी है ।
चारों गति में काल अनादि, दुःख भोगे अति भारी है ।।
पर का कर्ता धर्ता बनना, यही महा अज्ञान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

५. निज शुद्धात्मानुभूति ही, निश्चय सम्यग्दर्शन है ।
इससे परे और कुछ करना, झूठा व्यर्थ प्रदर्शन है ।।
धर्म-कर्म को जानने वाला, ज्ञानी परम सुजान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

६. भेद ज्ञान तत्व निर्णय द्वारा, वस्तु स्वरूप को जाना है ।
द्रव्य दृष्टि का उदय हुआ है, निज स्वरूप पहिचाना है ।।
ज्ञायक ज्ञान स्वभाव मे रहता, वह नर वीर महान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

७ काल लब्धि आने पर जिसको, सम्यग्दर्शन होता है ।
निज पुरूषार्थ जागता उसका, संशय विभ्रम खोता है ।।

अभय स्वस्थ मस्त रहना ही, इसका एक प्रमाण है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

८. हर क्षण हर पर्याय में ज्ञानी, निजानंद में रहता है ।
ज्ञानानंद प्रगट हो जाता, किसी से कुछ न कहता है ।।
ध्रुव स्वभाव की साधना करता, सब जग धूल समान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

९. सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित वह, समयसार हो जाता है ।
दृढ निश्चय श्रद्धान जागता, भ्रम भय सब खो जाता है ।।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहता, कर्म बना श्मशान है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

१०. वीतरागता आने पर ही, साधुपद हो जाता है ।
सहजानंद में मस्त रहे वह, ब्रह्मानंद पद पाता है ।।
ध्यान समाधि लगती ऐसी, पाता पद निर्वाण है ।
सर्वश्रेष्ठ और इष्ट जगत में, केवल सम्यग्ज्ञान है ।।

७. साधक

१. सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हो, जो ममल भाव में रहता है ।
ध्रुवतत्व शुद्धातम हूँ मैं, सिद्धोहं ही कहता है ।।
ज्ञान ध्यान की साधना करता, जपता आतम राम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ।।

२. पर पर्याय का लक्ष्य नहीं है, ध्रुव तत्व पर दृष्टि है ।
भेद ज्ञान तत्व निर्णय करता, बदल गई सब सृष्टि है ।।
विषय कषायें छूट गई हैं, छूट गया धन धाम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ।।

३. वस्तु स्वरूप को जान लिया है, अभय अडोल अकंप है ।
त्रिकालवर्ती पर्याय क्रमबद्ध, इसमें जरा न शंक है ।।
ध्रुवधाम में बैठ गया है, जग से मिला विराम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ।।

४. सभी जीव भगवान आत्मा, सब स्वतंत्र सत्ताधारी ।
पुद्‌गल द्रव्य शुद्ध परमाणु, उसकी सत्ता भी न्यारी ॥
द्रव्य दृष्टि से देखता सबको, अपने में निष्काम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ॥

५. सिद्ध स्वरूप का ध्यान लगाता, निजानंद में रहता है ।
तत् समय की योग्यता देखता, किसी से कुछ न कहता है ॥
सत्पुरूषार्थ बढाता अपना, अपने में सावधान है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ॥

६. जग का ही अस्तित्व मिटाता, सब माया भ्रमजाल है ।
सत्ता एक शून्य विन्द का, रखता सदा ख्याल है ॥
तन-धन-जन से काम रहा नहीं, मन का भी विश्राम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ॥

७ ज्ञेय भाव सब ही भ्रांति है, भावक भाव भ्रमजाल है ।
त्रिगुणात्मक माया का, फैला सब जजाल है ॥
निज स्वरूप सत्य शाश्वत है, सहजानंद सुखधाम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ॥

८. अब जग से कोई काम नहीं है, सिद्ध मुक्त ही होना है ।
निज सत्ता शक्ति प्रगटा कर, पर्यायी भय खोना है ॥
अब संसार में नहीं रहना है, दृढ संकल्प महान है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ॥

९. क्या होता आता जाता है, इसकी ओर न दृष्टि है ।
कर्मोदय परिणमन है सारा, सिमट गई सब सृष्टि है ॥
ध्रुव तत्व की धूम मचाता, रहा दाम न नाम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ॥

१०. वस्तु स्वरूप सामने रखता, परमातम पद धारी है ।
ब्रह्मानंद की साधना करता, ज्ञानानंद निर्विकारी है ॥
निस्पृह आकिंचन होकर के, बैठा निज ध्रुवधाम है ।
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, साधक का यह काम है ॥

८. मोक्षमार्ग

१. भेदज्ञान तत्वनिर्णय द्वारा, शुद्धातम को पहिचाना ।
स्व-पर का यथार्थ निर्णय कर, वस्तु स्वरूप को है जाना ॥
ध्यान समाधि लगाओ अपनी, छोडो दुनियांदारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

२. द्रव्य दृष्टि से जीव-अजीव का, निश्चय सत्श्रद्धान किया ।
ध्रुव तत्व शुद्धातम हूँ मैं, निज स्वरूप पहिचान लिया ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान हो गया, मच रही जय जयकारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

३. त्रिकालवर्ती परिणमन सारा, क्रमबद्ध और निश्चित है ।
भ्रम भ्रांति अशुद्ध पर्याय यह, अपना कुछ न किन्चित है ॥
शुद्ध दृष्टि समभाव में रहना, यही एक हुश्यारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

४. मुक्ति मार्ग के पथिक बने हो, सिद्ध मुक्त ही होना है ।
अब संसार में नही रहना है, व्यर्थ समय नहीं खोना है ॥
सत्पुरूषार्थ जगाओ अपना, अब क्यों हिम्मत हारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

५. करना धरना कुछ भी नहीं है, जो होना वह हो ही रहा ।
किसी से अपना कोई न मतलब, कर्मोदय सब खो ही रहा ॥
सब जीवों की सब द्रव्यों की, स्वतंत्र सत्ता न्यारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

६. स्वयं ध्रुव तत्व शुद्धातम, अरहन्त सिद्ध केवलज्ञानी ।
टंकोत्कीर्ण अप्पा ममल स्वभावी, जगा रही है जिनवाणी ॥
रत्नत्रयमयी स्वस्वरूप ही, अनन्त चतुष्टय धारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

७. सत्ता एक शून्य विन्द है, एकोहं द्वितियो नास्ति ।
निज अज्ञान भ्रम के कारण, पर की है सत्ता भासती ॥

ज्ञान बलेन इष्ट संजोओ, कैसी मति यह मारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

८. अभय स्वस्थ मस्त होकर के, ध्रुवधाम में डटे रहो ।
कमल ममल अनुभव में आ गये, निजानंद से कर्म दहो ॥
अशुभ कर्म वरदान बने हैं, धर्म की महिमा सारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

९. पर पर्याय पर दृष्टि न देना, तारण गुरू का कहना है ।
धर्म साधना मुक्ति मार्ग यह, ममल स्वभाव में रहना है ॥
निस्पृह वीतराग बन जाना, साधु पद तैयारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

१०. ज्ञायक ज्ञान स्वभावी हो तुम, ज्ञानानंद में सदा रहो ।
'सहजानंद की करो साधना, मुक्ति श्री की बांह गहो ॥
कर्मोदय पर्याय न देखो, यह तो सब संसारी है ।
दृढता साहस और उत्साह ही, मोक्षमार्ग सहकारी हैं ॥

९. शुद्ध दृष्टि

१. ॐ ह्रीं श्रीं स्वरूप ही, यह आतम परमातम है ।
देव गुरू व धर्म आत्मा, स्वयं सिद्ध शुद्धातम है ॥
निज स्वरूप का बोध हमें, मां जिनवाणी करवाती है ।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है ॥

२. दर्शन ज्ञान के भेद से चेतन, बाहर पकड़ में आता है ।
आगम की परिभाषा में, ये ही उपयोग कहाता है ॥
दर्शन ज्ञान उपयोग की शुद्धि, भव से पार लगाती है ।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है ॥

३. श्रद्धागुण निर्मल पर्याय में, सम्यग्दर्शन होता है ।
सप्त प्रकृति के क्षय होने से, मोह तिमिर को खोता है ॥
निज स्वरूप अनुभूति होना, निश्चय नय की थाती है ।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है ॥

४. सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान को, तत्व निर्णय से शुद्ध किया।
संशय विभ्रम सभी विला गये, निर्विकल्प आनंद लिया॥
दर्शनोपयोग की शुद्धि ही, शुद्धोपयोग कराती है।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है॥

५. चक्षु अचक्षु दर्शन द्वारा, जो भी दिखाई देता है।
कर्मोदय अशुद्ध पर्याय यह, चित्त को भरमा लेता है॥
माया का अस्तित्व मानना, ये ही चाह जगाती है।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है॥

६. ध्रुवतत्व शुद्धातम हूं मैं, असत् अनृत पर्याय है।
जब ऐसा दृढ निश्चय होवे, फिर चित्त न भरमाय है॥
निज सत्ता की दृढता होना, पर का बंध छुडाती है।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है॥

७. मन बुद्धि चित्त अहं यह, सभी अशुद्ध पर्याय हैं।
इनमें उलझा हुआ यह चेतन, जग में ही भरमाय है॥
दृष्टि शुद्ध अटल अपने में, फिर न धोखा खाती है।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है॥

८. क्षायिक सम्यग्दर्शन करके, ज्ञानानंद में सदा रहो।
कर्मोदय पर्याय न देखो, जड पुद्गल की कुछ न कहो॥
पर का सब अस्तित्व मिटाना, केवलज्ञान कराती है।
ध्रुवतत्व को देखने वाली, दृष्टि शुद्ध कहाती है॥

१०. भाव विशुद्ध

१. आतम सिद्ध स्वरूपी चेतन, ध्रुव तत्व अविनाशी है।
पर्यायी परिणमन अशुद्ध से, बना यह जग का वासी है॥
कर्मोदय संयोग अनादि, पर में ही भरमाता है।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है॥

२. भाव विशुद्धि ही मुक्ति है, भाव मोक्ष कहलाती है।
सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित यह, मोक्षपुरी ले जाती है॥

कर्मों का क्षय होता जाता, परमानंद बढाता है ।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है ॥

३. भेदज्ञान तत्व निर्णय द्वारा, वस्तु स्वरूप को जाना है ।
ध्रुवतत्व शुद्धातम हूँ मैं, अनुभव प्रमाण पहिचाना है ॥
सत्ता एक शून्य विन्द का, नारा तभी लगाता है ।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है ॥

४. पर्यायी परिणमन क्रमबद्ध, त्रिकालवर्ती निश्चित है ।
जैसा केवलज्ञान में आया, टाले टले न किंचित् है ॥
क्षणभंगुर सब नाशवान है, ध्रुव की धूम मचाता है ।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है ॥

५. सिद्धोहं - सिद्धरूपोहं का, जिसे हुआ बहुमान है ।
अहं ब्रह्मास्मि ही कहता है, खुद आतम भगवान है ॥
एकोहं द्वितियो नास्ति, जग अस्तित्व मिटाता है ।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है ॥

६. क्या होता आता जाता है, पर का जरा न ख्याल है ।
शुद्ध दृष्टि अखंड पर रहती, सब माया भ्रमजाल है ॥
ध्रुवधाम में बैठा-बैठा, जय जयकार मचाता है ।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है ॥

७. अकड-पकड सब मिट जाने से, परम शान्ति आती है ।
अच्छा बुरा छूट जाना ही, निर्भय निर्द्वंद बनाती है ॥
ज्ञानानंद निजानंद रहता, ब्रह्मानंद मस्ताता है ।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है ॥

८. निज स्वभाव में रहना ही तो, केवलज्ञान कहाता है ।
तीर्थंकर सर्वज्ञ केवली, परमातम बन जाता है ॥
सहजानंद स्वरूपानंद हो, मोक्ष परम पद पाता है ।
पर का लक्ष्य-पक्ष न रहना, भाव विशुद्ध कहाता है ॥

११. कल्याण

१. ध्रुवतत्व शुद्धातम हूं मैं, इसका ज्ञान श्रद्धान किया ।
त्रिकाली पर्याय क्रमबद्ध, इसको भी स्वीकार लिया ॥
ज्ञायक ज्ञान स्वभावी चेतन, खुद आतम भगवान है ।
ममल स्वभाव में लीन रहो, बस इसमें ही कल्याण है ॥

२ वस्तु स्वरूप सामने देखो, शुद्ध तत्व का ध्यान धरो ।
पर पर्याय तरफ मत देखो, कर्मोदय से नहीं डरो ॥
ध्रुव तत्व की धूम मचाओ, पाना पद निर्वाण है ।
ममल स्वभाव में लीन रहो, बस इसमें ही कल्याण है ॥

३. सिद्धोहं-सिद्धरूपोहं का, शखनाद जयकार करो ।
अभय स्वस्थ मस्त होकर के, साधु पद महाव्रत धरो ॥
अब ससार तरफ मत देखो, सब ही तो श्मशान है ।
ममल स्वभाव मे लीन रहो, बस इसमे ही कल्याण है ॥

४. ज्ञेय मात्र सब ही भ्रांति है, भावक भाव भ्रमजाल है ।
पर्यायी अस्तित्व मानना, यही तो सब जंजाल है ॥
निज सत्ता स्वरूप को देखो, कैसा सिद्ध समान है ।
ममल स्वभाव में लीन रहो, बस इसमें ही कल्याण है ॥

५. छहों खड चक्रवर्ती राजा, तीर्थंकर महावीर हुये ।
कौन बचा है यहां बताओ, राम कृष्ण भी सभी मुये ॥
अजर अमर अविनाशी चेतन, ज्ञायक ज्ञान महान है ।
ममल स्वभाव में लीन रहो, बस इसमें ही कल्याण है ॥

६. ज्ञानानंद स्वभावी हो तुम, निजानंद में लीन रहो ।
अब किससे क्या लेना देना, ॐ नमः सिद्धं ही कहो ॥
ध्यान समाधि लगाओ अपनी, प्रगटे केवलज्ञान है ।
ममल स्वभाव में लीन रहो, बस इसमें ही कल्याण है ॥

१२. बारह भावना

आतम ही तो परमातम है, सब धर्मों का सार है ।
निज स्वरूप का बोध जगा लो, ब्रम्ह सदा अविकार है ।।
निज अज्ञान मोह के कारण, सह रहे कर्म की मार है ।
बारह भावना भाने से होता आतम उद्धार है ।।
वैराग्य की जननी बारह भावना, वस्तु स्वरूप बताती है ।
स्व पर का यथार्थ निर्णय यह, अपने आप कराती है ।।
इनका चिन्तन मनन ध्यावना, नरभव का ही सार है ।
बारह भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।

१. अनित्य भावना

जो जन्मा है अवश्य मरेगा, ये ही जगत विधान है ।
मर करके जो जन्म न लेता, वह बनता भगवान है ।।
आतम अजर अमर अविनाशी, अज्ञान से बना गंवार है ।
अनित्य भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।
संयोगी पर्याय बिछुडना, यह मरना कहलाता है ।
वस्तु स्वरूप विचार करो तो, सब अज्ञान नसाता है ।।
पर्यायी परिणमन क्षणिक है, अपनी रखो सम्हार है ।
अनित्य भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।

२. अशरण भावना

शरण नहीं है जग में कोई, झूठे सब रिश्ते नाते ।
स्वारथ लाग करें सब प्रीति, जरा काम में नहीं आते ।।
जन्मो मरो, स्वयं ही भुगतो, यही तो सब संसार है ।
अशरण भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।
देख लिया जग का स्वरूप सब, अब किसको क्या कहना है ।
ज्ञानी हो, तो अभी चेत लो, ज्ञानानद में रहना है ।।
धर्म कर्म में कोई न साथी, झूठा सब व्यवहार है ।
अशरण भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।

३. संसार भावना

कोई नहीं किसी का साथी, न कोई सुख दु:ख दाता।
अपना अपना भाग्य साथ ले, जग में जीव आता जाता ॥
फिर किसको अपना कहते हो, सब जग ही निस्सार है।
संसार भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥
धन वैभव सब कर्म उदय से, मिलता और बिछुडता है।
कर्ता बनकर मरने से ही, जीव अनादि पिटता है ॥
देख लिया सब जान लिया फिर, अब क्यों बना लवार है।
संसार भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

४. एकत्व भावना

आप अकेला आया जग में, आप अकेला जायेगा।
जैसी करनी यहाँ कर रहा, उसका ही फल पायेगा ॥
चेत जाओ अब भी जल्दी से, रहना दिन दो चार है।
एकत्व भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥
माया का यह खेल जगत है, जीव तो ज्ञान स्वभावी है।
चिदानन्द चैतन्य आत्मा, ममलह ममल स्वभावी है ॥
निज सत्ता शक्ति पहिचानो, मौका मिला अपार है।
एकत्व भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

५. अन्यत्व भावना

इस शरीर से सब संबंध है, जीव से न कोई नाता।
सारा खेल खत्म हो जाता, जब यह जीव निकल जाता ॥
धन वैभव सब पडा ही रहता, साथी न परिवार है।
अन्यत्व भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥
देखलो सब प्रत्यक्ष सामने, कैसी है दुनियांदारी।
नाते रिश्ते छूट गये सब, छूट गई सब हुश्यारी ॥
पूछने वाला कोई नहीं है, करते रहो विचार है।
अन्यत्व भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

६. अशुचि भावना

हाड मांस मल मूत्र भरा यह, बना हुआ तन पिंजरा है।
इसमें कैदी जीव अज्ञानी, रहता मूर्ख अधमरा है ॥

मिट्टी-मिट्टी में मिल जाती, जलकर होता खार है ।
अशुचि भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।
पुद्गल परमाणु का ढेर यह सारा, क्षण भर में ढह जाता है ।
भ्रम भ्रांति यह दीख रहा जो, इसमें क्यों भरमाता है ।।
द्रव्य दृष्टि से देखो जग को, करो यह तत्व विचार है ।
अशुचि भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।

७. आस्रव भावना

मोह माया में फंसा अज्ञानी, राग द्वेष ही करता है ।
इससे कर्म बंध होता है, मुफत में सुख दुःख भरता है ।।
पर पर्याय पर दृष्टि रहना, कर्माश्रव का द्वार है ।
आस्रव भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।
पर का कर्ता भोक्ता बनना, यही महा अपराध है ।
वस्तु स्वरूप विचार करो तो, आता अमृत स्वाद है ।।
सम्यक्दर्शन ज्ञान के द्वारा, हो जाओ भव पार है ।
आस्रव भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।

८. संवर भावना

निज शुद्धातम की दृष्टि होना, सवर तत्व कहाता है ।
कर्म बन्ध होना रूक जाता, जीव मोक्ष को पाता है ।।
भेद ज्ञान तत्व निर्णय करना, एक मात्र आधार है ।
संवर भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।
निज स्वभाव की सुरत ही रहना, इसमें संयम कहलाता ।
पाप विषय कषाय का चक्कर, अपने आप ही छुट जाता ।।
निश्चय व व्यवहार शाश्वत, जिनवाणी का सार है ।
संवर भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।

९. निर्जरा भावना

ममल स्वभाव की ध्यान समाधि, कर्म निर्जरा कारण है ।
ज्ञानानंद में मस्त रहो बस, समझाते गुरू तारण हैं ।।
ध्रुवतत्व पर दृष्टि रहना, समयसार का सार है ।
निर्जर भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ।।

द्वादस तप अरू बारह भावना, वीतराग साधु होना ।
मन समझाने से काम चले न,व्यर्थ समय अब नहीं खोना ॥
कथनी करनी भिन्न जहाँ है, वहाँ तो मायाचार है ।
निर्जर भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

१०. लोक भावना

चार गति चौरासी लाख का, चक्कर खूब लगाया है ।
जन्म मरण के दु:ख से छूटो, अपना नम्बर आया है ॥
यह सारे शुभयोग मिले हैं, करलो खूब विचार है ।
लोक भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥
नरभव यह पुरूषार्थ योनि है, अब तो निज पुरूषार्थ करो ।
साधु पद की करके साधना, जल्दी मुक्ति श्री वरो ॥
व्यर्थ समय अब नहीं गंवाओ, हो जाओ तैयार है ।
लोक भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

११. बोधि दुर्लभ भावना

ज्ञान समान न आन जगत में, सुख शान्ति देने वाला ।
स्व-पर का यथार्थ ज्ञान ही, मिटाता सब भय भ्रम जाला ॥
निज स्वरूप का बोध जागना, करता भव से पार है ।
बोधि भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥
सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान ही, मुक्ति सुख का दाता है ।
सम्यग्चारित्र होने पर ही, सिद्ध परम पद पाता है ॥
सम्यग्ज्ञान का सूर्य उदित हो, मचती जय जयकार है ।
बोधि भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

१२. धर्म भावना

चेतन लक्षण धर्म जगत में, एकमात्र सुखदाई है ।
निज स्वभाव की साधना करके, सबने मुक्ति पाई है ॥
धर्म की महिमा देखो सामने, कैसी अपरंपार है ।
धर्म भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

सुख शान्ति आनंद का दाता, रत्नत्रय मयी धर्म है।
उत्तम क्षमा अहिंसा आदि, सभी इसी का मर्म है ॥
धर्म साधना ही जीवन में, एक मात्र सुखकार है।
धर्म भावना भाने से, होता आतम उद्धार है ॥

१३. सतत् प्रणाम

१. चिदानंद ध्रुव शुद्ध आत्मा, चेतन सत्ता है भगवान।
शुद्ध बुद्ध अविनाशी ज्ञायक, ब्रह्म स्वरूपी सिद्ध समान ॥
निज स्वभाव में रमता जमता, रहता है अपने ध्रुवधाम।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

२. कर्मों का क्षय हो जाता है, निज स्वभाव में रहने से।
सारे भाव बिला जाते हैं, ॐ नमः के कहने से ॥
शुद्ध ज्ञान दर्शन का धारी, एक मात्र है आतमराम।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

३. तीन लोक का ज्ञायक है, सर्वज्ञ स्वभावी केवलज्ञान।
निज स्वभाव में लीन हो गये, बनते हैं वे ही भगवान ॥
भेद ज्ञान तत्व निर्णय करके, बैठ गया जो निज ध्रुवधाम।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

४. वस्तु स्वरूप सामने देखो, शुद्धातम का करलो ध्यान।
पर पर्याय तरफ मत देखो, जो चाहो यदि निज कल्याण ॥
निज घर रहो निजानंद पाओ, पर घर होता है बदनाम।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

५. त्रिकालवर्ती पर्याय क्रमबद्ध, जो होना वह हो ही रहा।
जिसका कोई अस्तित्व नहीं है, आता जाता खो ही रहा ॥
ध्रुवतत्व तो अटल अचल है, पूर्ण शुद्ध और है निष्काम।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

६. कल रंजन, मनरंज गारव, जन रंजन होता है राग।
आतम के यह महाशत्रु हैं, है संसार की जलती आग ॥

ज्ञान स्वभाव में रहने से ही, होता इनका काम तमाम ।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

७. दर्शन मोह से अंधा प्राणी, जग में करता जन्म-मरण ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण से, करता मुक्ति श्री वरण ॥
ज्ञानानंद स्वभावी हो तुम, अब तुमको जग से क्या काम ।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

८. ध्रुव तत्व निज शुद्धातम में, मुक्ति श्री से रमण करो ।
अब संसार तरफ मत देखो, जल्दी साधु पद को धरो ॥
ध्रुव तत्व की धूम मचाओ, रहो सदा अपने ध्रुव धाम ।
तारण तरण कहाने वाले, सत् स्वरूप को सतत् प्रणाम ॥

जो भव्य जीव अनेकान्त स्वरूप जिनवाणी के अभ्यास से उत्पन्न सम्यक्ज्ञान द्वारा तथा निश्चल आत्म संयम के द्वारा स्वात्मा में उपयोग स्थिर करके बार-बार अभ्यास द्वारा एकाग्र होता है, वही शुद्धोपयोग के द्वारा केवलज्ञान रूप अरिहन्त पद तथा सर्व कर्म शरीर आदि से रहित सिद्ध परम पद पाता है।

जो अनन्त सिद्ध परमात्मा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, उनने शुद्ध स्वरूपी ज्ञान गुणमाला शुद्धात्म तत्व की अनुभूति को ग्रहण किया। जो कोई भी भव्यात्मा सम्यक्त्व से शुद्ध होंगे, वे भी मुक्ति को प्राप्त करेंगे यह श्री जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

आध्यात्मिक भजन

(१)

चैतन्य वंदना

हे ज्ञान सूर्य चैतन्य देव, तुमको वंदन शतवार नमन ।। टेक ।।

त्रय कर्मों से तुम न्यारे हो ।
त्रय रत्न चतुष्टय धारे हो ।।
देहालय वासी आत्मदेव, तुमको वंदन शत बार नमन ।।१।।
परिपूर्ण ज्ञानमय अविनाशी ।
अविकार स्वयं शिवपुर वासी ।।
हे चिद्रूपी शुद्धात्म देव, तुमको वंदन शत बार नमन ।।२।।
तुम ज्ञायक सिद्ध स्वरूपी हो ।
नित ममल अभेद अरूपी हो ।।
ज्ञाता दृष्टा ध्रुव धाम देव, तुमको वंदन शत बार नमन ।।३।।
हे चिदानंद मय शुद्धातम ।
अरिहन्त सिद्ध सम परमातम ।।
ब्रह्मानन्द मय सुख धामदेव, तुमको वंदन शत बार नमन् ।।४।।

भजन - २

लीजे रत्नत्रय धार, आत्मा लीजे रत्नत्रय धार... ।।

१. सम्यक्दर्शन रत्न अमोलक, तीन लोक में सार...आत्मा...
२. सम्यक्ज्ञान की अनुपम महिमा, सुख-शांति दातार...आत्मा...
३. सम्यक्चारित्र मुक्ति का दाता, परमानन्द भण्डार...आत्मा...
४. पर से भिन्न, स्वयं को लख लो, छूटे यह संसार....आत्मा...
५. स्व का बोध ही सम्यक्ज्ञान है, कर दे बेडा पार....आत्मा...
६. अपने में ही लीन रहो नित, यही मोक्ष का द्वार....आत्मा...
७. ज्ञानानन्द स्वभावी आतम, गुरू तारण रहे पुकार....आत्मा...
८. संयम तप की करो साधना, करो साधु पद स्वीकार....आत्मा...

भजन - ३

सम्यक्दर्शन जिसे हो गया, उसका बेडा पार है ।
अज्ञानी मिथ्यादृष्टि का, अभी अनंत संसार है ॥

१. इस शरीर से भिन्न आत्मा, अनुभव प्रमाण यह जाना है ।
पर भावों से भिन्न सदा ही, शुद्धातम पहिचाना है ॥

२. अरस अरूपी अस्पर्शी हूँ, ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ।
ज्ञेय मात्र से भिन्न सदा मैं, ज्ञायक ज्ञान स्वभावी हूँ ॥

३. करना-धरना कुछ भी नहीं है, दृष्टि का ही खेल है ।
अज्ञानी मिथ्यादृष्टि की, जग में चलती रेल है ॥

४. वर्तमान शुभयोग मिले हैं, मनुष्य जन्म यह पाया है ।
वीतराग सद्गुरू मिले हैं, जिनवर शरण में आया है ॥

५. अपना सत्पुरूषार्थ जगा लो, स्व विवेक से काम लो ।
जीवन का ही दांव लगा दो, भेदज्ञान को थाम लो ॥

६. जब तक स्व-पर ज्ञान न होवे, जन्म-मरण न छूटेगा ।
जिसको सम्यक्ज्ञान हो गया, उसका बंधन टूटेगा ॥

७. चेतो जागो निज को देखो यही समय का सार है ।
मुक्ति मार्ग पर चलने को, फिर पढो श्रावकाचार है ॥

८. पाप विषय कषाय को छोडो, संयम तप स्वीकार करो ।
मोह राग के बंधन तोड़ो, साधु पद महाव्रत धरो ॥

भजन - ४

जय हो जय हो जय हो रे, ममल स्वभाव की जय हो रे ॥

१. ममल स्वभाव का उदय हो गया ।
सारा भ्रम अज्ञान खो गया...जय हो...

२. ममलह ममल स्वभाव त्रिकाली ।
ध्रुव तत्व शुद्धातम खाली... जय हो...

३. एक अखण्ड अभेद अविनाशी ।
शुद्धं प्रकाशं ध्रुव धाम वासी...जय हो...

४. न कुछ था, न है न रहेगा ।
द्रव्य दृष्टि प्रकाश रहेगा...जय हो...

५. आनंद परमानंद बरस रहो ।
ज्ञानानंद अपने में हरष रहो..जय हो...

भजन - ५

हे आतम परमातम हो, शुद्धातम सिद्ध समान हो ।
निज की सत्ता शक्ति देखो, खुद आतम भगवान हो ।।

१. ब्रह्म स्वरूपी चेतन लक्षण, एक अखंड अविनाशी हो ।
अलख निरंजन परम ब्रह्म हो, ध्रुव धाम के वासी हो ।।

२. सिद्ध सिद्धालय वासी हो तुम, अनन्त चतुष्टय धारी हो ।
परम शान्ति आनन्द मयी हो, शिव सत्ता अधिकारी हो ।।

३. भूल स्वयं को कहाँ भटक रहे, कैसी मति यह मारी हो ।
क्रमबद्ध पर्याय असत् है, भ्रम भ्रांति यह सारी हो ।।

४. द्रव्यदृष्टि का उदय हो गया, द्रव्य स्वभाव निहारी हो ।
ध्रुव सत्ता में डटे रहो बस, ज्ञानानन्द बलिहारी हो ।।

५. ज्ञान भिन्न है राग भिन्न है, जिनवाणी उच्चारी हो ।
कर्मोदय सब क्षय होना है, अब तो अंतिम बारी हो ।।

६. दृढता से अब काम निकालो, छोडो दुनियादारी हो ।
निस्पृह निर्द्वंद मस्त रहो तो, जय-जयकार तुम्हारी हो ।।

भजन - ६

निज स्वरूप की अनुभूति ही, समयसार का सार है ।
शुद्धातम का दर्शन कर लो, वरना सब बेकार है ।।

१. एक अखंड अभेद आत्मा, शुद्ध बुद्ध परमातम है ।
सिद्ध स्वरूपी ममल स्वभावी, ध्रुव तत्व शुद्धातम है ।।
पर पर्याय से भिन्न सदा ही, निराकार निर्विकार है....

२. धन शरीर परिवार सब जड है, पुद्गल धूल का ढेर है ।
द्रव्य दृष्टि से देखो जग को, माया का सब खेल है ।।
भेद ज्ञान तत्व निर्णय कर लो, बतलाते गुरू तार हैं...

३. जन्म-मरण से छूटना चाहो, निज सत्ता स्वीकार करो ।
मुक्ति मार्ग पर चलना चाहो, साधू पद महाव्रत धरो ।।
नरभव सब शुभयोग मिले हैं, जिनवाणी का शरणा है ।
जीवन का ही दांव लगा दो, एक बार तो मरना है ।।
ध्यान समाधि लगाओ अपनी, मचेगी जय-जयकार है...

भजन – ७

निज आत्मा निहार लो, बस हो गया धरम।
संयम तप को धार लो, बस हो गया धरम॥

१. व्यसन विषय को त्याग दो, मद मोह को तजो।
मिथ्यात्व अपना मेट लो, बस हो गया धरम...निज...

२. अज्ञान से बंधन है, सद्ज्ञान से मुक्ति।
अब भेदज्ञान जान लो, बस हो गया धरम...निज...

३. पूजादि पाठ-क्रिया करम, ये धर्म नहीं है।
वस्तु स्वभाव जान लो, बस हो गया धरम...निज...

४. आतम ही है परमात्मा, शुद्धात्मा ज्ञानी।
जिनवर की बात मान लो, बस हो गया धरम...निज...

५. एक-एक समय का परिणमन, क्रमबद्ध असत है।
ध्रुव तत्व अपना जान लो, बस हो गया धरम...निज...

६. निज स्वरूप जाने बिना, मुक्ति नहीं हो।
अपनी सुरत संभार लो, बस हो गया धरम...निज...

७. सिद्धोऽहं शुद्धोऽहं, अहं ब्रह्मास्मि कहो।
अनलहक पुकार लो, बस हो गया धरम...निज...

८. धर्म से मुक्ति मिले, सुख शान्ति और आनंद।
ज्ञानानंद विचार लो, बस हो गया धरम...निज...

भजन – ८

भजले भजले रे तू आतम राम, खबर नहिं है एक पल की॥

१. काम धाम धन्धे में निशदिन, पाप ही पाप कमावे।
जिनके पीछे मरा जा रहा, कोई काम नहिं आवे...भजले....

२. धन शरीर परिवार ये तेरे, कोई साथ नहिं जावे।
अपनी करनी आप ही भुगते, कोई न हाथ लगावे...भजले....

३. ज्ञानानन्द करो मत देरी, आतम ध्यान लगाओ।
छोड छाड के सब झंझट को, मोक्ष परम पद पाओ...भजले....

भजन - ९

समदृष्टि समभाव में रहना, ज्ञानी का यह काम है।
ध्रुव तत्व यह सिद्ध स्वरूपी, ज्ञायक आतम राम है ॥ टेक ॥

१. जो कुछ होता आता जाता, सब पर्याय का काम है।
शुद्ध चिद्रूप चिदानन्द चेतन, ज्ञायक आतमराम है ॥

२. छह द्रव्यों का योग निमित्त सब, भिन्न सदा निष्काम है।
एक अखंड अभेद अरूपी, ज्ञायक आतम राम है ॥

३. त्रिकाली पर्याय क्रमबद्ध, अपने में अभिराम है।
ध्रौव्य धाम में रहने वाला, ज्ञायक आतम राम है ॥

४. ज्ञानानन्द स्वभाव सदा ही, सहजानन्द सुख धाम है।
रागादि भावों से भिन्न यह, ज्ञायक आतम राम है ॥

५. अशरीरी अविकार निरंजन, सिद्ध पूर्ण निज धाम है ॥
निरावरण चैतन्य, ज्योति यह, शाश्वत आतम राम है ॥

भजन - १०

सिद्ध स्वरूपी शुद्धातम यह, ज्ञायक आतम राम है।
ध्रुव स्वभाव में रहना ही बस, ज्ञानी का यह काम है ॥ टेक ॥

१. पर द्रव्यों से पर भावों से, ज्ञायक सदैव न्यारा है।
ज्ञेय ज्ञान ज्ञाता आदि, व्यवहार कथन यह सारा है ॥
निश्चय नय ही इष्ट हितकारी, और सभी बेकाम है....

२. ज्ञानमात्र चेतन सत्ता है, भेद विकल्प अज्ञान है।
शुद्ध नय से देखने वाला, केवल सम्यक् ज्ञान है ॥
ध्रुव तत्व का लक्ष्य एक, कर देता काम तमाम है....

३. कर्मोदायिक परिणमन सारा, भ्रम है माया जाल है।
क्षण भंगुर सब नाशवान है, संसारी जंजाल है ॥
त्रिकाली परिणमन सब निश्चित, झलका केवलज्ञान है....

४. भेद ज्ञान तत्व निर्णय द्वारा, स्व पर का श्रद्धान किया।
द्रव्य पर्याय को भली भाँति लख, वस्तु स्वरूप को जान लिया ॥
अब भ्रम का कोई काम नहीं है, देख लो यह ध्रुव धाम है....

५. ज्ञानानन्द स्वभाव है अपना, सहजानन्द सुख धाम है।
निजानन्द में रहो निरन्तर, ब्रह्मानन्द निज धाम है ॥
जग से अब क्या लेना देना, सबको राम राम है....

भजन – ११

हे आतम परमातम हो तुम, रत्नत्रय के धारी हो ।
भूल गये हो निज सत्ता को, मोह ने मति यह मारी हो ॥

१. अरस अरूपी ज्ञान चेतना, अनंत चतुष्टय धारी हो ।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, शिवपुर के अधिकारी हो...

२. पर द्रव्यों से सदा भिन्न तुम, एक अखंड अविकारी हो ।
भाव-द्रव्य नो कर्मों की, सब सत्ता न्यारी-न्यारी हो...

३. निज स्वरूप को भूल गये हो, पुद्गल से की यारी हो ।
इसीलिये तो भटक रहे हो, बनकर दीन दुखारी हो...

४. चेतो जागो उठो देख लो, तारण गुरू पुकारी हो ।
मोह राग को तोडो छोडो, मानों बात हमारी हो....

५. सत्श्रद्धान ज्ञान अब करलो, करो चलने की तैयारी हो ।
पच परमेष्ठी पद को धारो, ज्ञानानन्द हुश्यारी हो...

भजन – १२

शुद्धातम में रम जइयो, आतम वीतरागी ।
ध्रुव धाम में जम जइयो, आतम वीतरागी ॥

१. बाहर तो जल रही राग की आगी ।
जामें जल रहे सबरे रागी ॥
निर्ग्रन्थ दिगम्बर बन जइयो...आतम वीतरागी...

२. देख लो कैसो आनन्द बरस रहो ।
सुख शान्ति परमानन्द बरस रहो ॥
सिद्धोहं में रम जइयो...आतम वीतरागी...

३. सामने कोई कछु भी नहीं है ।
द्रव्य दृष्टि सम दृष्टि सही है ॥
ध्यान समाधि में रम जइयो...आतम वीतरागी...

४. पुद्गल को परिणमन भ्रम भ्रांति माया ।
मोह अज्ञान वश जीव भरमाया ॥
परमात्म सत्ता में जम जइयो...आतम वीतरागी...

भजन - १३

तन पिंजरे से चेतन निकल जायेगा ।
फिर कौन किस काम क्या आयेगा ।।

१. एक दिन जाना है निश्चित यहां रहना नहीं ।
छोड धन धाम परिवार गहना यहीं ।।
करके पापों को दुर्गति में खुद जायेगा...फिर कौन...

२. साथ जाना नहीं काम आना नहीं ।
देखते जानते फिर भी माना नहीं ।।
मोह माया में कब तक यूँ भरमाएगा...फिर कौन...

३. चेतो जागो निज को पहिचान लो ।
सीख सद्‌गुरू की देखो अभी मान लो ।।
कर ज्ञान स्व-पर का तो तर जायेगा...फिर कौन...

४. मिला मानुष जनम इसमें करले धरम ।
त्याग तप दान संयम और अच्छे करम ।।
जल्दी चेतो ज्ञानानन्द फिर पछतायेगा...फिर कौन...

भजन - १४

सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा, आज मेरे नैनों में झूले ।
नैनों में झूले मेरे अंगना में झूले ।।

१. शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्म तत्वं ।
समस्त संकल्प विकल्प मुक्तं ।।
रत्नत्रयमयी परमात्मा, आज मेरे....

२. एक अखण्ड अभेद अविनाशी ।
चैतन्य ज्योति ज्ञायक स्वभावी ।।
ध्रुव तत्व भगवान आत्मा, आज मेरे....

३. ज्ञानानन्द स्वभावी है अलख निरंजन ।
अरिहंत सर्वज्ञ भव भय भंजन ।।
ब्रह्मानन्द परमात्मा, आज मेरे....

भजन – १५

आतम को ध्यान लगाओ रे, मनुआ मुक्ति मिलेगी ॥

१. काल अनादि चतुर्गति भटके ।
नौ नौ महिना गर्भ में लटके ॥
कहीं नहीं सुख पाओ रे...मनुआ...

२. श्री गुरू चरण शरण में आये ।
जिनवाणी की शरणा पा गये ॥
मोह में मत भरमाओ रे....मनुआ...

३. मिथ्या माया को अब मत देखो ।
अपनो कोई कछु मत लेखो ॥
भेद विज्ञान कराओ रे...मनुआ...

४. इस शरीर से भिन्न आत्मा ।
एक अखंड अभेद शुद्धात्मा ॥
सम्यक्ज्ञान जगाओ रे...मनुआ...

५. रत्नत्रय मई आतम राम है,
परमशांति परमानंद धाम है ।
ज्ञानानंद रम जाओ रे...मनुआ...

६. मुक्ति श्री में अतीन्द्रिय आनंद
नंद आनंद सहज ब्रह्मानंद ।
जय-जयकार मचाओ रे...मनुआ...

भजन – १६

मुक्ति से रास रचाओ रे, मनुआ मौका मिलो है ।
मौका मिलो है जो दांव लगो है...मुक्ति से रास...

१. जीवन भर कुढ कुढ कर मरे हो ।
शल्य विकल्प हर बात में डरे हो ॥
धरम को शरणा पाओ रे...मनुआ...

२. भेदज्ञान तत्व निर्णय हो गओ ।
सारो भ्रम अज्ञान भी खो गओ ॥
सम्यक्ज्ञान जगाओ रे...मनुआ...

३. अर्क विंद द्रव्य दृष्टि हो गई ।
सारे कर्म कषायें खो गई ॥
राग में आग लगाओ रे...मनुआ...

४. मुक्ति श्री को आनंद लूटो ।
माया मोह को बंधन टूटो ॥
सत्पुरूषार्थ जगाओ रे...मनुआ...

५. देखलो सामने आनंद बरस रहो ।
परम शांति परमानंद बरस रहो ॥
जय जयकार मचाओ रे...मनुआ...

भजन - १७

आतम ध्यान लगा लइयो, कह रही जिनवाणी ।
मुक्ति को मारग बना लइयो, कह रही जिनवाणी ॥

१. जग में अपना कोई नहीं है ।
आंखो देखी बिल्कुल सही है ॥
आतम ज्ञान जगा लइयो... कह रही...

२. एक अखंड सदा अविनाशी ।
सिद्ध स्वरूपी ममल स्वभावी ॥
सम्यग्दर्शन जगा लइयो... कह रही...

३. क्रमबद्ध पर्याय सामने देखो ।
अपना कोई कछु मत लेखो ॥
अपनी ही भूल मिटा लइयो... कह रही...

४. जिनवर की वाणी महासुखदानी ।
छोड़ो मनमानी बनो सम्यग्ज्ञानी ॥
अनुभव प्रमाण बना लइयो... कह रही...

५. अपनी ही देखो अब अपनी सम्हालो ।
मोह राग छोड़ो निज आतम जगालो ॥
दृढता पुरूषार्थ बढा लइयो.... कह रही...

भजन - १८

जगा रही जिनवाणी चेत जाओ भवि प्राणी ॥

१. आतम राम को सुमरण कर लो ।
जीवन में व्रत संयम धर लो ॥
बीत रही जिन्दगानी.... चेत जाओ...

२. पाप कषाय करो मत वीरा ।
नर भव है यह अधम शरीरा ॥
मत करो अब मनमानी.... चेत जाओ...

३. साथ में अपने कछु नहीं जावे ।
धन वैभव सब यही रह जावे ॥
पाप पुण्य की घानी.... चेत जाओ...

४. जैसा करोगे खुद वैसा भरोगे ।
अपनी ही करनी से खुद ही मरोगे ॥
दुनिया की यही कहानी.... चेत जाओ...

५. परमातम को ध्यान लगाओ ।
सद्गुरू चरण शरण में आओ ।
मिल जाये मुक्ति की रानी.... चेत जाओ...

भजन - १९

जिनवर की वाणी अमोल रे, मनुआ सिद्धोहं बोल रे ॥

१. वस्तु स्वरूप का निर्णय कराया ।
द्रव्य स्वभाव का दर्शन कराया ॥
अंतर की दृष्टि खोल रे...मनुआ....

२. आतम शुद्धातम परमातम जानो ।
पुद्गल द्रव्य शुद्ध परमाणो ॥
भेद विज्ञान टटोल रे...मनुआ....

३. कर्म कषायें सभी गल जायें ।
मोह राग फिर पास न आये ॥
दृढता से निज को तोल रे...मनुआ....

४. ज्ञानानंद स्वभावी आतम ।
ध्रुव तत्व है निज शुद्धातम ॥
मौका मिला अनमोल रे...मनुआ....

भजन – २०

जग अंधियारो, धूरा को ढेर सारो, ज्ञान की ज्योति जगा लइयो।
मुक्ति को मारग बना लइयो ॥

१. जीव जुदा और पुद्गल जुदा है ।
अपना आपहि आतम खुदा है ॥
भेदज्ञान प्रगटा लइयो...मुक्ति...

२. जीव आत्मा सिद्ध स्वरूपी ।
पुद्गल शुद्ध परमाणु रूपी ॥
द्रव्य दृष्टि अपना लइयो...मुक्ति...

३. जग का परिणमन क्रमबद्ध निश्चित ।
टाले टले न कुछ भी किंचित् ॥
कर्ता भाव मिटा दइयो...मुक्ति...

४. पर्यायी परिणमन द्रव्य की छाया ।
भ्रम भ्रांति सब असत् है माया ॥
ब्रह्म ज्ञान प्रगटा लइयो...मुक्ति...

५. आत्मानंद करो पुरूषार्थ ।
वीतराग बन चलो परमारथ ॥
राग में आग लगा दइयो...मुक्ति...

भजन – २१

गुरू तारण लगा रहे टेर, चलो चलें मुक्ति श्री ॥

१. चारो गति में बहु दुःख पाये, चौरासी लाख योनि फिर आये ।
अब काहे कर रहे अबेर ...चलो चलें....

२. अपने अज्ञान से भूले स्वयं को, पर का कर्ता माना स्वयं को ।
अपनी ही बुद्धि का फेर....चलो चलें....

३. भेदज्ञान तत्व निर्णय करलो, जीवन में व्रत संयम धरलो ।
जग जाओ अब तो शेर....चलो चलें....

४. तुम तो हो भगवान आत्मा, एक अखंड ध्रुव शुद्धात्मा ।
परम ब्रह्म परमेश ....चलो चलें....

५. सत्श्रद्धान ज्ञान अब करलो, वीतराग साधु पद धर लो ।
ब्रह्मानंद क्यों करते देर....चलो चलें....

भजन - २२

ध्रुव से लागी नजरिया, आतम हो गई बबरिया ॥

१. ध्रुव सत्ता की महिमा निराली ।
इससे कटती कर्म की जाली ॥
मोक्ष पुरी की डगरिया....आतम....

२. पर पर्याय अब कछु न दिखावे ।
ध्रुव ही ध्रुव की धूम मचावे ॥
रत्नत्रय की गगरिया....आतम....

३. गुण पर्याय का भेद नहीं है ।
एक अखंड अभेद यही है ॥
ज्ञानानंद की नगरिया....आतम....

४. ध्रुव के आश्रय भव मिटता है ।
कर्म कषाय और राग पिटता है ॥
ब्रह्मानंद की बजरिया....आतम....

५. अनन्त चतुष्टय की शक्ति जगती ।
केवल ज्ञान की ज्योति प्रगटती ॥
परमातम की संवरिया....आतम....

भजन - २३

तुमको जगा रहे गुरू तारण, अब तो होश में आओ जी ॥

१. कर श्रद्धान धरो उर दृढता, मत भरमाओ जी ।
तुम तो अरूपी जीव तत्व हो, ममल स्वभाओ जी..तुमको...

२. धन शरीर में राचि रहे हो, दुर्गति जाओ जी ।
साधु बन कर करो साधना, शुद्धातम ध्याओ जी..तुमको...

३. चारों गति में फिरे भटकते, दु:ख ही पाओ जी ।
अपनी सुरत कभी नहीं आई, सबने समझायो जी..तुमको...

४. देख लो अपनो कोई नहीं है, काये मोह बढाओ जी ।
ज्ञानानंद जगो अब जल्दी, मत समय गंवाओ जी..तुमको...

भजन - २४

शुद्धातम को तरसे नजरिया, भगवन दे दो दरसिया॥

१. बिन दरशन के अंखिया तरसती।
जिनवाणी सुन नेहा बरसती॥
तडफत है जल बिन मछरिया...भगवन....

२. तुम्हारा दर्शन ही सम्यग्दर्शन।
जिससे मिटता सब जन्म मरण॥
मोक्षपुरी की डगरिया...भगवन....

३. तुम्हारे ही दर्शन को संयम तप करते।
ज्ञान चारित्र साधु पद धरते॥
पाते हैं शिवपुर नगरिया...भगवन....

४. स्वानुभूति ही सच्चा सुख है।
इससे मिटता सारा दुःख है॥
आत्मानंद बबरिया...भगवन....

५. हर पल हर क्षण तुमको ही ध्याते।
अहं ब्रह्मास्मि सिद्धोहं गाते॥
कर दो ऐसी महरिया...भगवन....

भजन - २५

हे भव्यो, भेद विज्ञान करो।
जिनवाणी का सार यही है, मुक्ति श्री वरो॥

१. जीव अजीव का भेद जान लो, मोह में मती मरो।
तुम तो हो भगवान आत्मा, शरीरादि परो .....

२. क्रमबद्ध पर्याय सब निश्चित, तुम काहे को डरो।
निर्भय ज्ञायक रहो आनंद मय, भव संसार तरो ....

३. कर्म संयोगी जो होना है, टारो नाहिं टरो।
तारण तरण का शरणा पाया, मद मिथ्यात्व हरो ....

४. इस संसार में क्या रक्खा है, नरभव सफल करो।
ज्ञानानंद चलो जल्दी से, साधु पद को धरो ....

भजन - २६

आओ हम सब मिलकर गायें, गुरूवाणी की गाथायें।
है अनन्त उपकार गुरु का, किस विधि उसे चुका पायें॥
वन्दे तारणम् जय जय वन्दे तारणम्॥

१. चौदह ग्रंथ महासागर हैं, स्वानुभूति से भरे हुए।
उन्हें समझना लक्ष्य हमारा, हम भक्ति से भरे हुए॥
गुरू वाणी का आश्रय लेकर, हम शुद्धातम को ध्यायें,
है अनन्त . . . .

२. कैसा विषम समय आया था, जब गुरूवर ने जन्म लिया।
आडम्बर के तूफानों ने, सत्य धर्म को भुला दिया॥
तब गुरूवर ने दीप जलाया, जिससे जीव संभल जायें,
है अनन्त . . . .

३. अमृतमय गुरू की वाणी है, हम सब अमृत पान करें।
जन्म जरा भव रोग निवारें, सदा धर्म का ध्यान धरें॥
हम अरिहंत सिद्ध बन जायें, यही भावना नित भायें,
है अनन्त . . . .

४. शुद्ध स्वभाव धर्म है अपना, पहले यही समझना है।
क्रियाकाण्ड में धर्म नहीं है, ब्रह्मानंद में रहना है॥
जागो जागो हे जग जीवो, सत्य सभी को बतलायें,
है अनन्त . . . .

भजन - २७

आतम है - आतम है, निज आतम देव परमातम है॥

१. अलख निरंजन शिवपुर वासी।
ध्रुव तत्व है ममल स्वभावी...आतम है...

२. एक अखण्ड सदा अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुख राशि ...आतम है...

३. ज्ञानानंद स्वभावी आतम।
परम ब्रह्म है निज शुद्धातम ...आतम है...

४. ध्रुव धाम में रहने वाला।
अहं ब्रह्मास्मि कहने वाला ...आतम है...

५. सच्चिदानंद घन अरस अरूपी।
केवलज्ञानी सिद्ध स्वरूपी ...आतम है...

भजन – २८

जय तारण तरण

जय तारण तरण सदा सबसे ही बोलिये ।
जय तारण तरण बोल अपना मौन खोलिये ।।

१. श्री जिनेन्द्र वीतराग, जग के सिरताज हैं ।
आप तिरें पर तारें, सद्‌गुरू जहाज हैं ।।
धर्म स्वयं का स्वभाव, अपने में डोलिये . . . . .

२. निज शुद्धातम स्वरूप, जग तारण हार है ।
यही समयसार शुद्ध, चेतन अविकार है ।।
जाग जाओ चेतन, अनादि काल सो लिये . . . .

३. देव हैं तारण तरण, गुरू भी तारण तरण ।
धर्म है तारण तरण, निजात्मा तारण तरण ।।
भेदज्ञान करके अब, हृदय के द्वार खोलिये . . . .

४. इसकी महिमा अपार, गणधर ने गाई है ।
गुरू तारण तरण ने, कथी कही दरसाई है ।।
ब्रह्मानद अनुभव से, अपने मे तौलिये . . . . .

भजन – २९

अरे आतम वैरागी बन जइयो..... अरे... ।।

१. कोरे ज्ञान से कछु नहीं होने ।
दुर्लभ जीवन वृथा नहीं खोने ।।
शुद्ध स्वरूप में रम जइयो ... अरे.....

२. देख लो अपनो कछु नहीं भैया ।
मोह में कर रहे हा हा दैया ।।
कछु तो दृढता धर लइयो ... अरे.....

३. धन परिवार में कब तक मर हो ।
पाप कषायों में कब तक जर हो ।।
ब्रह्मचर्य प्रतिमा धर लइयो ... अरे.....

४. घर में पूरो कबहुं नहीं पडने ।
मोह राग में कुढ कुढ मरने ।।
ज्ञानानंद वन चल दइयो... अरे.....

भजन – ३०

निजको ही देखना और जानना बस काम है।
पर को मत देखो यह सब कुछ बेकाम है॥

१. पर को ही देखते, अनादि काल बीत गया।
पर को ही जानने में, पुद्गल यह जीत गया॥
निज को कब देखोगे, इसका कुछ ध्यान है.....

२. अपने में दृढता धरो, हिम्मत से काम लो।
मोह राग छोडकर, भेदज्ञान थाम लो॥
अपना क्या जग में है, यह तो मरी चाम है.....

३. बहुत गई थोडी रही, थोडी भी अब जात है।
स्व पर का ज्ञान करो, संयम की बात है॥
धर्म का बहुमान करो, धन का क्या काम है.....

४. अपनी ही सुरत रखो, समता से काम लो।
अपनी ही अपनी देखो, पर का मत नाम लो॥
ज्ञानानंद जल्दी करो, थोडा ही मुकाम है.....

भजन – ३१

हो जा हो जा रे निर्मोही आतमराम, मोह में मत भटके॥

१. धन शरीर परिवार से अपना, तोड दे नाता सारा।
काल अनादि से इनके पीछे, फिर रहा मारा मारा॥
खो जा खो जा रे अपने में आतमराम...मोह...

२. मात पिता और भाई बहिन यह, नहीं जीव के होते।
धन शरीर और मोह में फंसकर, अज्ञानी जन रोते॥
सो जा सो जा रे समता में आतमराम...मोह...

३. तू तो अरूपी निराकार है, अजर अमर अविनाशी।
पर से तेरा क्या मतलब है, ज्ञानानंद सुख राशि॥
बो जा बो जा रे हृदय में सम्यक्ज्ञान...मोह...

भजन - ३२

गुरू तारण तरण आये तेरी शरण ।
हम डूब रहे मंझधार, नैया पार करो ॥

१. काल अनादि से डूब रहे हैं ।
चारों गति में घूम रहे हैं ॥
भोगे हैं दु:ख अपार, नैया पार करो...गुरू...

२. अपने स्वरूप को जाना नहीं है ।
तन धन को पर माना नहीं है ॥
करते हैं हा हा कार, नैया पार करो...गुरू...

३. हमको आतम ज्ञान करा दो ।
सच्चे सुख का मार्ग बता दो ॥
मोही करता पुकार, नैया पार करो...गुरू...

भजन - ३३

धन के चक्कर में भुलाने सब लोग,
धर्म हे कोई नहीं जाने ॥

१. धर्म के नाम पर ढोंग कर रहे, माया के हैं दास ।
पूजा पाठ में लगे हैं निशदिन, नहीं आतम के पास ॥
मन के चक्कर में लुभाने सब लोग....

२. मंदिर तीर्थ बनवा रहे हैं, तिलक यज्ञ हैं कर रहे ।
पर के नाम को घोंट रहे हैं, धन के पीछे मर रहे ॥
तन के चक्कर में रूलाने सब लोग....

३. धन वैभव ही जोड रहे हैं, धर्म के नाम पर धंधा ।
पर को मारग बता रहे हैं, खुद हो रहे हैं अंधा ॥
कन के चक्कर में सुलाने सब लोग .....

४. जीव अजीव का भेदज्ञान कर, अपनी ओर तो देखो ।
ज्ञानानंद तब धर्म होयगा, पर को पर जब लेखो ॥
वन में चल करके धरो तुम जोग .....

भजन – ३४

करले करले तू निर्णय आज, तुझे कहां जाना है ॥

१. स्वर्ग नरक तिर्यच गति में, कई बार हो आया ।
मनुष्य गति में भी आकर के, जरा चैन नहीं पाया .....

२. सबका निर्णय किया हमेशा, अपना नहीं किया है ।
बिन निर्णय के पगले तेरा, लगा न कहीं जिया है .....

३. अपना निर्णय आज तू करले, तुझे कहां है जाना ।
चारों गति संसार में रूलना, या मुक्ति को पाना .....

४. इस संसार में सुख ही नहीं है, फिरो अनंते काल ।
मोक्षमार्ग में सुख ही सुख है, करलो जरा ख्याल....

५. सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण ही, है मुक्ति का मारग ।
पाप पुण्य शुभ अशुभ भाव सब, हैं संसारी कारक.....

६. ज्ञानानंद करो अब हिम्मत, शुभ संयोग मिला है ।
अब के चूको फिरो भटकते, हाथ से जाय किला है.....

भजन – ३५

नहिं है नहिं है रे सहाई कोई वीर, काहे को वृथा खेद करे ॥

१. जिनके लिये तू निशदिन मरता, पाप पुण्य और सब कुछ करता ।
अंत समय कोई काम न आवे, खुद ही नरक परे...काहे....

२. अपने मोह से ही तू मरता, औरों पर तूं दोष है धरता ।
कौन कहत है कछु करवे की, लोभ से खुद ही मरे...काहे....

३. सत्‌गुरू तुझे कैसा समझावें, सच्चे सुख का मार्ग बतावें ।
कछु नहीं करने समता धरने, तब कछु फरक परे ...काहे....

४. छोड दे अब सब जंजाला, भजले अब गुरू नाम की माला ।
मोही छोड के सब झंझट को, चल तू पार परे ...काहे....

भजन - ३६

❀ तारण श्रद्धांजलि ❀

दे दी हमें मुक्ति ये बिना पूजा बिना पाठ ।
तारण तरण ओ संत तेरी अजब ही है बात ॥
वन्दे श्री गुरू तारणम् ॥

१. जडवाद क्रियाकांड को मिथ्यात्व बताया ।
आतम की दिव्य ज्योति को तुमने लखाया ॥
बन गये अनुयायी तेरे, सभी सात जात...तारण...

२. भक्ति से नहीं मुक्ति है पढने से नहीं ज्ञान ।
क्रिया से नहीं धर्म है ध्याने से नहीं ध्यान ॥
निज की ही अनुभूति करो, छोड कर मिथ्यात्व...तारण..

३. आतम ही है परमात्मा शुद्धात्मा ज्ञानी ।
तुमने कहा और साख दी जिनवर की वाणी ॥
तोडीं सभी कुरीतियां, तब मच गया उत्पात...तारण...

४. बाह्य क्रिया काण्ड से नहीं मुक्ति मिलेगी ।
देखोगे जब स्वयं को तब गांठ खुलेगी ॥
छोडो सभी दुराग्रह, तोडो यह जाति पांति...तारण...

५. ब्रह्मा व विष्णु शिव हरि, कृष्ण और राम ।
ओंकार बुद्ध और जिन, शुद्धात्मा के नाम ॥
भूले हो कहां मानव, क्यों करते आत्मघात...तारण...

६. अपना ही करो ध्यान तब भगवान बनोगे ।
ध्याओगे शुद्धात्मा, तब कर्म हनोगे ॥
मुक्ति का यही मार्ग, तारण पंथ है यह तात...तारण...

कर्म जन्य रागादि भावों से आत्मा की भिन्नता को जानकर, आत्मा के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान और ज्ञान तथा राग और द्वेष की निवृत्ति रूप साम्य भाव को धारण करना, यही सम्यक्चारित्र है। मोह और क्षोभ से रहित परिणाम ही साम्य भाव है, निश्चय से यही चारित्र धर्म है।

*** इति ***